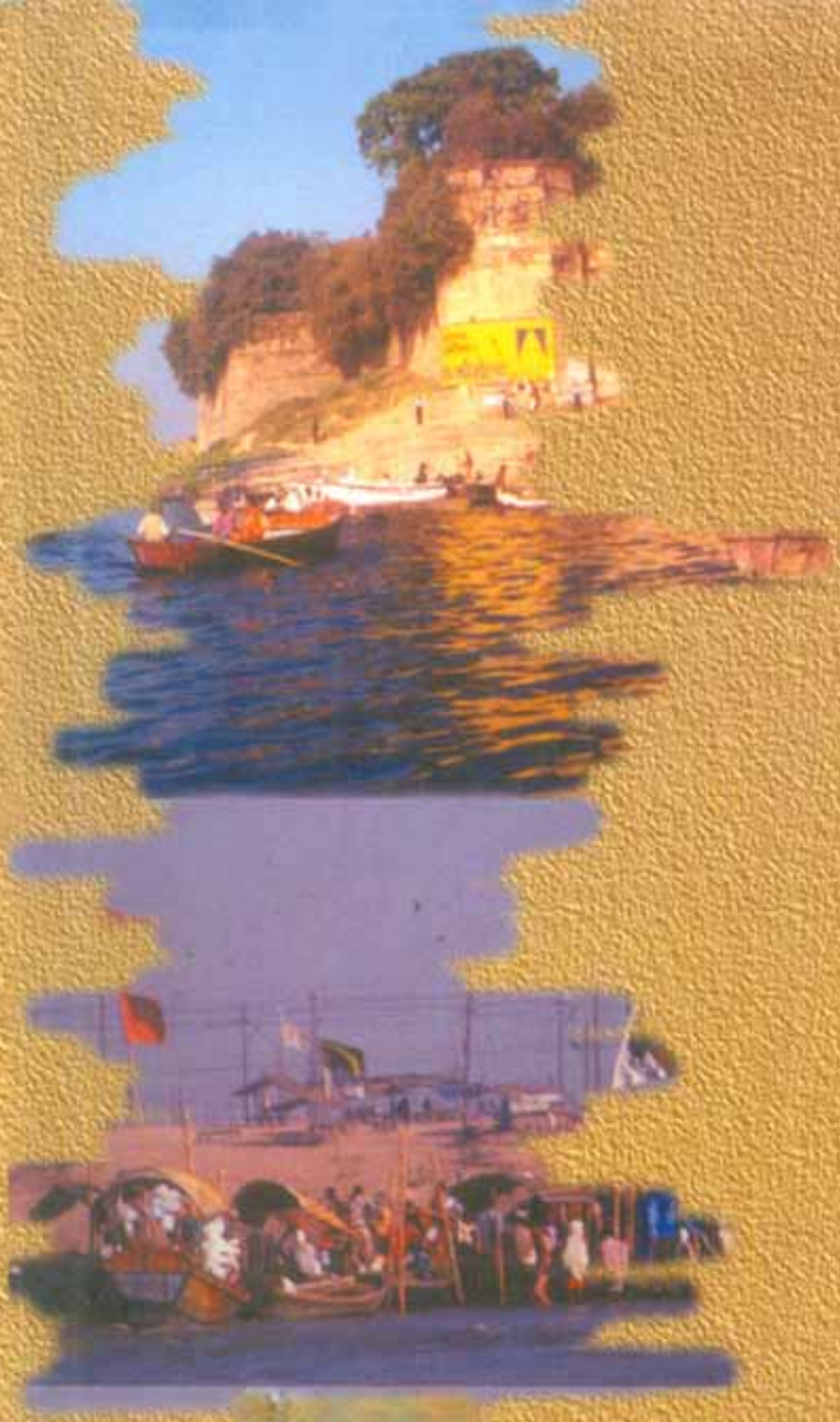

तीर्थराज प्रयाग

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र

तीर्थराज प्रयाग

रतिभान त्रिपाठी

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र

तीर्थराज प्रयाग

प्रकाशक :
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
बहावलपुर हाउस, भगवान दास रोड
नई दिल्ली–११०००१, भारत

प्रेरणा स्रोत :
महादेवी मेमोरियल चैरिटेबिल सोसाइटी
१०, ऊँचा मण्डी
इलाहाबाद

© सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र

प्रथम संस्करण : २०००
मूल्य : रुपए २००-००

मंत्री
मानव संसाधन विकास
भारत
MINISTER
HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT
INDIA

जनवरी, 2000

दो शब्द

तीर्थराज प्रयाग के बारे में श्री रीतिभान त्रिपाठी द्वारा तैयार पाण्डुलिपि को मैंने देखा है । इसमें संस्कृति, अध्यात्म, इतिहास, पुराण का समावेश होने के साथ ही इलाहाबाद के आधुनिक स्वरूप और विकास-कार्यों पर भी प्रकाश डाला गया है ।

प्रयाग गंगा-यमुना और सरस्वती के संगम के रूप में प्रसिद्ध है लेकिन इतिहास बताता है कि यह नगर अध्यात्म, साहित्य और राष्ट्रीय अन्दोलन का भी केन्द्र रहा है । यहां बारहवें वर्ष में होने वाला कुम्भ हमें ऐतिहासिक मंथन की भी याद दिलाता है । मुख्यतः बारहवें वर्ष और सामान्यतः प्रतिवर्ष सन्त-महात्मा और विद्वज्जन जो उपदेश करते हैं, वह भी मानव कल्याण के लिए किया जाने वाला मंथन ही है । इसके भी आगे हम यह पाते हैं कि जब देश ने मुक्ति संग्राम को जन-अन्दोलन का रूप देना चाहा तो उसके लिए होने वाले विचार मंथन का केन्द्र भी यही नगर रहा है । यहीं स्वराज भवन और आनन्द भवन में बैठकर अनेक विचार मंथन महात्मा गांधी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं के नेतृत्व में राष्ट्रीय अन्दोलन को लोकोन्मुखी बनाने के लिए होते रहे हैं ।

श्री रीतिभान त्रिपाठी ने समग्रतावादी एवं संतुलित दृष्टिकोण से प्रयाग का परिचय देने वाली उपयोगी पुस्तक का सृजन किया है। आशा है पाठक इस पुस्तक का स्वागत करेंगे ।

मुरली मनोहर जोशी

भूमिका

भारतवर्ष विश्व की आत्मा है, तो 'प्रयाग' भारत का प्राण है। इस देश को जीवनदायी शक्तियाँ इसी धरती से मिलती रही हैं। जिस प्रकार सनातन धर्म अनादि है, उसी प्रकार प्रयाग की महिमा का कोई आदि–अन्त नहीं है। अरण्य एवं नदी–संस्कृति के मध्य जन्म लेकर ऋषियों की तपोभूमि बन कर पंचतत्वों को पुष्पित– पल्लवित करने वाली इस प्रयाग की धरती का, देश हमेशा ऋणी रहेगा।

महर्षि भारद्वाज, अत्रि, दुर्वासा, पराशर–जैसे ८८ हजार ऋषियों की तपोभूमि रही इस स्थली का अपना एक इतिहास है। सृष्टि के उद्‌भव एवं विकास की नींव पृथ्वी के इस मध्य भाग से ही पड़ी थी। प्रजापति ब्रह्मा की यज्ञ–स्थली होने के कारण 'प्रजापति क्षेत्र' कहलाने वाले इस प्रयाग की माटी का एक–एक कण पवित्र है। भारतवर्ष की संस्कृति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर आधारित हैं। ये चारों पुरुषार्थ इसकी माटी से जुड़े हुये हैं। 'चार पदारथ भरा भंडारू' मानस की यह पंक्ति इसी ओर संकेत देती है।

सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग–इन चारों युगों में अक्षय पुण्य रखने वाली इस धरती को अक्षय क्षेत्र के नाम से जाना जाता रहा है। युग–युगांतरों का इतिहास समेटे इस तीर्थराज प्रयाग का महाप्रलय हो जाने के बाद भी अस्तित्व रहता है। प्रलयकाल में भी अक्षय रहने वाला 'अक्षयवट' इसका प्रतीक है। सृष्टि के जलमग्न होने पर देवताओं के हजारों वर्षों तक बालमुकुट के रूप में महावृक्ष अक्षयवट के पर्णपुट पर पड़े अंगुलपान करते हुये भगवान ने यहीं से सृष्टि–सृजन की इच्छा प्रकट की थी।

तीर्थों के तीर्थ प्रयाग का अपना अलग अस्तित्व है। भारतीय संस्कृति के प्राण, वेदों में भी इसकी महिमा निहित है। ऋग्वेद खिल १०१६५ में संगम का प्रथमतः उल्लेख मिलता है :

जहाँ पर सित–असित (गंगा–यमुना) नदियाँ आपस में मिलती हैं, वहाँ (दोनों के संगम में) स्नान करने वाले परम पद को प्राप्त कर सांसारिक बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

महाभारत, बाल्मीकि रामायण तथा पौराणिक ग्रन्थों में इसकी महिमा का स्थान–स्थान पर उल्लेख किया गया है। पद्‌म पुराण ने भी तीर्थराज की महिमा को रेखांकित किया है।

विशिष्ट मोक्षों की परम्परा का बोध कराने वाले 'प्रयाग' के पवित्र संगम में स्नान एवं अक्षयवट का दर्शन कर दैत्य कुल में उत्पन्न भक्त प्रहलाद की गणना भरद्वाज जी के सप्तर्षियों में की गयी। सोम, वरुण और प्रजापति की जन्मस्थली का गौरव धारण करने वाले इस प्रयाग को 'भाष्कर क्षेत्र' के भी नाम से जाना जाता है।

यहाँ धर्म एवं संस्कृति का अनूठा इतिहास छिपा है। यह राजनैतिक इतिहास का भी एक जीता–जागता केन्द्र रहा है। पौरव वंश के जनक पुरु की राजधानी प्रतिष्ठानपुर आज भी ध्वंसावशेष के रूप में हमारे सामने है। दुष्यन्त, शकुन्तला, भरत की कहानी कहने वाले इस प्रतिष्ठानपुर में इतिहास का अक्षय भण्डार छिपा है। उर्वशी और पुरुरवा के प्रेम का प्रतीक 'उर्वशी कुण्ड' तपोकुण्ड, कबीर नाला, गुरुनानक तथा सूफी संत शेख तकी का मिलन–स्थल आज भी मनुष्यता का संदेश दे रहे हैं। हंस तीर्थ, समुद्र कूप, वेद व्यास पाठशाला

सरीखे जाने कितने ऐतिहासिक तथ्य झूँसी के खण्डहरों में समाये हुये हैं। एक ओर अलर्कपुरी (अरैल), दूसरी ओर प्रतिष्ठानपुर के खण्डहर इस उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं। यानी, 'खण्डहर बता रहे हैं कि इमारत बुलंद थी।' उत्तर भारत के एक मात्र आचार्य रामानंद की जन्मस्थली तथा वल्लभाचार्य की तपोभूमि होने का गौरव प्राप्त है, प्रयाग को। अयोध्या सूर्यवंशियों की राजधानी थी, तो प्रतिष्ठानपुर चन्द्रवंशी राजाओं की। सूर्य एवं चन्द्रवंश का भी संगम इसी धरती पर होता है। ज्योतिष गणना के रूप में सूर्य चन्द्रादि नवग्रहों के विशेष संक्रमण का प्रभाव यहाँ पुण्यकाल को जन्म देता है। बारहवें वर्ष कुम्भ, छठें वर्ष अर्ध कुम्भ तथा प्रतिवर्ष माघमेला इन्हीं ग्रहों के विशेष समागम का प्रतिफल है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के वन–गमन, शृंगी ऋषि की तपोभूमि शृंगवेरपुर के समीप केवट का अटूट प्रेम, गंगा–पूजन तथा भरद्वाज आश्रम एवं चित्रकूट–गमन की जीवन्त कहानी का वर्णन महर्षि वाल्मीकि तथा गोस्वामी तुलसीदास ने जिन शब्दों में किया है, उसे पढ़कर प्रयाग का अनन्त वैभव मन को झकझोर देता है। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' में संगम का जीता–जागता चित्रण किया है। व्याकरण के भाष्यकार पाणिनि ने तीर्थराज के संगम में स्नान का महत्व बताते हुये लिखा है– 'अन्यत्र ज्ञानेनमुक्तिः, अत्र स्नानादेव मुक्तिः।' अर्थात्–अन्य तीर्थों में ज्ञान तथा तीर्थराज प्रयाग में स्नानमात्र से मुक्ति होती है। भगवान परशुराम ने भी तीर्थराज को उपकृत किया था। पुराणों में वर्णित परशुराम की स्मृतियों को तीर्थराज आज भी अक्षुण्ण बनाये हुए है।

आदि शंकराचार्य की दिग्विजय यात्रा का केन्द्र–बिन्दु प्रयाग ही रहा है। कुमारिल भट्ट से उपदेश प्राप्त कर शंकर ने अपनी दिग्विजय–यात्रा आरम्भ की थी और आचार्य मण्डन मिश्र को पराजित किया था। गौतम बुद्ध, महावीर, चैतन्य महाप्रभु, रूपगोस्वामी जैसे संतों ने इस धरती को अपनी तपोभूमि के रूप में स्वीकारा है।

मध्यदेश, वत्सदेश के नाम से विहित कौशाम्बी एवं कड़ा के अधीन रह कर कुशाम्बु अशोक प्रियदर्शी, गुप्त साम्राज्य हर्षवर्धन की दानशीलता तथा मुगल बादशाह अकबर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को छिपाकर रखने वाले इस प्रयाग पर एक अलग इतिहास लिखा जा सकता है। प्रयाग, इलावास, अल्लाहवास, अल्लाहबाद आदि नामों की एक कहानी को सँजोये हुये यह तीर्थराज प्रयाग आज भी जीवन्त है। यहाँ के संगम में ऐसी ऊर्जा तथा शक्ति है, जो समाज के प्रत्येक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करती है। देश को 'अनेकता में एकता' का संदेश देती है। तीर्थराज के रूप में विहित इस शहर की पंचक्रोशी परिक्रमा (जो वर्षों से बंद पड़ी है) के हजारों तीर्थ आज भी सोये हुये हैं। द्वादश वेणीमाधव तथा शिव एवं शक्ति के नाना रूपों का स्वरूप हमें इस स्थान पर देखने को मिलता है। अन्तर्वेदी एवं वहिर्वेदी की परिक्रमा का अपना महत्व है। संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने वर्षों पूर्व इसे पुनर्जीवित करने का प्रयास किया था। बाद में दुर्भाग्यवश यह बंद हो गई।

प्रयाग के ऐतिहासिक किला में अक्षयवट, सरस्वती कूप, सागर, जोधाबाई का रंगमहल–जैसे इतिहास के पन्ने अभी भी अधलिखे पड़े हुये हैं। सच पूछिये तो इलाहाबाद का हर कोना एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। गंगा–पार, दोआबा तथा यमुनापार–तीनों भूभागों में इतिहास बिखरा पड़ा हुआ है। लाक्षागृह, भीटा गढ़वा का किला, संत मलूकदास तथा सूफी संतों के मज़ार, शृंगी ऋषि, शांतामाई आश्रम जैसे सैकड़ों स्थल धर्म एवं

संस्कृति के साथ ही एक अनूठा इतिहास छिपाये हुये हैं।

आज़ादी की लड़ाई में देश का अगुवा रहने वाले इस शहर ने एक से एक महान विभूतियों को जन्म दिया। मौलवी लियाकत अली, सर अयोध्यानाथ, महामना मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल, लालबहादुर शास्त्री, कपिल देव मालवीय से लेकर, इन्दिरा गांधी, केशवदेव, हेमवती नंदन बहुगुणा, विश्वनाथ प्रताप सिंह सरीखे नेता एक के बाद एक पैदा होकर इस शहर का नाम रोशन करते गये। देश को पाँच–पाँच प्रधानमंत्री देने वाले इस शहर का राजनैतिक तेवर ही कुछ अलग है। साहित्य के क्षेत्र में इस शहर की अनूठी देन है। अकबर इलाहाबादी, बिस्मिल, फिराक, निराला, पंत, महादेवी, बच्चन, प्रेमचंद, इलाचन्द्र जोशी, वाचस्पति पाठक, उपेन्द्र नाथ अश्क, रामकुमार वर्मा–जैसे साहित्यकारों ने देश के साहित्य में अपनी छाप छोड़ी है।

पत्रकारिता के जाज्वल्यमान नक्षत्र गणेश शंकर विद्यार्थी की जन्मभूमि होने के साथ ही बालकृष्ण भट्ट, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, ठाकुर दत्त मिश्र, श्रीनाथ सिंह, सुन्दरलाल, कृष्णकान्त मालवीय, पद्मकान्त मालवीय, विद्याभाष्कर, पी.डी. टंडन, हेरम्ब मिश्र सरीखे पत्रकारों ने अपनी लेखनी से देश को एक दिशा दी है। सैकड़ों लेखकों, साहित्यकारों, मनीषियों का इतिहास अभी भी अन्धकार के गर्त में छिपा हुआ है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, आनन्द भवन, उच्च न्यायालय, चन्द्रशेखर आज़ाद की शहादत स्थली–चन्द्रशेखर पार्क, पब्लिक लाइब्रेरी, मिन्टो पार्क, मैकफर्सन लेक सरीखे तमाम स्थल इस शहर के वैभव को छिपाये हुये हैं। संतों की परम्परा को विकसित करने वाले सच्चा आश्रम, शिवकुटी स्थित आश्रम सहित अनेक आश्रमों ने प्रयाग के अस्तित्व को आज भी सँजो कर रखा है।

मेरे अनुज रतिभान त्रिपाठी द्वारा इस दिशा में किया गया प्रयास सराहनीय है। उन्होंने मेहनत के साथ धर्म एवं संस्कृति के ऐतिहासिक पन्नों को खोलकर पाठकों के समक्ष रखा है। यदि यह प्रयास जारी रहा तो निश्चय ही तीर्थराज प्रयाग (वर्तमान इलाहाबाद) की माटी में छिपा इतिहास सामने आयेगा। इसी आशा एवं विश्वास के साथ मैं पुस्तक के लेखक को एक बार पुनः हृदय से बधाई देता हूँ।

–राम नरेश त्रिपाठी

आत्मनिवेदन

ऋत सदैव दीप्तिमान रहता है। उसे अनृत का आवरण कभी आच्छादित नहीं कर सकता। तीर्थराज प्रयाग भी एक ऋत है, जो अनंतकाल से अपने परम पावन माहात्म्य के लिये सुविख्यात है। यह पुण्य–क्षेत्र भारत का प्राण है। जिस प्रकार धार्मिक दृष्टिकोण से इसका महत्व है, उसी प्रकार सांस्कृतिक–ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी। तीर्थराज की अमरगाथा वेदों, पुराणों, स्मृतियों, महाकाव्यों, त्रिस्थली सेतु एवं ब्राह्मण ग्रंथों में विस्तारपूर्वक वर्णित है। जिस भाव–प्रवणता और अगाध आस्था के साथ उक्त सभी ग्रंथ तीर्थराज प्रयाग का गौरव–गान करते हैं, वह अपने आप में अद्वितीय है।

वस्तुतः गंगा, यमुना एवं अदृश्य सरस्वती के संगम में वह ऊर्जा है, जो सबको किसी न किसी रूप में शुभकार्यों के लिये प्रेरित करती रहती है। यहाँ प्रति वर्ष लगने वाला माघमेला तथा प्रत्येक छः वर्ष के अन्तराल में पड़ने वाले कुंभ और अर्धकुंभ के ग्रहयोग पर उमड़ने वाला आस्थावान जन समुदाय इसी ऊर्जा का परिणाम है।

प्रयाग का धार्मिक इतिहास वैविध्यपूर्ण है, किन्तु सबका मूल तत्व एक है। पुराण अपने–अपने ढंग से प्रयाग का गुणगान करते हैं। इसकी स्थिति और विस्तार से लेकर तीर्थों, संतों और विविध यज्ञों का विवेचन पुराणों में विस्तृत रूप में मिलता है, जिसे तात्विक रूप में इस ग्रंथ में समेटने का प्रयास किया गया है। तीन भागों में विभाजित इस ग्रंथ के प्रथम भाग में तीर्थराज प्रयाग का पौराणिक संदर्भ, द्वितीय भाग में तीर्थों, मंदिरों और संतों का वर्णन तथा तृतीय भाग में प्राचीन काल से लेकर अब तक किसी का किसी रूप में अस्तित्व में बने रहने वाले ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थलों का सिलसिलेवार विवेचन किया गया है। ग्रंथ में विषयगत तथ्यों की पवित्रता बनी रहे, इसका पूर्ण प्रयास किया गया है। प्रयाग के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के प्रायः सभी विषयों को इस ग्रंथ में समाहित करने का प्रयास किया गया है। यदि कुछ छूट गये होंगे तो भविष्य में उन्हें जोड़ने का प्रयास किया जायेगा।

प्रस्तुत ग्रंथ को अर्धकुंभ (1994-95) के अवसर पर प्रकाश में लाने की उत्कट इच्छा थी, किन्तु कुछ शुभचिंतकों, विशेषकर श्रद्धेय श्री हेरम्ब मिश्र जी के सुझाव पर कि जल्दबाजी ठीक नहीं होती, अब सबके सम्मुख आ रहा है।

यद्यपि इस ग्रंथ में तथ्यों की पवित्रता बनाये रखने में पूरी सावधानी बरती गयी है, तथापि कोई त्रुटि रह गयी हो तो सुधी पाठक उसे अवगत कराने की कृपा करेंगे, ऐसा विश्वास है। उन सुधीजनों को मैं एक बार पुनः नमन करता हूँ, जिनके मन में तीर्थराज प्रयाग के प्रति अगाध श्रद्धा है।

७५, ए डी ए फ्लैट, स्टेनली रोड, इलाहाबाद
बसन्त पंचमी, विक्रम संवत २०५२

–रतिभान त्रिपाठी

प्रयाग : पौराणिक संदर्भ

	पृष्ठ सं०
प्रयाग	१
मत्स्य पुराण	१
पद्म पुराण	३
स्कंद पुराण	४
अग्नि पुराण	६
शिव पुराण	८
कूर्म पुराण	८
ब्रह्म पुराण	११
वामन पुराण	१२
वृहन्नारदीय पुराण	१३
मनुस्मृति	१४
वाल्मीकीय रामायण	१४
महाभारत	१६
रघुवंश महाकाव्यम्	१७
रामचरित मानस	१६
माघ मास में संगम स्नान का महत्व	२१
प्रयाग में मुण्डन का महत्व	२२
गंगा माहात्म्य	२२
यमुना माहात्म्य	२४
सरस्वती नदी या कल्पना	२५
कुंभ पर्व	२६
प्रयाग के घाट	२६
प्रयाग के तीर्थ पुरोहित : प्रयागवाल	३२
प्रयाग के घाटिया	३४

	पृष्ठ सं०
प्रयाग और अखाड़े	३४
चतुर्दश प्रयाग बहुतक गंगा	३५
प्रयाग : प्राचीन ऐतिहासिक महत्व	३७
प्रयाग : मध्ययुगीन ऐतिहासिक महत्व	३६
प्रयाग : आधुनिक युगीन ऐतिहासिक महत्व	३६
इलावास से इलाहाबाद तक	४१
इलाहाबाद : भौगोलिक स्थिति	४२
इलाहाबाद : एक नज़र	४४

तीर्थ, मंदिर और संत

तीर्थ का तात्पर्य	५१
द्वादश माधव और विष्णुपीठ	५२
पंचक्रोशी परिक्रमा और वेदियों के देवता	५३
अक्षयवट	५७
मनकामेश्वर तीर्थ	५६
पातालपुरी मंदिर	६०
बड़े हनुमान जी	६१
आदिशंकर विमान मंडपम्	६२
उदासीन संतों की गद्दी	६२
तुलसीदास जी का बड़ा स्थान	६३
प्रयाग और रामानंदाचार्य मठ	६४
जंगमबाड़ी मठ	६५
शिवमठ और सिद्धेश्वर महादेव मंदिर	६५
उत्तरादि मठ	६६
नागवासुकि	६७
शंकराचार्य मठ	६८

	पृष्ठ सं०
शक्तिपीठ : अलोपशंकरी देवी	६८
शक्तिपीठ : ललिता देवी	६९
शक्तिपीठ : कल्याणी देवी	७०
शक्तिपीठ : शीतलादेवी (कड़ा)	७१
अष्टादश रुद्र मंदिर	७१
रूप गौड़ीय मठ	७२
भारत सेवाश्रम संघ	७२
प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय	७३
भरद्वाज आश्रम	७४
कोटितीर्थ शिवकुटी	७४
श्री नारायण आश्रम	७५
ज्ञानवृक्ष आश्रम	७६
श्री हनुमत् निकेतन	७७
श्री राममंदिर	७८
निम्बार्क मठ	७९
श्री रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम	८०
श्री हाटकेश्वर नाथ मंदिर	८१
तक्षकेश्वर मंदिर और कुंड	८२
कालिय हद	८२
अंतर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत संघ	८३
हंसकूप या हंसतीर्थ	८३
समुद्रकूप	८४
गंगोली का शिवाला	८४
परमानंद आश्रम	८५
प्रयाग योग अनुसंधान संस्थान	८६
श्री योगानंद आश्रम	८७

	पृष्ठ सं०
स्वामी ब्रह्मानंद परमार्थ आश्रम	८६
महर्षि सदाफल देव आश्रम	८६
पाण्डुकेश्वरनाथ (पड़िला महादेव)	६१
शृंगवेरपुर	६२
ईश्वरप्रेम आश्रम	६४
सच्चा आश्रम, अरैल	६५
साधुसेवी आचार्य वल्लभ	६५
ज्ञानकेन्द्र : तत्वज्ञान प्रसार मंडल	६७
जनसेवी संत मलूकदास	६७
प्रयाग में स्वामी दयानंद का शास्त्रार्थ	६८
जैन परम्परा में प्रयाग	६६
प्रभाषगिरि (पभोसा)	१००

ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थल

प्रतिष्ठानपुरी (झूँसी)	१०५
अलर्कपुरी (अरैल)	१०६
कौशाम्बी	१०६
कड़ा	१०८
किला	१०८
भीटा	११०
जलालपुर	१११
खैरागढ़	१११
गींज की पहाड़ी	१११
गढ़वा : गुप्तकाल की धरोहर	११२
साथर का टीला	११२
लच्छागिरि (लाक्षागृह)	११३

	पृष्ठ सं०
खुसरोबाग	११३
चंद्रशेखर आजाद पार्क	११४
मेयो मेमोरियल हाल	११५
इलाहाबाद विश्वविद्यालय	११६
गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ	११७
इलाहाबाद संग्रहालय	११८
हिन्दुस्तानी एकेडेमी	११९
सुरसाधना केन्द्र : प्रयाग संगीत समिति	११९
सुमित्रानंदन पंत बाल उद्यान (हाथी पार्क)	१२०
भरद्वाज पार्क	१२०
स्वराज भवन	१२१
आनंद भवन	१२२
जवाहर प्लैनेटेरियम	१२२
इलाहाबाद के गिरजाघर	१२३
गुरुद्वारे	१२४
हिन्दी साहित्य सम्मेलन	१२५
मदनमोहन मालवीय उद्यान (मिन्टो पार्क)	१२६
घंटाघर	१२६
ऐतिहासिक नीम का पेड़	१२७
प्राचीन मस्जिदें और कब्रें	१२७
नगर निगम	१२८
इलाहाबाद उच्च न्यायालय	१३०
उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र	१३०
नेहरू पार्क	१३१
पर्यटक आवास गृह	१३२
आवागमन के साधन	१३३

प्रयाग : पौराणिक सन्दर्भ

प्रयाग

दृष्ट्वा प्रकृष्टं योगभ्यः पुष्टभ्यो दक्षिणादिभिः।
प्रयागमिति तन्नाम कृतं हरिहारिभिः।।

उत्कृष्ट यज्ञ और दान दक्षिणा आदि से सम्पन्न स्थल देखकर भगवान विष्णु एवं भगवान शंकर आदि देवताओं ने इसका नाम प्रयाग रख दिया। ऐसा उल्लेख तमाम पुराणों से मिलता है। तीर्थराज प्रयाग एक ऐसा पावन स्थल है, जिसकी महिमा हमारे सभी धर्मग्रन्थों में वर्णित है। तीर्थराज प्रयाग को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का प्रदाता कहा गया है। यह सभी तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है–यह वर्णन ब्रह्मपुराण में प्राप्त होता है :

प्रकृष्टत्वा प्रयागो सौ प्राधान्या राज शब्दवान्।

अपने प्रकृष्टत्व, अर्थात् उत्कृष्टता के कारण यह "प्रयाग" है और प्रधानता के कारण "राज" शब्द से युक्त है।

प्रयाग की महत्ता वेदों और पुराणों में सविस्तार बतायी गयी है। एक बार शेषनाग से ऋषियों ने भी यही प्रश्न किया था कि प्रयाग तीर्थराज क्यों कहा जाता है, जिस पर शेषनाग ने उत्तर दिया कि एक ऐसा अवसर आया कि सभी तीर्थों की श्रेष्ठता की तुलना की जाने लगी। उस समय भारत के समस्त तीर्थों को तुला के एक पलड़े पर रखा गया और प्रयाग को एक पलड़े पर, फिर भी प्रयाग का पलड़ा भारी पड़ गया। दूसरी बार सप्तपुरियों को एक पलड़े में रखा गया और प्रयाग को दूसरे पलड़े पर, वहाँ भी प्रयाग वाला पलड़ा भारी रहा। इस प्रकार प्रयाग की प्रधानता सिद्ध हुई और इसे तीर्थों का राजा कहा जाने लगा। इस पावन क्षेत्र में दान, पुण्य, तपकर्म, यज्ञादि के साथ–साथ त्रिवेणी संगम का अतीव महत्व है। यह निखिल विश्व का एक मात्र स्थान है, जहाँ पर तीन–तीन नदियाँ, अर्थात्–गंगा, यमुना, और सरस्वती मिलती हैं और यहीं से अन्य नदियों का अस्तित्व समाप्त होकर आगे एक मात्र नदी गंगा का महत्व शेष रह जाता है। इस भूमि पर स्वयं ब्रह्मा जी ने यज्ञादि कार्य सम्पन्न किये। ऋषियों और देवताओं ने त्रिवेणी संगम कर अपने आपको धन्य समझा।

प्रयाग की महिमा का वर्णन जिन पुराणों, महाकाव्यों एवं अन्य प्रामाणिक ग्रंथों में किया गया है, उसे यहाँ आगे विस्तारपूर्वक बताया जा रहा है।

मत्स्य पुराण

धर्मराज युधिष्ठिर ने एक बार मार्कण्डेय जी से पूछा : 'ऋषि प्रवर! कृपा पूर्वक यह बतायें कि प्रयाग–गमन क्यों करना चाहिए, वहाँ पर निवास करने पर मृत्यु के पश्चात् क्या गति होती है और स्नान का फल क्या है?' इस पर महर्षि मार्कण्डेय ने उन्हें बताया : 'मैं वही बात आपसे कहूँगा, जो स्वयं ब्रह्मा जी ने अपने मुख से कही है। प्रयाग के प्रतिष्ठान से लेकर वासुकि के ह्रदरोपुर पर्यन्त कम्बल और अश्वतर दो भाग हैं और

बहुमूलक नाग हैं। यही प्रजाजाति का क्षेत्र है, जो तीनों लोकों में विख्यात है। यहाँ पर स्नान करके दिव्य लोक को प्राप्त करते हैं और जिनकी यहाँ मृत्यु होती है, वे पुनर्जन्म नहीं लेते। यहाँ पर जो साठ धनु सहस्र हैं, वे जाह्नवी की रक्षा करते हैं और सप्तवाहन सविता देव यमुना जी की रक्षा करते हैं। वासुदेव सदैव प्रयाग की रक्षा करते हैं। सभी देवों के साथ मिलकर भगवान श्री हरि इस सम्पूर्ण मंडल की रक्षा करते हैं।

'हे युधिष्ठिर! यहाँ पर एक वट वृक्ष है, जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व भगवान शंकर के पास है। यह स्थान समस्त पापों का हरण करने वाला है, जिसकी रक्षा देवगण करते हैं। यदि किसी को पाप लगता है तो वह प्रयाग के स्मरण मात्र से नष्ट हो जाता है। जब इस महान तीर्थ के स्मरण मात्र का इतना फल है तो दर्शन का क्या कहना ?

'हे राजन्! यहाँ पर एक पंचकुण्ड है, जिसके मध्य में जाह्नवी है। प्रयाग के अंदर प्रवेश करने मात्र से पापों का क्षय हो जाता है। सहस्रों योजन दूर रह कर भी गंगा का स्मरण करने से मनुष्य परमगति को प्राप्त करता है। गंगा के दर्शन करने से मनुष्य को भलाइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसका अवगाहन ओर जलपान करने से सात कुल पवित्र हो जाते हैं।

'सत्य बोलने वाला, क्रोध को जीतने वाला, अहिंसा में व्यवस्थित धर्म का अनुसरण करने वाला, तत्ववेत्ता, गौ–ब्राह्मण के प्रति प्रीतिकर भावना रखने वाला तथा गंगा यमुना के मध्य स्नान करने वाला मनुष्य किल्विष से मुक्त हो जाता है। मन से की जाने वाली कामनायें भी यहाँ प्राप्त हो जाती हैं। प्रयाग में पहुँचकर मनुष्य को एक माह तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए निवास करना चाहिए। इस प्रकार उसे मनोरथों की प्राप्ति होती है। देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध आदि भी प्रयाग सेवन करके परम सद्गति प्राप्त करते हैं।'

सत्युग में नैमिष क्षेत्र अत्यंत पवित्र माना जाता था। जिस प्रकार त्रेता में पुष्कर क्षेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण था, द्वापर में कुरुक्षेत्र पवित्रतम स्थान था, उसी प्रकार कलियुग में प्रयाग–क्षेत्र की गंगा का सर्वाधिक महत्व है। इसलिये मनुष्य को प्रयाग में रहकर गंगा का सेवन करना चाहिये। कलियुग में सांसारिक कष्टों से बचने की गंगा के अतिरिक्त कोई अन्य औषधि नहीं है।

प्रयाग गंगा के उत्तरी भाग पर मानस तीर्थ है, जहाँ तीन रात उपवास करने पर मनुष्य को सभी मनोरथों की प्राप्ति होती है। मनुष्य भूमि, स्वर्ण आदि दान करके जिस फल की प्राप्ति करता है, वह उसे मानस तीर्थ (मनसैता) जाने से मिल जाता है और प्राणी फिर उसी तीर्थ का स्मरण करता रहता है।

प्रयाग में श्रद्धालु मनुष्य अनशन व्रत का पालन करने पर पग–पग अश्वमेध–यज्ञ का फल प्राप्त करता है। वह सदैव हृष्ट पुष्ट, निरोग और पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण रहता है। प्रयाग क्षेत्र पाँच योजन में विस्तीर्ण है। इस क्षेत्र में प्रवेश करने मात्र से अश्वमेध यज्ञ के पुण्य की प्राप्ति होती है। जो प्रयाग में मास पर्यन्त स्नान करता है, उसे सभी क्लेशों से छुटकारा मिल जाता है और वह परमपद पाता है।

प्रयाग तीर्थ में यमुना के दक्षिण तट पर अग्नि तीर्थ है तथा पश्चिमी दिशा की ओर धर्मराज का नरक नामक तीर्थ है। इनमें स्नान करने से मनुष्य स्वर्ग का अधिकारी हो जाता है। इसी प्रकार यमुना तट पर हजारों की संख्या में दूसरे तीर्थ हैं। इसकी उत्तर दिशा में महातेजस्वी सूर्य का निरंजन नामक तीर्थ है, जहाँ इन्द्र के साथ सभी देवगण प्रातः, मध्याह्न और सायं–तीनों कालों में संध्योपासना करते हैं।

प्रयाग में नैमिष, पुष्कर, सिन्धुसागर, गया, चैत्रक तथा गंगासागर आदि पवित्र तीर्थ, पुण्यप्रद पर्वत, तीस करोड़ और दस हजार परम पवित्र तीर्थ उपस्थित रहते हैं—ऐसा विद्वानों ने कहा है :

कृते तु नैमिषं क्षेत्रं त्रेतायां पुष्करं परम्। द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते।।५७
गङ्गामेव निषेवेत प्रयागं तु विशेषतः। नान्यत्कलियुगे घोरे भेषजं नृप विद्यते।।५८

(अध्याय १०६)

मानसं नाम तत्तीर्थं गंगाया उत्तरे तटे। त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा सर्वकामानवाप्नुयात्।।२

(अध्याय १०७)

गोभूहिरण्यदानेन यत्फलं प्राप्नुयान्नरः। स तत्फलमवाप्नोति तत्तीर्थं स्मरते पुनः।।३

(अध्याय १०७)

शृणु राजन्प्रयागे तु अनाशकफलं विभो। प्राप्नोति पुरुषो धीमाञ्श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।।३
अहीनाङ्गोऽप्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः। अश्वमेधफलं तस्य गच्छतस्तु पदे पदे।।४

(अध्याय १०८)

पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्। प्रविष्टमात्रे तद्भूमावश्वमेधः पदे पदे।।६

(अध्याय १०८)

शृणु राजन्महागुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्। मासमेकं तु यः स्नायात्प्रयागे नियतेन्द्रियः
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स गच्छेत्परमं पदम्।।१४

(अध्याय १०८)

अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे। पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं तु नरकं स्मृतम्।।२७
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। एवं तीर्थसहस्राणि यमुनादक्षिणे तटे।।२८
उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः। तीर्थं निरञ्जनं नाम यत्र देवाः सवासवाः।।।२६

(अध्याय १०८)

शृणु राजन्प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु। नैमिषं पुष्करं चैव गोतीर्थं सिन्धुसागरम्।।१
गया च चैत्रकं चैव गङ्गासागरमेव च। एते चान्ये च बहवो ये च पुण्याः शिलोच्चयाः।।२
दश तीर्थसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथा पराः। प्रयागे संस्थिता नित्यमेवमाहुर्मनीषिणः।।३

(अध्याय ११०)

पद्मपुराण

इस पुराण के सृष्टिखण्ड, स्वर्गखण्ड एवं पातालखण्ड में प्रयाग की सविस्तार चर्चा की गयी है। प्रयाग में दान, यात्रा, निवास और यज्ञों का फल किस प्रकार और कितना होता है, यह चर्चा महर्षि मार्कण्डेय ने धर्मराज युधिष्ठिर से की है। प्रयाग का विस्तार और तीर्थों की स्थिति की चर्चा भी इस पुराण में बतायी गयी है। जब धर्मराज युधिष्ठिर महर्षि मार्कण्डेय से पूछते हैं कि ऋषिवर प्रयाग में स्नान, दान और यज्ञादि का क्या

महत्व है तो मार्कण्डेय जी कहते हैं–

कथयिष्यामि ते वत्स! प्रयागस्य तु यत्फलम्।
पुरा ऋषीणां विप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम्।।

ऋषिवर बताते हैं कि प्रयाग की रक्षा विशेष रूप से स्वयं वासुदेव करते हैं और पूरे प्रयाग मण्डल की रक्षा विभिन्न देवताओं के साथ भगवान करते हैं। प्रयाग स्थित अक्षयवट की रक्षा स्वयं शूलपाणि भगवान शंकर करते हैं। इस तीर्थराज से सभी पापों का क्षय हो जाता है। दर्शन, नामसंकीर्तन का फल तो अवर्णनीय है।

प्रयाग माहात्म्य वर्णन में कहा गया है –

एषा यजन भूमिहि देवानामपि सत्कृता।
दत्तं तत्र स्वल्पमपि महद्भवति भारत।।

अर्थात्–यह यज्ञ भूमि है। देवताओं द्वारा समादृत इस भूमि पर यदि थोड़ा भी दान किया जाता है तो उसका फल अनन्त काल तक बना रहता है।

प्रयाग की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में कहा गया है कि जिस प्रकार ग्रहों में सूर्य और नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार तीर्थों में प्रयाग सर्वोत्तम तीर्थ है–

ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशि।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं प्रयागाख्यामनुत्तमम्।।

प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम है। इन नदियों के संगम में स्नान करने और संगम का जल पीने से मनुष्य मुक्ति का भागी होता है, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं है–

यत्र गंगा च यमुना चैव सरस्वती।
तत्र स्नानात्वा च पीत्वा च मुक्तिभागी न संशयः।।

इसी पुराण में आगे कहा है कि जहाँ श्याम (अक्षय) वट अपनी श्यामल छाया से मनुष्यों को दिव्य गुण प्रदान करता है और जहाँ श्याम (माधव) अपने दर्शन करने वाले के समस्त पाप काट डालते हैं, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो–

श्यामो वटो श्याम गुणं वृणोति
स्वच्छायया श्यामलया जनानाम्।
श्यामः श्रमं कृन्तति यत्र दृष्टः
सतीर्थराजो जयति प्रयागः।।

स्कंद पुराण

इस पुराण में तीर्थों का वर्णन करते हुये अगस्त्य ने लोपामुद्रा से प्रयाग को प्रथम तीर्थ और तीर्थराज की संज्ञा से विभूषित किया था। विशेष तीर्थों का विवरण इस प्रकार है–

नैमिष, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार (हरिद्वार), अवंतिका (उज्जैन), अयोध्या, मथुरा, अमरावती, द्वारका, सरस्वती,

सिन्धु संग, गंगासागर, संगम, कांची, त्र्यंबक, सप्तगोदावरी तट, कलिंजर, प्रभास, बदरिकाश्रम, महालय, ओंकार क्षेत्र, पुरुषोत्तम क्षेत्र, गोकर्ण, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर, श्री पर्वत आदि तीर्थ, धारातीर्थ, मानस तीर्थ, सत्यादि तीर्थ।

इन सभी तीर्थों में प्रथम तीर्थराज प्रयाग है, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है तथा समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है। तीर्थराज धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रदाता है–

प्रथमं तीर्थं राजन्तुप्रयागाख्य सुविश्रुतम्।
कामिकंसर्वतीर्थानांधर्मकामार्थ मोक्षदम्।।२१
नैमिषञ्च कुरुक्षेत्रं गङ्गाद्वारमवन्तिका।
अयोध्या मथुरा चैव द्वारकाप्यमरावती।।२२
सरस्वती सिन्धुसङ्गोगङ्गासागरसङ्गमः।
कान्तीचत्र्यम्बकञ्चापिसप्तगोदावरीतटम्।।२३
कालञ्जरं प्रभासश्च तथा बदरिकाश्रमः।
महालयस्तथोङ्कारक्षेत्रं वैपौरुषोत्तमम्।।२४
गोकर्णो भृगुकच्छश्च भृगुतुङ्गश्चपुष्करम्।
श्रीपर्वतादितीर्थानिधारातीर्थं तथैव च।।२५
मानसान्यपितीर्थानिसत्यवादीनिचवैप्रिये।
एतानिमुक्तिदान्येवनात्रकार्याविचारणा।।२६
गयातीर्थञ्च यत्प्रोक्तं तत्पितृणां हि मुक्तिदम्।
पितामहानामृणतो मुक्तास्तत्तनया अपि।।२७
मानसान्यपितीर्था नियान्युक्तानिमहामते।
कानिकानिचतानीहह्येतदाख्यातुमर्हसि।। २८

इसी पुराण के अवंति खण्ड में प्रयागेश्वर की चर्चा की गयी है। राजा प्रियव्रत राजपाट से निवृत्त होकर बदरी पर्वत पर तपस्यारत थे। वहाँ नारद आये। राजा ने उनका पूजन किया। देवर्षि ने राजा प्रियव्रत को एक कथा बतायी–"एक बार मैंने सप्तद्वीप के सरोवर में एक कन्या देखी, जो अतीव सुन्दर थी। मैंने पूछा 'देवी! आप कौन हैं? इस निर्जन वन में अकेले क्या कर रही हैं?' इतना पूछना था कि मेरा ज्ञान विस्मृत होने लगा और मुझे चिन्ता एवं माया मोह घेरने लगा। तभी मुझे उस कन्या के हृदयस्थल में तीन पुरुष दृष्टिगोचर हुये। मैंने पुनः प्रश्न किया–"देवी! आपके देखने के पश्चात् मेरा ज्ञान नष्ट हो गया। आप कृपापूर्वक यह बतायें कि ऐसा क्यों हुआ?' कुमारी कन्या ने उत्तर दिया–मेरा नाम सावित्री है और मैं वेदों की माता हूँ। चूँकि तुम मुझे नहीं पहचान पाये, इसलिये मैंने तुम्हारे वेदज्ञान का हरण कर लिया।'

"सावित्री कन्या से मेरे यह पूछने पर कि ये तीन पुरुष कौन हैं; उसने बताया–'ये वेद हैं, जो मेरे शरीर में स्थित हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद ओर सामवेद–तीनों मुझमें स्थित हैं। तीनों अग्नियाँ और तीनों देवता मेरे शरीर में वास करते हैं।' कुछ क्षण बाद वह देवी अन्तर्धान हो गयी। अब मुझे यह चिन्ता हुई कि ज्ञान की पुनर्प्राप्ति

कैसे हो। चूँकि मैंने सुना था कि तीर्थराज प्रयाग में समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है तो मैं वहाँ गया। कहते हैं, अक्षयवट के निकट सावित्री विद्यमान रहती हैं, इसलिये प्रयाग में मैंने कठिन तप किया। तप को देखकर प्रयाग स्वयं प्रकट हुये और वरदान मांगने को कहा। मैंने जब अपने ज्ञान की पुनर्प्राप्ति की बात उनसे बतायी तो उन्होंने कहा कि आप मेरे साथ परम रम्य वन महाकाल चलिये। वहाँ आपको ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। अभी यह प्रसंग चल रहा था कि गरुड़ पर विराजमान भगवान श्रीकृष्ण आकाश में प्रकट हुए। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म थे। वे बोले–'हे नारद! प्रयाग सत्य कहते हैं। आप बिना विचार किये इनके साथ चले आइये।' मैं जनार्दन की बात मानकर प्रयाग के साथ महाकाल वन चला गया। वहाँ पर घण्टेश्वर के पूर्व तथा नव नदी के दक्षिणी भाग में एक सनातन शिवलिंग हैं। मेरे समक्ष प्रयाग ने उस शिवलिंग की पूजा की। शिवलिंग ने प्रयाग से पूछा – 'तुम यहाँ क्यों आये हो ?' प्रयाग ने बताया–'मेरे साथ एक देवर्षि हैं। आप इन्हें ज्ञान प्रदान करें, क्योंकि सावित्री के दर्शन से इनके वेद–शास्त्र नष्ट हो गये हैं।' तब उस लिंग से वेद लिये ब्रह्माजी प्रकट हुये। उसी समय सावित्री ने समुपस्थित होकर मुझसे कहा–"प्रयाग की पूजा से प्रसन्न इस लिंग के प्रभाव से तुममें वेद शास्त्र पुनः प्रविष्ट होंगे। उसके बाद वैसा ही हुआ। नारद ने राजा प्रियव्रत से कहा कि प्रयाग द्वारा जिस देव की आराधना से उन्हें ज्ञान की पुनर्प्राप्ति हुई, वे प्रयागेश्वर कहे जाते हैं। तभी से वह लिंग करोड़ों तीर्थों के द्वारा समादृत है। प्रयागेश्वर स्वर्ग और अपवर्ग के फल को प्रदान करने वाला है। जो प्रयागेश्वर का दर्शन करते हैं, वे धन्य हैं।"

वर्तमान में प्रयागेश्वर की स्थिति की स्पष्ट जानकारी नहीं प्राप्त होती है। प्रयागेश्वर के सम्बन्ध में इस पुराण में कहा गया है–

प्रयागेश्वरसंज्ञं तु सर्वकामकरं परम्।
अष्टाधिकं विजानीहि पंचाशत्तममीश्वरम्।।

अग्निपुराण

अग्निदेव ने प्रयाग का माहात्म्य बताते हुये कहा है–ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता व श्रेष्ठ मुनिजन प्रयाग में ही निवास करते हैं तथा यह तीर्थ भोग ओर मोक्ष दोनों का प्रदाता है। वहाँ पर सभी नदियाँ, समुद्र, सिद्ध गन्धर्व, अप्सरायें, तीन अग्नि कुण्ड आदि हैं, जिनके बीच जह्नुपुत्री गंगा बहती हैं। वे अत्यंत वेगवती और सभी तीर्थों से आगे हैं। इसी प्रयाग में तीनों लोकों में प्रसिद्ध सूर्यकन्या यमुना भी हैं। गंगा और यमुना के मध्य का भाग पृथ्वी का जघन है। इन दोनों नदियों के मध्य प्रयाग योनि स्थित है। ऐसा ऋषिगण मानते हैं। प्रयाग में कम्बल और अश्वतर नामक तीर्थ भी हैं, जो ब्रह्मा की वेदी कहे जाते हैं।

अग्निदेव कहते हैं कि प्रयाग में वेद और यज्ञ मूर्तिमान हैं, अतः इसका नाम स्मरण करने और यहाँ की मिट्टी लेने से जीव पापमुक्त हो जाता है। प्रयाग के संगम क्षेत्र में किये गये दान–पुण्य आदि से अक्षयफल की प्राप्ति होती है। यहाँ पर प्राण त्याग, वेद और लोक वचनों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रयाग को साठ करोड़

तीर्थों का सान्निध्य प्राप्त होता है, इसीलिये यह सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। यहाँ पर नागराज वासुकि का भोगवती तीर्थ और हंसतीर्थ है। इन तीर्थों में तीन दिन तक स्नान करने का वही फल प्राप्त होता है, जो करोड़ों गायें दान करने से प्राप्त होता है। यहाँ माघ के महीने में स्नान करने का भी यही फल होता है। गंगा सभी स्थानों पर सुलभ है, किन्तु तीन स्थानों पर दुर्लभ हैं–गंगाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग तथा गंगासागर। यहाँ पर दान करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है और दूसरे जन्म में राजपद प्राप्त करता है। प्रयाग स्थित अक्षयवट के नीचे तथा संगम आदि स्थानों पर मृत्यु होने से विष्णुधाम की प्राप्ति होती है।

अग्निपुराण में प्रयाग क्षेत्र के जिन अन्य तीर्थों का वर्णन मिलता है, उनमें उर्वशीपुलिन, संध्यावट, कोटितीर्थ, अश्वमेध, गंगायमुन, निर्मलामानसतीर्थ तथा परमवासरक तीर्थ आते हैं। (अग्निपुराण, पूर्वार्धखण्ड, अध्याय १११)

अग्निरुवाच–

वक्ष्ये प्रयागमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम्।
प्रयागे ब्रह्माविष्ण्वाद्या देवा मुनिवराः स्थिताः।। १
सरितः सागराः सिद्धा गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि तेषां मध्ये तु जाह्नवी।। २
वेगेन समतिक्रांता सर्वतीर्थपुस्कृता।
तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।। ३
गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम्।
प्रयागं जघनस्यान्तरुपस्थमृषयो विदुः।। ४
प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतररावुभौ
तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः।। ५
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तः प्रयागके।
स्तवनादस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि।। ६
मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते।
प्रयागे सङ्गमे दानं श्राद्धं जप्यादि चाक्षयम्।। ७
न वेदवचनाद्विप्र न लोकवचनादपि।
मतिरुत्क्रमणीयान्ते प्रयागे मरणं प्रति।। ८
दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः।
तेषां सांनिध्यमत्रैव प्रयागं परमं ततः।। ९
वासुकेर्भोगवत्यत्र हंसप्रपतनं परम्।
गवां कोटिप्रदानाद्यत्त्र्यहं स्नानस्य तत्फलम्।। १०
प्रयागे माघमासे तु एवमाहुर्मनीषिणः।
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।। ११

गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
अत्र दानाद्दिवं यान्ति राजेन्द्रो जायतेऽत्र च।। १२
वटमूले सङ्गमादौ मृतो विष्णुपुरी व्रजेत्।
उर्वशीपुलिनं रम्यं तीर्थं सन्ध्यावटस्तथा।। १३
कोटितीर्थं चाश्वमेधं गङ्गायमुनमुत्तमम्।
मानसं रजसा हीनं तीर्थं वासरकं परम्।। १४

शिवपुराण

इस पुराण में आठवें खण्ड के प्रथम अध्याय में शिवलिंगों का विस्तृत वर्णन किया गया है। सूतजी ने यह कथा शौनकादिक ऋषियों को सुनायी है। उन्होंने यह तब सुनी, जब ब्रह्माजी ने स्वयं नारद से कही। तीर्थराज प्रयाग में ब्रह्मा जी द्वारा स्थापित किये हुये अनेक शिवलिंग हैं। इनमें ब्रह्मेश्वर लिंग सर्वोपरि है। दशाश्वमेध तीर्थ पर स्थित शिवलिंग का नाम सोमेश्वर है, जो समस्त कष्टों का नाश करके सुख प्रदान करता है (यद्यपि वर्तमान समय में सोमेश्वर अरैल में स्थित है)। भारद्विजेश्वर और माधवेश्वर शिवटंक में स्थित हैं। इनके अलावा नागेश्वर और संकटेश्वर लिंगों की भी अव प्रयाग क्षेत्र मे बतायी गयी है। शिवपुराण में वर्णित प्रयाग के प्रायः सभी शिवलिंगों का वर्तमान में भी अस्तित्व है।

इसी पुराण के ग्यारहवें खण्ड के सोलहवें अध्याय में प्रयाग में माघ–स्नान का पुण्य बताया गया है। ब्रह्मा जी ने देवर्षि नारद से तीर्थराज का माहात्म्य वर्णन किया है–'माघ के महीने में जो मनुष्य प्रयाग जाकर संगम में स्नान करते हैं, वे हमारे लोक (सत्य लोक) आकर अनेकानेक सुखों और ऐश्वर्य का भोग करते हैं। सत्यलोक का अस्तित्व तप लोक से ऊपर बताया गया। यह लोक पृथ्वी से आठ करोड़ योजन ऊँचा है। वहाँ न तो किसी प्रकार की चिन्ता है और न ही दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों दुख हैं। इस लोक में जाने वाले जीव को व्याधियों का भय नहीं होता।'

इस प्रकार शिवपुराण के अनुसार प्रयाग के सेवन का फल निश्चय ही सुखद और मोक्ष प्रदाता है।

कूर्मपुराण

प्रयाग-यात्रा का फल

प्रयाग की यात्रा किस प्रकार की जाय, इसका विधान महर्षि मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को बताया है। तीर्थराज प्रयाग में पदयात्रा का महत्व है। वाहन–यात्रा सर्वथा वर्जित है। यद्यपि समकालीन परिस्थितियों में यह बात अप्रासंगिक लगती है, लेकिन धर्मप्राण जन पुराणों की बात को सदैव शिरोधार्य करते हैं।

प्रयाग–यात्रा का महत्व बताते हुये महर्षि मार्कण्डेय धर्मराज युधिष्ठिर से कहते हैं कि वाहन से तीर्थयात्रा करने वाला मनुष्य उसका फल नहीं प्राप्त कर पाता, इसलिये उसे वाहन त्यागकर यात्रा करनी चाहिये। जो यात्राकाल में गंगा–यमुना के बीच कन्यादान करता है और विधानपूर्वक वैभव–विस्तार के अनुसार कार्य करता है, उसे नर्क नहीं भोगना पड़ता। जो मनुष्य अक्षयवट के मूल में बैठकर प्राण–त्याग करता है, वह स्वर्गलोक पारकर रुद्रलोक प्राप्त करता है, जहाँ ब्रह्मादिकदेव तथा दिक्पालों सहित दिशायें विद्यमान रहतीं तथा लोकपाल, पितर व ब्रह्मर्षि सनत्कुमार आदि होते हैं।

मार्कण्डेय कहते हैं कि गंगा–यमुना का मध्य–भाग पृथ्वी का जघन है। प्रयाग तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। यहाँ संगम में जो अभिषेक करता है, उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है। इसलिये हे धर्मराज! माता की आज्ञा तथा सत्पुरुषों के वचनानुसार तुम्हें प्रयाग की यात्रा करनी चाहिये।

संन्यास प्राप्त विद्वान एवं योग युक्त योगी की जो स्थिति होती है, वही गंगा–यमुना के संगम में प्राणोत्सर्ग करने वाले की होती है। जहाँ–तहाँ रहने वाले यदि प्रयाग को प्राप्त नहीं करते तो एक प्रकार से जीवित ही नहीं रहते हैं, अर्थात्–मृतप्राय हैं। इस प्रकार तीर्थराज के दर्शन करने वाला राहु के द्वारा चन्द्रमा की तरह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। यहाँ पर यमुना के दक्षिण तट पर कम्बल और अश्वतर नाग हैं। वहाँ पर स्नान करने और जल पीने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होता जाता है। वहाँ स्नान करने पर अतीत और भविष्य के दस–दस पुरखे तर जाते हैं।

भागीरथी के सत्य भाग के उत्तर में प्रतिष्ठान हैं, उस तीर्थ का नाम हंस प्रपतन (हंसकूप) है, जो तीनों लोकों में विख्यात है। वहाँ पर मात्र संवृत होने से अश्वमेघ यज्ञ का पुण्य मिलता है। जब तक सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी पर रहते हैं, तब तक वह मनुष्य स्वर्ग में रहता है। जो उर्वशी के पुलिन में प्राणोत्सर्ग करता है वह साठ हजार साठ वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है जो ब्रह्मचारी संध्यावट में परम शुद्धता के साथ उपासना करता है, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

जो मनुष्य कोटितीर्थ जाकर प्राण त्याग करता है, वह एक करोड़ हजार वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है। प्रयाग, जहाँ बहुत से तीर्थों और तपोवनों वाली गंगा महाभागा है, परम सिद्ध क्षेत्र है, इसमें किंचित संदेह नहीं है।

माघ मास में सभी तीर्थ गंगा–यमुना के संगम में चले जाते हैं। इस काल में प्रयाग में तीन दिन स्नान करने से सौ हजार गायों के दान करने का पुण्य मिलता है। ऐसी मान्यता है कि गंगा–यमुना के बीच अंगहीन व्यक्ति भी कराषाग्नि (धूनी रमाना) साधना करता है तो वह रोगमुक्त होकर सर्वांग और पाँचों इंद्रियों से युक्त हो जाता है। उसके शरीर में जितने रोमकूप होते हैं, उतने हजार वर्षों तक स्वर्ग का अधिकारी होता है। वह स्वर्ग का लाभ प्राप्त कर जम्बू द्वीप का स्वामी बनता है और पुनः उसी तीर्थ का भोग करता है। जो संगम के जल में प्रवेश करता है, राहु से चन्द्रमा की भाँति पापों से मुक्त हो जाता है। वह मनुष्य सोमलोक में चन्द्रमा के साथ एक सौ साठ हजार वर्ष तक आमोद–प्रमोद करता है। प्रयाग में यमुना तट पर दक्षिण भाग में ऋणमोचन तीर्थ है। वहाँ एक रात्रि निवासकर स्नान करने वाला मनुष्य ऋणमुक्त होकर

स्वर्ग को प्राप्त करता है :

निष्फलंतस्यातत्तीर्थं तस्माद्यानंविवर्जयेत्।
गङ्गायमुनयोर्मध्येयस्तुकन्यांप्रयच्छति।। ६
आर्षेण तु विधानेन यथा विभवविस्तरम्।
न स पश्यति तं घोरंनरकं तेनकर्म्मणा।। ७
उत्तरान्सकुरून्गत्वामोदते कालमव्ययम्।
वटमूलंसमाश्रित्ययस्तु प्राणान्परित्यजेत्।। ८
स्वर्गलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति।
यत्र ब्रह्मादयो देवादिशश्चसदिगीश्वराः।। ९
लोकपालश्च पितः सर्व्वेतेलोकसंस्थिताः।
सनत्कुमार प्रमुखास्तथाब्रह्मर्षयोऽपरे।। १०
गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम्।
प्रयागं राजशार्दूलत्रिषुलोकेषुविश्रुतम्।। १२
तत्राभिषेकं यः कुर्य्यात्संगमे शषितव्रतः।
तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूर्याश्च मेधयोः।। १३
न मातृवचनात्तात! नलोकवचनादपि।
मतिरुत्क्रमणीयाते प्रयागगमनंप्रति।। १४
षष्टि तीर्थ सहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः।
तेषांसान्निध्यमत्रैवतीर्थानांकुरुनन्दन।। १५
या गतिर्योगयुक्तस्य सन्यस्तस्य मनाषिणः।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसंगमे।। १६
न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिन्यत्र तत्र युधिष्ठिर!
ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु वञ्चिताः।। १७
एवं दृष्ट्वा तु तत्तीर्थं प्रयागंपरमं पदम्।
मुच्यतेसर्वपापेभ्यः शशांकइव राहुणा।। १८
कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे।
तत्रस्नात्वाचपीत्वाचमुच्यते सर्व्वपातकैः।। १९
तत्र गत्वा नरः स्नानं महादेवस्य धीमतः।
समस्तांस्तारयेत् पूर्व्वान्दशातीतान्दशावरान्।। २०
उत्तरेण प्रतिष्ठानं भागीरथ्यास्तु सव्यतः।
हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।। २४

अश्वमेधफलं तत्र स्मृतमात्रे तु जायते।
यावच्चन्द्रश्च सूर्य्यश्च तावत्स्वर्गे महीयते।। २५
उर्वशीपुलिने रम्ये विपुलेहंसपाण्डुरे।
परित्यजतियः प्राणाञ्छृणुतस्यापियत्फलम्।। २६
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
आस्ते स पितृभिः सार्द्धं स्वर्गलोकेनराधिप।। २७
अथ सन्ध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी समाहितः।
नरः शुचिरुपासीत ब्रह्मलोकमवाप्नुयात।। २८
कोटितीर्थं समासाद्यस्तुप्राणान्परित्यजेत्।
कोटिवर्षसहस्राणिस्वर्गलोकेमहीयते।। २९

गवांशतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्ययत्फलम्।
प्रयागेमाघमासेतुंत्र्यहंस्नातस्यतत्फलम्।। २
गंगायमुनोर्मध्ये करीषाग्निञ्च साधयेत्।
अहीनांगो ह्यरोगश्च पंचेन्द्रियसमन्वितः।। ३
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु भूमिप।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्ग लोके महीयते।। ४
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टोजम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
भुक्त्वासविपुलान्भोगांस्तत्तीर्थलभतेपुनः।। ५
जलप्रवेशं यः कुर्य्यात्संगमेलोकविश्रुते।
राहुग्रस्तो यथा सोमो विमुक्तः सर्वपातकैः।। ६
सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते।
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।। ७

ब्रह्मपुराण

ब्रह्मपुराण में प्रयाग में सरस्वती संगम तीर्थ की महत्ता स्वयं ब्रह्मा जी ने अपने मुँह से सुनायी है। चूँकि यहाँ पर सरस्वती अदृश्य रूप में गंगा में आकर मिलती हैं, अतः इस क्षेत्र को सरस्वती संगम तीर्थ कहा गया है।

एक बार महाराजा पुरुरवा ब्रह्मा के सभा भवन में आये और उनके पास बैठी सरस्वती को देखकर उन्हें कुछ संदेह उत्पन्न हो गये। उन्होंने उर्वशी को अपने पास बुलाया तथा कुछ दक्षिणादि देकर इस बात की

जानकारी चाही कि वह सुन्दर स्त्री कौन है, जो ब्रह्मा के पास बैठी है। इस पर उर्वशी ने उन्हें बताया कि यह देवनदी सरस्वती हैं, जो प्रायः ब्रह्मा जी के यहाँ आया करती हैं। देवनदी का नारी का सुन्दर रूप देखकर राजा पुरुरवा उनकी ओर आकृष्ट हो गये और अपना काफी समय देवनदी के तट पर जाकर बिताया। दोनों के सम्पर्क से एक पुत्र की उत्पत्ति हुयी, जिसका नाम सरस्वान् रखा गया।

यह बात ब्रह्मा जी को ज्ञात हुई तो उन्होंने इसकी परीक्षा ली। सरस्वान् के हाव–भाव देखने के बाद उन्हें सरस्वती पर बड़ा क्रोध आया और शाप दे दिया – 'जाओ, तुम महानदी हो जाओ।' सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से भयभीत सरस्वती वागीश्वरी गौतमी के पास गयीं। इधर यह बात गंगा जी को भी मालूम हुई। उन्होंने ब्रह्माजी से सरस्वती को शापमुक्त करने को कहा।

ब्रह्माजी ने उत्तर दिया–'यह दृश्यादृश्य–जिस रूप में भी गंगा से मिल जायेगी, इसकी महत्ता बनी रहेगी।' शाप विह्वल सरस्वती प्रयाग में अदृश्य रूप में गंगा से जाकर मिल गयीं। वहीं पर महाराजा पुरुरवा ने भी बैठकर सिद्धेश्वर की आराधना की, जिससे उन्हें मनोरथ की प्राप्ति हुयी। इस प्रकार इस पुनीत क्षेत्र को सरस्वती संगम तीर्थ कहा जाने लगा। यह क्षेत्र मनोकामना पूर्ण करने वाला है। इसे ब्रह्मतीर्थ भी कहते हैं, क्योंकि यहाँ महादेव सिद्धेश्वर विराजमान हैं–

सर्वान्कामानथावाप गंगायाश्च प्रसादतः।
तत प्रभृति तत्तीर्थं पुरुरवसमुच्यते।।
सरस्वती संगमं च ब्रह्मतीर्थं तदुच्यते।
सिद्धेश्वरो यत्रदेवः सर्वकामप्रदं तु तत्।।

(ब्रह्मपुराण, अध्याय १०१, श्लोक १६–२०)

वामन पुराण

वामन पुराण में प्रयाग का वर्णन एक वेदी के रूप में आया है। भगवान स्वयं कहते हैं कि सम्पूर्ण भारत भूमि में ब्रह्मा की पाँच वेदियाँ हैं, जहाँ पर बैठकर उन्होंने यज्ञ किया था। इन वेदियों के स्थान प्रयाग, कुरुक्षेत्र, गया, विरजा तथा पुस्कर बताये गये हैं–

प्रयागो मध्यमावेदिः पूर्ववेदिः गयाशिरः।
विरजा दक्षिणा वेदिरनन्तफलदायिनी।।
प्रतीची पुष्करा वेदिस्त्रिभिः कुण्डैरलंकृता।
समन्त पंचका प्रोक्ता वेदिरेवोत्तराव्यया।।

अर्थात्–प्रयाग मध्यमा वेदी, गया पूर्वा वेदी ओर विरजा दक्षिणा देवी है, जो अनन्त फल देने वाली है। पुष्कर पश्चिमी देवी है और कुरुक्षेत्र उत्तरावेदी है।

प्रयाग चूँकि मध्यमा वेदी रही है, इसलिये ब्रह्मा ने यहाँ बैठकर अनन्त यज्ञ किये, जिससे यहाँ की भूमि

का पृष्ठभाग काला पड़ गया और यहीं से इसका नाम प्रयाग पड़ा।

प्रयाग का महत्व तो सर्वविदित है ही, इसकी अन्य चारों वेदियाँ भी महत्वपूर्ण तीर्थ के रूप में विख्यात हैं। यद्यपि समकालीन परिस्थितियों में यज्ञों का वह स्वरूप नहीं रह गया, परन्तु इन तीर्थों की गरिमा यथावत् है।

प्रयाग के मध्यमा वेदी होने का यह वर्णन इस पुराण के अध्याय २३ के श्लोक १६ मे पाया जाता है।

वृहन्नारदीय पुराण

इस पुराण में सूत जी ने कथा सुनायी है। सूत जी कहते हैं कि एक बार देवर्षि नारद ने सनक जी से पूछा कि सर्वोत्तम क्षेत्र और सर्वोत्तम तीर्थ कौन है, तब सनक जी ने नारद को बताया कि सर्वोत्तम क्षेत्र एवं तीर्थ गंगा–यमुना का संगम है। स्वच्छ और नील जल से सुशोभित उस तीर्थ की सेवा ब्रह्मादिक देवता तथा मुनिवृंद भी करते हैं। गंगा पुण्यप्रदायिनी नदी है, क्योंकि यह विष्णु के चरणकमलों से निकली हुई है। यमुना सूर्यतनया है, अतः इन दोनों नदियों का संगम परमकल्याणकारी है। गंगा वह श्रेष्ठ नदी है, जिसके स्मरणमात्र से पानी के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और उपद्रव दूर हो जाते हैं।

सनक जी कहते हैं – 'हे नारद! समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर जितने पुण्य क्षेत्र विद्यमान हैं, उनमें प्रयाग नामक तीर्थ उत्तम है। यहाँ पर ब्रह्माजी ने स्वयं यज्ञ सम्पन्न किये थे। समस्त तीर्थों में स्नान के जो पुण्य प्राप्त होते हैं, वे प्रयागवाहिनी गंगा में स्नान के सोलवहें भाग के बराबर भी नहीं हैं। देवनदी में प्रयाग में स्नान करने से परमपद की प्राप्ति होती है। उस तीर्थ की कितनी प्रशंसा की जाय, जहाँ स्नान करने पर महात्मा अपने माता–पिता के भी सहस्रों पुरखों का उद्धार कर विष्णुलोक चले जाते हैं! प्रयाग में स्नान करने वाला पापी व्यक्ति भी स्वर्ग का अधिकारी हो जाता है। उसके शरीर के स्पर्श मात्र से मनुष्य देवराज इन्द्र का स्वरूप प्राप्त करता है। तुलसी के मूल की मिट्टी ब्राह्मणों की चरण धूल और प्रयाग की गंगा की मिट्टी मनुष्य को विष्णु के समान पद प्रदान करती है। गंगा और यमुना का संगम काशी से भी अधिक पुण्यप्रद है, जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य परम गति को प्राप्त करता है। मकर संक्रांति के समय गंगा में स्नान करने और उसका जल पीने से मनुष्य पवित्र हो जाता है :

क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम्। गङ्गायमुनयोर्योगं वदन्ति परमर्षयः।।५।।
सितासितोदकं तीर्थं ब्रह्माद्याः सर्वदेवताः। मुनयो मनवश्चैव सेवन्ते पुण्याकाङ्क्षिणः।।६।।
गङ्गा पुण्यनदी ज्ञेया यतो विष्णुपदोद्भवा। रविजा यमुना ब्रह्मंस्तयोर्योगं शुभावहः।।७।।
स्मृतार्तिनाशिनी गङ्गा नदीनां प्रवरा मुने। सर्वपापक्षयकरी सर्वोपद्रवनाशिनी।। ८।।
यानि क्षेत्राणि पुण्यानि समुद्रान्ते महीतले। तेषा पुण्यतमं ज्ञेयं प्रयागाख्यं महामुने।।९।।
सर्वतीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानि तानि वै। गङ्गाबिन्द्वभिषेकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।११।।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शते स्थितः। सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान्।।१२।।
विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरः स्थिता। संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः।।१३।।
यत्सैकतं ललाटे तु ध्रियते मनुजोत्तमैः। तत्रैव नेत्रं विज्ञेयं विध्वर्द्धाधः समुज्ज्वलत्।।१४।।
यन्मज्जनं महापुण्यं दुर्लभं त्रिदिवौकसाम्। सारूप्यदायकं विष्णोः किमस्मात्कथ्यते परम्।। १५।।
यत्र स्नाताः पापिनोऽपि सर्वपापविवर्जिताः। महद्विमानमारूढाः प्रयान्ति परमं पदम्।।१६।।
यत्र स्नाता महात्मानः पितृमातृकुलानि वै। सहस्राणि समुद्धत्य विष्णुलोके व्रजन्ति वै।।१७।।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु यो गङ्गां स्मरति द्विज। पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु स्थितवान्नात्र संशयः।।१८।।
यत्र स्नातं नरं दृष्ट्वा पापोऽपि स्वर्गभूमिभाक्। मदङ्गस्पर्शमात्रेण देवानामधिपो भवेत्।।१९।।
तुलसीमूलसंभूता द्विजपादोद्भवा तथा। गङ्गोद्भवा तु मृल्लोकान्नयत्यच्युतरूपताम्।।२०।।
गङ्गायमुनयोर्योगोऽधिकः काश्या अपि द्विज। यस्य दर्शनमात्रेण नरा यान्ति परां गतिम्।।४१।।
मकरस्थे रवौ गङ्गा यत्र कुत्रावगाहिता। पुनाति स्नानपानाद्यैर्नयन्तीन्द्रपुरं जगत्।।४२।।

मनुस्मृति

भारतीय संस्कृति में मनुस्मृति एक ऐसा ग्रंथ है, जो इस देश की व्यवस्था के लिये दिशा–निर्देशक बना था। वर्णक्रम की चर्चा हो या राजकीय कार्यों की, मनुस्मृति में एक–एक विषय की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

देश–वर्णन के क्रम में मनुस्मृति में प्रयाग का अस्तित्व बताया गया है–

हिमवद्विनध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाश्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।।

तात्पर्य यह कि हिमाचल और विन्ध्याचल के मध्य, सरस्वती के पूर्व तथा प्रयाग के पश्चिम में मध्य देश है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि मनुस्मृति जिस काल में रची गयी, उस काल में प्रयाग एक महत्वपूर्ण स्थल था, तभी इसकी दिशा का आश्रय लेकर मनु ने मध्यदेश की स्थिति बतायी है।

यद्यपि मनुस्मृति में प्रयाग के माहात्म्य पर कुछ अधिक प्रकाश नहीं डाला गया, किन्तु मात्र एक स्थान पर ही चर्चा से इसकी महत्ता सिद्ध हो जाती है। यह विवरण मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में है।

वाल्मीकीय रामायण

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम सीता एवं लक्ष्मण समेत जब अयोध्या से वनवास के लिये गये तो विभिन्न मार्गों से होते हुये वे एक विशाल वन पार करके उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ गंगा–यमुना का संगम है। शायद

यह प्रयाग वन रहा होगा, जिसकी चर्चा कई पुराणों में की गयी है। वे सायंकाल संगम के निकट पहुँचे और लक्ष्मण से कहा–'देखो प्रयाग के पास भगवान अग्निदेव की ध्वजा की तरह उत्तम धूम्र उठ रहा है। मालूम होता है मुनिवर भरद्वाज यहीं पर हैं। निश्चय ही हम गंगा–यमुना के संगम के निकट पहुँच गये हैं, क्योंकि दो नदियों के जल के परस्पर टकराने से जो शब्द प्रकट होता है, वह सुनायी दे रहा है।'

वन में उत्पन्न हुये फल–मूल और काष्ठ आदि से जीविका चलाने वाले लोगों ने जो लकड़ियाँ काटी हैं, वे दिखायी पड़ रही है। आश्रम के समीप विविध प्रकार के वृक्ष भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कुछ ही देर में सीता सहित दोनों भाई आश्रम में पहुँचे और दूर से ही देखा कि मुनिवर भरद्वाज शिष्यों से घिरे हुये हैं। वे उनके समीप गये तथा प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीराम ने अपना परिचय दिया। सब जानने के पश्चात् भरद्वाज जी ने श्रीराम के सत्कार में एक गौ तथा जल का अर्घ्य समर्पित किया। उन्होंने नाना प्रकार के फल, अन्न एवं कंदमूलफल प्रदान किया और निवास की व्यवस्था की।

रात्रि में मुनिवर भरद्वाज के साथ श्रीराम का वार्तालाप हुआ। मुनिवर ने कहा–'हे राम! गंगा–यमुना के संगम के पास का यह स्थान बड़ा पवित्र और एकान्त वाला है। यहाँ की प्राकृतिक छटा मनोरम है। आप यहीं सुखपूर्वक निवास करें–

अवकाशो विविक्तोयं महानद्यो समागमे।
पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान्सुखम्।।

(अयोध्याकाण्ड, सर्ग ५४, श्लोक २२)

इस पर श्रीराम ने कहा–'मुनिवर! यह स्थल मेरे नगर, अर्थात्–अयोध्या के निकट है। यहाँ के निवासी मुझसे मिलने और सीता को देखने आते रहेंगे, इस कारण मेरा यहाँ निवास करना उचित नहीं होगा।' तब मुनिवर भरद्वाज ने चित्रकूट का मार्ग बताया। यहीं पर महर्षि भरद्वाज ने श्रीराम को चित्रकूट की भी महत्ता बतायी कि चित्रकूट के शिखरों का दर्शन करने से कल्याणकारी पुण्यकर्मों का फल प्राप्त होता है और कभी पाप में मन नहीं लगता–

यावता चित्रकूटस्य नरः शृंगाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुतेमनः।। (सर्ग ५४, श्लोक ३०)

इसके पश्चात् श्री महर्षि भरद्वाज के पास बैठकर श्रीराम प्रयाग में तरह–तरह की बातें करते रहे और रात्रि हो जाने पर महर्षि ने उन्हें विश्राम करने को कहा–

तस्य प्रयागे रामस्य तं महर्षिमुपेयुषः।
प्रपन्नारजनीपुण्या चित्राः कथयतः कथाः।।

(अयोध्याकाण्ड, सर्ग ५४, श्लोक ३४)

प्रातःकाल जब श्रीराम चित्रकूट जाने की तैयारी करने लगे तो महर्षि भरद्वाज ने उन्हें बताया–'यहाँ से आगे जाने पर आपको एक बरगद का पेड़ मिलेगा, जिसे श्यामवट कहते हैं। इसके नीचे बहुत से सिद्धपुरुष निवास करते हैं। वहाँ पहुँचकर सीता जी उस वृक्ष से कुछ याचना करें। आवश्यकता हो तो आप लोग कुछ समय निवास भी करें।' यह श्यामवट आज का अक्षय वट है। यह उस समय यमुना के उस पार रहा होगा और

धारा–परिवर्तन के पश्चात् इस पार आ गया होगा, क्योंकि भरद्वाज जी ने यमुनापार के इस वृक्ष का वर्णन किया है। आज की भौगोलिक स्थिति और गंगा–यमुना की धारा के समय–समय पर दिशा बदलने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय यमुना यहीं होगी, क्योंकि वर्तमान भरद्वाज आश्रम के पास की भूमि का ढाल यहाँ की स्थिति का वर्णन कर देता है।

श्रीराम की खोज में निकले उनके छोटे भाई भरत भी प्रयाग स्थित महर्षि भरद्वाज के आश्रम आये थे, जिसका विस्तृत वर्णन वाल्मीकीय रामायण में है।

महाभारत

इस ग्रंथ में तीर्थों की महत्ता के साथ–साथ प्रयाग की विशेषता का विस्तृत वर्णन किया गया है। तीर्थयात्रा का फल यज्ञादि के समान विशेष पुण्यदायी होता है। अग्निहोत्र, विपुल दानदक्षिणादि से उतना फल नहीं मिलता, जितना कि तीर्थयात्रा से। महाभारत के वनपर्व का प्रसंग है–

ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरत सत्तम।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपिविशिष्यते।।
अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्।।

इस क्रम में वर्णित तीर्थों में प्रयाग को प्रथम श्रेणी का तीर्थ कहा गया है और इसकी स्थिति कन्नौज (कान्यकुब्ज) से पूर्व बतायी गयी है। लोमश ऋषि ने धर्मराज युधिष्ठिर से प्रयाग का माहात्म्य बताया है। प्रयाग की विशिष्टता बताते हुये ऋषिवर धर्मराज से कहते हैं–

ततो गच्छेत राजेन्द्र प्रयागमृषि संस्तुतम्।
यत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः।
तत्र हंसप्रपतनं तीर्थं त्रैलोक्य विश्रुतम्।
तथाश्वमेधिकं चैव गंगायां कुरुनंदन।

अर्थात्–'हे राजेन्द्र! तुम्हें ब्रह्मादिदेव पूजित प्रयाग जाना चाहिये, जहाँ ब्रह्मा की वेदी और भोगवती तीर्थ है। वहाँ का हंस प्रपतन तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है।'

प्रयाग में गंगा–यमुना के संगम का वर्णन करते हुये इसमें स्नान करने का फल भी बताया गया है–

यमुना गंगया सार्धं संगता लोक पावनी।
गंगा यमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम्।।
चतुर्विद्ये च यत्पुण्यं सत्यवादिषु चैवयत्।
स्नात एव तदाप्नोति गंगा यमुन संगमे।।

मकर संक्रांति पर प्रयाग में स्नान का इतना पुण्य होता है कि स्वयं ब्रह्मा जी उसका फल बनाने में

असमर्थ हो जाते हैं।

गंगा, यमुना, सरस्वती एवं नर्मदा को चारों वेदों की तरह माना जाता है। गंगा ऋग्वेद–स्वरूप हैं, यमुना यजुर्वेद–स्वरूप हैं, सरस्वती अथर्ववेद–स्वरूप हैं और नर्मदा सामवेद–स्वरूप हैं–

ऋग्वेदमूर्तिर्गंगा स्याद्यमुना च यजुर्धुवा।
नर्मदा साममूर्तिस्तु स्यादथर्वा सरस्वती।।

इसी प्रकार उद्योग पर्व, अनुशासन पर्व, आदि पर्व में भी प्रयाग तथा त्रिवेणी संगम का वर्णन आया है।

वनपर्व में महर्षि वैशम्पायन जनमेजय को कथा सुनाते हुये कहते हैं कि वीर पाण्डव अपने साथियों के साथ इधर–उधर बसते हुये नैमिषारण्य क्षेत्र गये, वहाँ पर उन्होंने गोमती–स्नान करके बहुत सी गायें दान दीं। फिर देवता, पितर और ब्राह्मणों को तृप्त करते हुये कन्यातीर्थ, अश्वतीर्थ, गोतीर्थ, कालकोटि, विषप्रस्थ पर्वत पर निवास किया। वहाँ से वे देवताओं की यज्ञ–भूमि प्रयाग पहुँचे। प्रयाग में सत्यनिष्ठ पाण्डवों ने गंगा–यमुना के संगम में स्नान करके ब्राह्मणों को बहुत–सा धन दान किया।

इसके पश्चात् वे प्रजापति ब्रह्मा की वेदी पर गये, जहाँ बहुत–से तपस्वी निवास करते थे। इसी स्थान पर रहकर पाण्डवों ने तपस्या की और ब्राह्मणों को कन्द–मूल और फल से तृप्त किया, तत्पश्चात् गया चले गये।

रघुवंश महाकाव्यम्

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में प्रयाग का वर्णन स्वयं न करके मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मुख से कराया है। श्रीराम जब लंका विजय के पश्चात् वापस पुष्पक विमान से लौटते हुये सीता जी को उन समस्त स्थलों का अवलोकन कराते हुये चल रहे थे। जब पुष्पक विमान प्रयाग की पावन भूमि के ऊपर से निकल रहा था, उसी समय श्यामवट (अक्षयवट) की ओर संकेत करते हुये श्रीराम सीता जी से कहते हैं–'वनगमन के समय तुमने जिस वटवृक्ष से कामना (मन्नत) की थी, यह वही वट है, जो अब फलित हो गया है। उस पेड़ के फल इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, जैसे पद्मराग से मिली हुयी मरकत मणियों का समूह हो।'

आकाशमार्ग से सीताजी को गंगा और यमुना के संगम का दर्शन कराते हुये श्रीराम कहते हैं–'यमुना की लहरों से मिले हुये प्रवाह वाली गंगा इस प्रकार शोभायमान हो रही है, मानो कान्तिमयी इन्द्रनील मणियों के साथ गुँथी हुयी मोतियों की माला हो। कहीं पर वह ऐसे प्रतीत होती है, जैसे नील कमलों के मध्य गुँथी हुयी श्वेतपद्मों की हारावली हो। यमुना और गंगा ऐसे प्रतीत हो रही हैं, जैसे कहीं कृष्ण हंसों से मिली हुयी मानसरोवर में विहार करने वाले राजहंसों की श्रेणी हो। कहीं–कहीं पर उसकी आभा पृथ्वी के मुखमंडल पर लगे हुये श्वेत चंदन के लेप पर काले चन्दन के द्वारा की गयी शृंगार रचना प्रतीत होती है।

'गंगा का स्वरूप यमुना की श्यामल जल छाया में स्थित अंधकार से चित्रित चाँदनी–सा प्रतीत होता है। कहीं–कहीं ऐसा आभास होता है, जैसे–शरद ऋतु के श्वेत बादलों का समूह हो, जिसके बीच आकाश का

थोड़ा–बहुत नीला क्षेत्र दृष्टिगोचर होता है।' गंगा–यमुना के संगम की महिमा का गान करते हुये श्रीराम ने सीता जी से बताया कि यहाँ पर स्नान करने वालों की आत्मा पवित्र हो जाती है। किसी तत्वज्ञान के बिना शरीर त्यागने पर वे आवागमन की रहितता, यानी मोक्ष प्राप्त करते हैं। तात्पर्य यह है कि संगम में स्नान–मात्र से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

शृंगवेरपुर के वर्णन में श्रीराम अपनी उन स्मृतियों का भावात्मक स्मरण करते हुये सीता से कहते है कि यह निषादराज की वही नगरी है, जहाँ उनके द्वारा चूड़ामणि उतार कर जटा बाँधने पर महामन्त्री सुमन्त जी भाव–विह्वल होकर रो पड़े थे और वे अपने से ही कहने लगे थे कि अब तो कैकेयी की समस्त मनोकामनायें पूर्ण हो गयीं। कल्पना कीजिये कि श्रीराम उस समय कितने भावुक हो गये होंगे, जब शृंगवेरपुर का वर्णन कर रहे थे।

इस प्रकार कालिदास ने भावनात्मक दृष्टिकोण से प्रयाग की चर्चा रघुवंश में की है। यह वर्णन इस महाकाव्य के तेरहवें सर्ग का है–

"क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलै
मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सित पंक जाना,
मिन्दीवरै रुत्खाचतान्तरेव।।५४।।

क्वचित् खगानां प्रिय मानसानां
कदम्ब संसर्गवतीव पंक्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा
भक्ति भुविश्चन्दन कल्पितेव।।५५।।

क्वचित्प्रभा चान्डमसी तमोभि-
श्छायाविलीनः शबली कृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा,
रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनमः प्रदेशा।।५६।।

समुद्र पत्न्यांजलिसन्निपाते
पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्वावबोधेन बिनापि भूय
स्तनुत्यजां नालि शरीर बंधः।।५८।।

पुरं निषादाधिपतेरिदं तद्
यास्मिन्मया मौलमणिं विहाय।
जटासु बद्ध स्वरूदत्सुमन्त्रः
कैकेयि कामाः फालितास्तवेती" ।।५६।।

रामचरित मानस

वर्तमान समय के सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने तीर्थराज प्रयाग की महिमा का बड़े रोचक ढंग से वर्णन किया है, जिसे हृदयंगम कर कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो प्रयाग की ओर आकृष्ट न हो। रामचरित मानस के बालकाण्ड में प्रयाग में माघ–स्नान और इसकी महत्ता का मोहक प्रसंग आता है–

"भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिनहिं रामपद अतिअनुरागा।।
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना।।
माघ मकरगत रवि जब होई। तीरथ पतिहिं आव सब कोई ।।
देवदनुज किन्नर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी।।
पूजहिं माधव पद जल जाता। परहिं अछैवट हरषहिं गाता।।
भरद्वाज आस्रम अति पावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन।।
तहाँ होइ मुनि रिसय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा।।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरि गुन गाहा।।

माघ के त्रिवेणी स्नान का यह इतना मोहक और मनभावन प्रसंग है, जो उस समय का पूरा सजीव दृश्य उपस्थित कर देता है। माघ में संतजन प्रातः काल स्नान करके रामकथा कहते हैं। ईश्वर के विविध स्वरूपों व विविध तत्वों की चर्चा करते हैं। आबाल–वृद्ध सभी सप्रेम और उत्साह पूर्वक स्नान करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं–

ब्रह्मनिरूपन धरम विधि बरनहिं तत्व विभाग।
कहहिं भक्त भगवन्त की संजुत ग्यान विराग।।
एहि प्रकार भरि मकर नहाहीं। मुनि सब निज-निज आश्रम जाहीं।
प्रति संवत असहोइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा।।

प्राचीनकाल से माघ स्नान की चली आ रही परम्परा आज भी उसी प्रकार कायम है। वनगमन के समय प्रभु श्रीराम जब माँ सीता, लक्ष्मण व निषादराज के साथ वहाँ दर्शन करते हैं। तीर्थराज प्रयाग की महत्ता बताते हुये इस विषय में गोस्वामी जी अयोध्या काण्ड में लिखते हैं–

प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई।।

२० तीर्थराज प्रयाग

श्रीराम को ऐसा आभास हुआ कि तीर्थराज ऐसा है, जिसका सचिव सत्य है, श्रद्धा प्रिय पत्नी है। माधव जी के समान उसके मित्र हैं। यह क्षेत्र चार पदार्थों, अर्थात्–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के भंडार से भरा हुआ अत्यन्त रुचिकर देश है। प्रयाग ऐसा दुर्गम किला है, जिसमें पापरूपी शत्रु स्वप्न में भी नहीं प्रवेश कर सकता। प्रयाग के वीर सभी श्रेष्ठ तीर्थ हैं, जो पापरूपी शत्रु को नष्ट करके धैर्यवान बने रहते हैं। उस तीर्थराज का सिंहासन संगम है तथा उस सिंहासन का छत्र अक्षयवट है। गंगा–यमुना की प्रिय पावन लहरें तीर्थराज की चँवर हैं, जिन्हें देखकर समस्त दुःख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है। इस तीर्थराज के पुण्यात्मा साधु सेवक हैं, जो उसका गुणगान करके अपनी सभी मनकामनाएँ पूरी करते हैं। वेद और पुराण उस तीर्थराज के कीर्ति प्रचारक हैं–

सचिव सत्य श्रद्धाप्रिय नारी। माधव सरिस मीत हितकारी।।
चार पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू।।
छेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहु नहिं प्रति पच्छिन्ह पावा।।
सेन सकल तीरथवर बीरा।। कलुष अनीकदलन रनधीरा।।
संगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अछैवट मुनिमन मोहा।।
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दारिद दुख भंगा।।
सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम।
बन्दी वेदपुरान गन, कहहिं विमल गुनग्राम।।

(रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड)

आगे गोस्वामी जी लिखते हैं–

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुस पुंज कुंजर मृगराऊ।।

तात्पर्य यह कि जहाँ पापों का पुंज हाथी के समान हो, लेकिन तीर्थराज प्रयाग मृगराज सिंह की भाँति उसका दमन करने वाला हो, ऐसे प्रयाग के प्रभाव की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है–

अस तीरथ पति देखि सुहावा। सुखसागर रघुवर सुख पावा।।

एक स्थान पर गोस्वामी जी लिखते हैं–

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।।

प्रयाग का यह वर्णन उस महान पुण्यात्मा ने किया है, जिसने स्वयं अपने बारे में लिखा है–

"कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ।
मति अनुसार राम गुन गावउँ।।"

तो प्रयाग की महिमा को भला कौन नकार सकता है? उस अवसर पर श्रीराम लंका–विजय कर पुष्पक विमान से लौटते हैं तो प्रयाग के पास पहुँचने पर वे सीता जी को यमुना का दर्शन कराते हैं और तत्पश्चात् गंगा का दर्शन कराते हुये प्रणाम करने को कहते हैं–

बहुरि राम जानकिहिं देखाई। जमुना कलिमल हरनि सोहाई।।
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता।।

इसके पश्चात् वे प्रयाग का दर्शन करते हुये उसकी महिमा बताते हैं कि तीर्थराज के दर्शन मात्र से करोड़ों जन्मों का पाप दूर हो जाता है। पुनः परम पवित्र त्रिवेणी का वर्णन करते हुये श्रीराम कहते हैं कि यह समस्त दुःखों का हरण करने वाली और वैकुण्ठधाम पहुँचाने के लिये सीढ़ी के समान है। श्रीराम स्वयं अपने साथ आये वानरों सहित पुलकित मन से त्रिवेणी में स्नान करते हैं ब्राह्मणों को दान देते हैं–

तीरथ पति पुनि देखु प्रयागा। निरखत कोटि जनम अघ भागा।।
देखु परम पावन पुनि बेनी। हरनि शोक हरिलोक निसेनी।।
पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी हरषित मज्जन कीन्ह।
कपिन्ह सहित विप्रन्ह कहुँ दान विविध विधि दीन्ह।।

इस प्रकार स्वयं श्रीराम ने प्रयाग में दान की परम्परा को सशक्त किया है।

माघमास में संगम-स्नान का महत्व

यद्यपि माघ–स्नान के संदर्भ में कई पुराणों में विस्तृत वर्णन है, किन्तु यहाँ हम विभिन्न पुराणों के अंशों के माध्यम से इसके पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं।

गंगा–यमुना एवं सरस्वती के पावन संगम में प्रत्येक समय स्नान दानादि की महत्ता होती है, किन्तु माघ मास में संगम–स्नान का विशेष महत्व है। ब्रह्मपुराण के अनुसार तीर्थराज प्रयाग में गंगा–यमुना के संगम में माघ स्नान का फल अश्वमेध यज्ञ के बराबर होता है। यह स्नान करने से मनुष्य सब प्रकार से पवित्र हो जाते हैं–

अश्वमेधादि कृत्वेको माघकृत्तीर्थनायके।
माघ स्नानप्यनयोर्मध्ये पावत्वेन लक्ष्यते।।

अग्निपुराण कहता है कि माघ में प्रयाग में प्रतिदिन स्नान का उतना फल है, जितना कि प्रतिदिन करोड़ों गायें दान करने का होता है। विद्वानों ने कहा है–

गवां कोटि प्रदानाद्यात्प्रत्यहं तस्ययत्फलम्।
प्रयागे माघ मासे तु एवमाहुर्मनीषिणः।।

मत्स्यपुराण में कहा गया है कि दस हजार, दस करोड़ या उससे भी अधिक तीर्थों की यात्रा का जो पुण्य होता है, माघ में संगम स्नान का उतना ही पुण्य मिलता है।

इसी प्रकार पद्मपुराण में माघ मास में प्रयाग का दर्शन दुर्लभ बताया गया है। यदि स्नान किया जाय तो वह और भी महत्वपूर्ण है। विभिन्न पुराणों ने प्रयाग में माघ–स्नान की विशेषता बतायी है। आज भी इसी कामना से लाखों–करोड़ों लोग कुंभ, अर्धकुंभ और माघ मेले के समय यहाँ स्नान करने आते हैं। यह पुराणों की ही गाथा का परिणाम है कि माघ में संगम में श्रद्धा और विश्वास का उल्लासपूर्ण वातावरण दिखायी पड़ता है।

प्रयाग में मुण्डन का महत्व

पुराणों में प्रयाग के सेवन का महत्व तो है ही, मुण्डन (क्षौर कर्म) का भी बहुत महत्व है। प्रत्येक तीर्थ में अलग–अलग महत्व बताया गया है, किन्तु यदि प्रयाग में मुण्डन कराये बिना अन्य तीर्थों में कर्म सम्पादित किये जाते हैं तो उनका कोई महत्व नहीं है–

किं गया पिण्ड दानेन काश्यां वा मरणेन किम्।
कुरुक्षेत्रे च दानेन प्रयागे वपनं यदि।।

तात्पर्य यह कि यदि प्रयाग में मुण्डन न कराया जाय तो गया में पिण्डदान, काशी में मरण और कुरुक्षेत्र में दान करने से क्या लाभ ?

मत्स्य पुराण में कहा गया है कि प्रयाग में क्षौर (मुण्डन) के पश्चात् गंगा–यमुना (संगम) में स्नान करना चाहिये–

प्रयागे क्षौरं कृत्वा तुविधिवत्ततः स्नायात्सितासिते।

इसी प्रकार स्कंदपुराण के काशीखण्ड में प्रयाग में मुण्डन की महत्ता कही गयी है। प्रयाग में मुण्डन कराने के पश्चात् गया में पिण्डदान करना चाहिये, कुरुक्षेत्र में दान देना चाहिये और काशी में शरीर त्यागना चाहिये। सर्वत्र प्रयाग में ही मुण्डन के महत्व की चर्चा आयी। यद्यपि यहाँ स्नान हेतु आने वाले तीर्थयात्री इस कर्म का पालन भी करते हैं, किन्तु वर्तमान में बदलते परिवेश में अधिकाधिक लोग मुण्डन कराने में संकोच करते हैं।

जैन धर्मावलम्बी प्रयाग में केशलुंचन का महत्व बताते हैं। इनके आदितीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अक्षयवट के नीचे केशलुंचन किया था। जैन धर्म के अनुयायी तभी से प्रयाग में मुण्डन की परम्परा का प्रार्दुभाव मानते हैं।

गंगा-माहात्म्य

विश्वभर्ता भगवान विष्णु के चरण–कमलों से निकली हुई माँ गंगा के प्रयागवाहिनी होने पर इसकी महत्ता और बढ़ जाती है। गंगा एक ऐसी पुण्यमयी सलिला है, जिसकी अक्षयधारा से लाखों–करोड़ों लोगों का पोषण होता है। कोटि–कोटि जीवों का जीवन इसके जल से कृत–कृत्य हो रहा है। गंगा का लोक कल्याणकारी स्वरूप वेद और पुराणों में स्पष्ट रूप से पाया जाता है। ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, कूर्म, मत्स्य, पद्म, वृहन्नारदीय, वाराह, स्कंद, अग्नि, शिव आदि पुराण गंगा का गुणगान करते नहीं अघाते। वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, रामचरित मानस आदि महाकाव्यों में इसकी महत्ता के अनेक प्रसंग भरे पड़े हैं। मत्स्य पुराण में कहा गया है–

कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति।
अवगाह्यं च पीत्वा च पुनात्या सप्तपंकुलम्।।

तात्पर्य यह कि गंगाजी के नाम–कीर्तन से प्राणि मात्र के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं। उसके दर्शन करने से मानव का कल्याण होता है। यदि उसमें स्नान और जलपान किया जाये तो कुल की सात पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं।

मत्स्यपुराण में महर्षि मार्कण्डेय युधिष्ठिर को एक कथा–प्रसंग में बताते हैं कि वायु देव का कहना है कि पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल–तीनों लोकों में कुल मिलाकर साढ़े तीन करोड़ पवित्र तीर्थ हैं, जो गंगा में सन्निहित रहते हैं, विशेष रूप से प्रयाग से तीर्थपूजित गंगा बाहर निकलती है–

त्रिंसः कोट्योअर्ध कोटिश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता।।

वृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है कि महापुण्यमयी गंगा के स्मरण से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इसके दर्शन मात्र से हरिलोक की प्राप्ति होती है और गंगा जल पीने से सारुप्य की प्राप्ति होती है। गंगा में नित्य स्नान करने वाले को जगतपालक सनातन वासुदेव सभी प्रकार के अभीष्ट पदार्थ प्रदान करते हैं। जो मनुष्य गंगाजल के एक बिन्दु से भी अभिषिक्त होता है। वह सभी पापों से तत्काल मुक्त होकर परम पद प्राप्त करता है। जिसके जल बिन्दु के स्पर्श मात्र से सगर की साठ हजार संततियाँ मुक्त हो गयीं, भला उस गंगा के असीम प्रभाव का वर्णन कैसे किया जा सकता है–

नारायणो जगद्धाता वासुदेवः सनातनः।
गङ्गास्नानपुराणां तु वाञ्छितार्थफलप्रदः।।
गङ्गाजलकणेनापि यः सिक्तो मनुजोत्तमः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्।।

इसी प्रकार कूर्म पुराण से गंगा की विशेषता में कहा गया है–

द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गंगा विशिष्यते।
गंगामेव निवेधेत प्रयागे तु विशेषतः।

तात्पर्य यह है कि द्वापर में कुरुक्षेत्र और कलियुग में गंगा जी की प्रधानता है। अन्य तीर्थों की अपेक्षा प्रयाग में गंगा जी का विशेष रूप से सेवन करना चाहिये।

महाभारत में गंगा को नदियों की जननी कहा गया है। इस भूतल पर जितनी भी नदियाँ हैं, उनमें कोई भी गंगा के तुल्य नहीं हैं।

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने गंगा की विशेषता में लिखा है–

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह वेद पुराना।

अतः गंगा सम्पूर्ण भारत के सांस्कृतिक जीवन में प्राण संचारिणी स्वरूपा है। वर्तमान औद्योगिक युग में इतने प्रदूषण के बाद भी गंगा जल में कीड़े नहीं पड़ते हैं। यह देवनदी संपूर्ण भारतवासियों की आस्था का केन्द्र है।

भारतीय लोकजीवन में गंगा के प्रति आस्था इतने गहरे पैठ गयी है कि उसे शब्दों में बाँधना कठिन

है। तात्विक रूप से यह कह दिया जाये कि गंगा भारतीयों के हृदय की धड़कन है, तो गलत न होगा। हमारे देश के ऋषि–मुनि, मनीषी, कवि, कलाकार युगों–युगों से इसकी अक्षय गौरवगाथा कहते आये हैं, जो आज भी प्रासंगिक है।

यमुना-माहात्म्य

हिमालय से निकलने वाली यमुना को सूर्यपुत्री कहा गया है। हिमशिखरों को चीरती हुयी इसकी पतली धारा जब मैदानी क्षेत्र में पहुँचती है तो तमाम अन्य नदियों का जल अपने में समाहित कर विशाल नदी का रूप धारण कर लेती है और प्रयाग में आकर सुरसरिता गंगा में विलीन हो जाती है। इसका शांत, धीर और श्याम जल नटनागर भगवान कृष्ण को भी सम्मोहित करता रहा है।

पदमपुराण के उत्तरखण्ड में यमुना की महत्ता का स्पष्ट उल्लेख है–

तत्रास्ति यमुना पुण्याधन्या त्रैलोक्य पावनी।
ददाति स्मरणे स्वर्गमरणेब्रह्मणे पदम्।।
तत्तीरे यत्र देवेश बहुभिर्मुखैः।
यदीच्छसि स्वकीयानाम् कल्याणं त्वं निरंतरम्।।

तात्पर्य यह है कि पुण्यसलिता यमुना तीनों लोकों को पवित्र करने वाली है। इसके स्मरण मात्र से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और मरने पर ब्राह्मण पद मिलता है। जिसके तट पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों निवास करते हैं, वह पवित्र यमुना सबका निरन्तर कल्याण करती है।

यमुना का माहात्म्य ऋग्वेद, ब्रह्मपुराण, मत्स्यपुराण, हरिवंशपुराण समेत शतपथ ब्राह्मण, महाभारत, रामायण, ऐतरेय ब्राह्मण, पंचविंश ब्राह्मण, रामचरित मानस समेत तमाम धर्म ग्रंथों एवं महाकाव्यों में मिलता है।

ज्येष्ठ मास में शुक्ल एकादशी को यमुना में स्नान कर पिण्डदान, श्राद्धकर्म, धन–धान्य आदि का दान करने से कल्याण होता है। यमुना जल में खड़े होकर यमराज के विभिन्न नामों का स्मरण कर तिल–मिश्रित जलांजलि से तर्पण करने पर मृत्यु का भय नहीं होता, ऐसा विष्णु पुराण में कहा गया है। कार्तिक कृष्ण पक्ष की द्वितीया को यमराज की आराधना में यमुना स्नान कर व्रत रखा जाता है। बहनें अपने भाइयों की जीवन–रक्षा के लिये यह कठिन व्रत रखती हैं और तिलक लगाकर मंगलकामना करती हैं। इसे 'यम द्वितीया' कहते हैं।

प्रयाग क्षेत्र के लोकजीवन में यम द्वितीया को 'भइया दूज' या 'जमजुतिया' भी कहा जाता है। इस तिथि को यमुना–तट पर बलुआघाट में मेला लगता है। यहाँ से लगभग २० किलोमीटर दूर स्थित घूरपुर के पास सुजावनदेव में यमुना तट पर विशाल मेला लगता है, जहाँ क्षेत्रीय निवासी विशेषकर महिलायें उमड़ पड़ती हैं।

सरस्वतीः नदी या कल्पना?

प्रयाग में गंगा–यमुना की धारा तो दृश्यमान है, किन्तु तीसरी धारा–सरस्वती के अस्तित्व का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। इस नदी को कहीं किसी कूप से उद्‌भूत बताया गया है तो कहीं कुण्ड की चर्चा मिलती है। सरस्वती के उद्‌गम का जो स्थान विभिन्न ग्रंथों में मिलता है, उसका वैज्ञानिक स्तर पर कोई प्रमाणीकरण नहीं हो सका और ज्ञानी–मनीषी भी इसके नदी तत्व पर कुछ स्पष्ट नहीं कर पाते। कहा यह भी गया है कि ७वीं या ८वीं शती में कुरुक्षेत्र में बहने वाली नदी सूख गयी, लेकिन उसका एक स्रोत पाताल से आकर यहाँ गंगा–यमुना के संगम के निकट प्रस्फुटित हो गया। इस स्रोत का जल लाल रंग का बताया गया है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार त्रिवेणी संगम का जल लाल, नीला और उज्ज्वल धाराओं से युक्त है, किन्तु सरस्वती की कल्पना श्वेत है। "या कुन्देन्दु तुषार हार धवला" के अनुसार सरस्वती की धारा को लाल कहना सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है। अतः तीसरी नदी सरस्वती कल्पना मात्र लगती है।

एक तथ्य वैज्ञानिक और पुष्ट लगता है। वह है: नदियों का योग तात्विक रूप। हठयोग–साधना में तीन नाड़ियों–इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के संगम पर कुण्डलिनी–जागरण की अवधारणा है। कुण्डलिनी–जागरण सहस्रार कमल खिलने की स्थिति में होता है। सहस्रार कमल खिलने पर अमृत बरसने की कल्पना है, जिसका पान कर हठयोगी अमरत्व की प्राप्ति करता है तथा योगी अपने अंदर अनहद नाद का श्रवण करता है। चूँकि यह स्थिति योगी के जीवन की चरम सीमा होती है। अतः इसका अस्तित्व ज्ञान के उच्चतम शिखर से माना जाता है, जिसे सरस्वती–स्वरूप मान लिया जाता है।

गंगा–यमुना के संगम के अस्तित्व को पवित्रता और आस्था के उच्चतम शिखर पर ले जाने के उद्देश्य से योगीजनों ने सरस्वती की धारा में लाल रंग की कल्पना की। योगी द्वारा इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के संगम पर अमरत्व की प्राप्ति कर लेने को गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम के रूप में विवेचित किया जाता है। मध्ययुगीन तांत्रिक साधना में सरस्वती के रंग को लाल माना गया है, इसीलिये संगम में लाल धारा की कल्पना की गयी है।

एक और तथ्य भी महत्वपूर्ण है, वह है ज्ञानस्वरूपा सरस्वती का। गंगा–यमुना के संगम–तट पर प्रत्येक वर्ष माघ मास में ऋषियों–मनीषियों और सरस्वती–तत्व–वेत्ताओं का सम्मेलन होता है। वे यहाँ आकर नित्य–प्रति स्नान करते हैं और ईश्वर–चर्चा में ज्ञान का आदान–प्रदान करते हैं। अतः गंगा–यमुना के संगम पर ज्ञानरूपी सरस्वती भी यहाँ मिलती है, जिसे तीसरी नदी की कल्पना से जोड़ा गया है।

इन सभी तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि गंगा–यमुना के संगम में सरस्वती नदी की बात सरस्वती तत्व की कल्पना है। इस प्रकार इस तीसरी काल्पनिक नदी का महत्व किसी भी स्थिति में उन दो दृश्य नदियों से कम नहीं है।

कुंभ-पर्व

कुंभ भारतीय संस्कृति का महान पर्व है। इस पर्व पर अमरत्व प्राप्ति की कल्पना की जाती है। इसका वैदिक, पौराणिक एवं वैज्ञानिक आधार होने के साथ–साथ ज्योतिषीय आधार भी है। भारतीय संस्कृति में वेद आदि ग्रंथ माने जाते हैं। अतः वेदों में कुंभ का वर्णन भारतीय जनमानस के लिये पूर्ण प्रामाणिक एवं हृदयंगमकारी है। कुंभ का महत्व इसलिये भी अधिक है कि सम्पूर्ण भारत ही नहीं, अपितु निखिल विश्व में भारतीय संस्कृति के अनुयायी इस पर्व पर स्नान करने के लिये आते हैं। इस तरह यह विश्व का सबसे बड़ा मेला कहा जाता है। कुंभ–पर्व प्रत्येक १२ वर्ष और अर्धकुंभ प्रत्येक ६ वर्ष पर आता है। यद्यपि ये सनातन पर्व हैं, किन्तु इनके व्यवस्थित रूप से मनाये जाने का उल्लेख सम्राट हर्षवर्धन के काल से है। कुंभ की पुरातनता इस वैदिक उक्ति से समझी जा सकती है–

"देवानां द्वादशैर्भिमर्त्यै द्वादश वत्सरै:
जायन्ते कुम्भ पर्वाणि तथा द्वादश संख्यया।"

कुंभ पर्व के संदर्भ में पुराणों में तीन अलग–अलग कथायें मिलती हैं। प्रथम कथा के अनुसार कश्यप ऋषि का विवाह दक्ष प्रजापति की पुत्रियों–दिति और अदिति के साथ हुआ था। अदिति से देवों की उत्पत्ति हुयी तथा दिति से दैत्य पैदा हुये। एक ही पिता की सन्तान होने के कारण दोनों ने एक बार संकल्प लिया कि वे समुद्र में छिपी हुयी बहुत सी विभूतियों एवं संपत्ति को प्राप्त कर उसका उपभोग करें। इस प्रकार समुद्र मंथन एक मात्र उपाय था। समुद्र मन्थनोपरान्त चौदह रत्न प्राप्त हुये, जिनमें से एक अमृत कलश भी था। इस अमृतकलश को प्राप्त करने के लिये देवताओं और दैत्यों के बीच युद्ध छिड़ गया, क्योंकि उसे पीकर दोनों अमरत्व की प्राप्ति करना चाह रहे थे। स्थिति बिगड़ते देख देवराज इन्द्र ने अपने पुत्र जयन्त को संकेत किया और जयन्त अमृतकलश लेकर भाग चला। इस पर दैत्यों ने उसका पीछा किया। पीछा करने पर देवताओं और दैत्यों पर बारह दिनों तक भयंकर संघर्ष हुआ। संघर्ष के दौरान अमृतकुंभ को सुरक्षित रखने में वृहस्पति, सूर्य, और चन्द्रमा ने बड़ी सहायता की। वृहस्पति ने दैत्यों के हाथों में जाने से कुंभ को बचाया। सूर्य ने फूटने से रक्षा की और चन्द्रमा ने अमृत छलकने नहीं दिया। फिर भी, संग्राम के दौरान मची उथल–पुथल से अमृतकुंभ से चार बूँदें छलक ही गयीं। ये चार स्थानों पर गिरीं: इनमें एक गंगा तट, हरिद्वार में; दूसरी त्रिवेणी संगम, प्रयाग में; तीसरी शिप्रा तट, उज्जैन में और चौथी गोदावरी तट, नासिक में। इस प्रकार इन चारों स्थानों पर अमृतप्राप्ति की कामना से कुंभ पर्व मनाया जाने लगा।

दूसरी कथा के अनुसार अपने क्रोध के लिए विख्यात महर्षि दुर्वासा ने किसी बात पर प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र को एक दिव्य माला प्रदान की, किन्तु अपने घमण्ड में चूर होकर इन्द्र ने उस माला को ऐरावत के मस्तक पर रख दिया। ऐरावत ने माला लेकर पैरों तले रौंद डाला। यह देखकर महर्षि दुर्वासा ने इसे अपना अपमान समझा और क्रोध में आकर इन्द्र को शाप दे दिया। दुर्वासा के शाप से सारे संसार में हाहाकार मच गया। रक्षा के लिए देवताओं और दैत्यों ने मिलकर समुद्र–मंथन किया, जिसमें से अमृतकुंभ निकला, किन्तु

यह नागलोक में था। अतः इसे लेने के लिये पक्षिराज गरुड़ को जाना पड़ा। नागलोक से अमृत घट लेकर गरुड़ को वापस आते समय इन चार स्थानों पर रखना पड़ा और ये चार स्थान–हरिद्वार, प्रयाग,उज्जैन, और नासिक कुंभस्थल के नाम से विख्यात हो गये।

तीसरी कथा यह मिलती है कि एक बार प्रजापति कश्यप की दो पत्नियों–विनता और कद्रू के बीच इस बात पर विवाद हो गया कि सूर्य के रथ के अश्व काले हैं या सफेद। विवाद बढ़ने पर दोनों के बीच शर्त यह तय हुई कि जो हार जायेगी वह दासी बनेगी। रानी कद्रू ने अपने पुत्र नागराज वासुकि की सहायता से अश्वों के श्वेत रंग को काला कर दिया, जिससे विनता की हार हुई। अंततः विनता ने कद्रू से प्रार्थना की कि वह उसे दासीत्व से मुक्त कर दें। कद्रू ने पुनः शर्त रखी कि यदि वह नागलोक में रखे अमृत घट को उसे लाकर दे दे तो दासीत्व से मुक्त हो सकती है। विनता ने अपने पुत्र गरुड़ को इस कार्य में लगा दिया। गरुड़ जब अमृत घट लेकर आ रहे थे तो रास्ते में इन्द्र ने उन पर आक्रमण कर दिया। संघर्ष के कारण घट से अमृत की कुछ बूँदें छलककर चार अलग–अलग स्थानों पर गिरीं और उन्हीं स्थानों पर कुंभ पर्व होने लगा।

ऐसा माना जाता है कि एक दिव्य दिवस एक सांसारिक वर्ष के बराबर होता है। इसीलिए बारह दिन तक चले युद्ध को बारह वर्ष माना जाता है। इस प्रकार प्रत्येक बारहवें वर्ष कुंभ की आवृत्ति होती है।

जिस दिन अमृतकुंभ गिरने वाली राशि पर सूर्य चन्द्रमा और बृहस्पति का संयोग हो, उस समय पृथ्वी पर कुंभ होता है।

तात्पर्य यह है कि राशि विशेष में सूर्य–चन्द्र के स्थित होने पर अमृतकुंभ रूपी चन्द्र उक्त चारों स्थानों पर अपने परम शुभ प्रभाव का अमृत बरसाता है और उसी की प्राप्ति हेतु कोटि–कोटि श्रद्धालुजन कल्पवास तथा स्नान करते हैं। इन चारों स्थानों पर राशि–ग्रहयोग अलग–अलग होते हैं।

इस प्रकार कुंभ के गुरु में हरिद्वार, वृष के गुरु में प्रयागराज, तुला के गुरु में उज्जैन और कर्क के गुरु में नासिक का कुंभ होता है। इसी प्रकार सूर्य की स्थिति के अनुसार भी कुंभपर्व की तिथियाँ निश्चित होती हैं। मेष के सूर्य में हरिद्वार, मकर के सूर्य में प्रयागराज, तुला के सूर्य में उज्जैन और कर्क के सूर्य में नासिक का कुंभ होता है।

प्रयाग में कुंभ

माघी अमावस्या को मकर में सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति मेषराशि में हो, तभी यह कुंभ–योग पड़ता है–

मेषराशि गते जीवे मकरे चन्द्र भाष्करौ।
अमावस्या तदायोग कुंभाख्यं तीर्थ नायके।।

नासिक में कुंभ

सिंह राशि गते सूर्ये सिंहे चन्द्र बृहस्पतौ
गोदावर्यां भवेत्कुंभः पुनरावृत्तिवर्जनम्।।

अर्थात्–जब सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति तीनों सिंह राशि में हों, तब गोदावरी तट नासिक में कुंभ योग होता है। भाद्रपद (भादों) मास की अमावस्या को स्थिति आती है।

उज्जैन में कुंभ

मेष राशि गते सूर्ये सिंह राशौबृहस्पतौ।
पौर्णिमायां भवेत्कुंभः उज्जयिन्यां सुखप्रदः।

अर्थात्–मेष राशि में जब सूर्य हो और सिंह राशि में बृहस्पति हो तब उज्जैन में कुंभ–योग पड़ता है। यहाँ यह स्थिति बैशाख मास की पूर्णिमा को होती है।

हरिद्वार में कुंभ

कुंभ राशि गते जीवे द्विदने मेषगो रविः।
हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्ति वर्जनम्।।

तात्पर्य यह है कि कुंभ राशि का बृहस्पति हो और मेष राशि में सूर्य–संक्रांति हो, तब हरिद्वार में कुंभ होता है। यहाँ पर यह स्थिति मेष–संक्रांति के समय अर्थात्–चैत्र या वैशाख मास में होती है।

अर्धकुंभ

कुंभ उक्त चारों स्थानों पर प्रत्येक बारह वर्ष में होता है, किन्तु अर्धकुंभ पर्व प्रत्येक छः वर्षों में केवल प्रयाग और हरिद्वार में मनाया जाता है। इसके बारे में पुष्ट प्रमाण वाणभट्ट के "हर्षचरित" तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के "भारत वर्णन" में पाये जाते हैं। प्रमाणों के अनुसार महाराजा हर्षवर्धन पाँच वर्ष पूरे होने पर प्रत्येक छठें वर्ष में प्रयाग और हरिद्वार जाकर राजकार्यों से पाँच वर्षों का अर्जित संपूर्ण धन–धान्य दान कर देते थे तथा अपनी बहन से पुराना वस्त्र माँगकर पहनते थे और पुनः राजकार्य में लग जाते थे। उन्हीं के काल में अन्य सम्राट और संतजन भी अर्धकुंभ का पुण्य प्राप्त करने की लालसा से आते थे, जिनके मास पर्यन्त निवास और भोजन की व्यवस्था स्वयं सम्राट हर्ष करते थे। इसी तथ्य को आधार मानकर उत्तर प्रदेश शासन की ओर से कुंभ और माघमेलों के अवसरों पर तीर्थयात्रियों और कल्पवासियों के आवास आदि की व्यवस्था की जाती है। भारतीय संस्कृति में दान श्रेष्ठ कर्म का परिचायक है। अतः शासन उसी परम्परा का निर्वाह करता है।

कुंभ-माहात्म्य

किसी पर्व की महत्ता ही उसके प्रति जनसमुदाय को आकर्षित करती है। ऐसा ही प्रभाव कुंभ का भी है। अथर्ववेद में एक मंत्र है, जिसके अनुसार मनुष्य को सर्वसुख देने वाला कुंभ प्रदान किया था। यह कुंभ हरिद्वार, प्रयागादि स्थलों में तीन–तीन वर्षों के अन्तराल में प्रतिस्थापित किया गया। कुंभ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय का प्रदाता है।

सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण के लिये दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने वाले पर्व को कुंभ कहा जाता है।

सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने सुप्रभाव से प्रकाशित करने वाला पर्व कुंभ कहलाता है।

कार्तिक मास के एक हज़ार स्नान, माघ मास के सौ स्नान तथा नर्मदा के करोड़ों स्नानों का फल कुंभ–स्नान के फल के बराबर होता है।

कुंभ-स्नान का मुहूर्त

संक्रांति के पूर्व और पश्चात की १६ घड़ियों में पुण्यकाल माना जाता है। यदि आधी रात से पहले मुहूर्त तिथि हो तो पहले दिन तीसरे पहर का काल पुण्यकाल होता है और यदि मुहूर्त तिथि आधी रात के पहले हो तो पहले दिन तीसरे पहर में पुण्यकाल होगा। यदि मूहूर्त तिथि आधी रात के बाद हो तो दूसरे दिन प्रातः पुण्यकाल माना जाता है। इसके अतिरिक्त मकर की संक्रांति का पुण्यकाल ४० घड़ी, कर्क की संक्रांति का पुण्यकाल ३० घड़ी, तुला और मेष की संक्रांति का पुण्यकाल २०–२० घड़ी तथा शेष अन्य राशियों की संक्रांति का पुण्यकाल १६–१६ घड़ी पूर्व और पश्चात् माना जाता है।

प्रयाग में कुंभ और अर्धकुंभ का योग माघ मास में मकर संक्रांति से प्रारम्भ होता है और मास पर्यन्त रहता है। इस कुंभ–स्थल में अन्य सभी कुंभ–स्थलों की अपेक्षा बहुत अधिक जनसमुदाय उमड़ता है तथा यहाँ मेले का विस्तार–क्षेत्र भी सर्वाधिक होता है।

प्रयाग के घाट

दशाश्वमेध घाट

दशाश्वमेध घाट गंगातट का एक प्रमुख घाट है। मत्स्य पुराण में वर्णित प्रसंग के अनुसार जब महर्षि मार्कण्डेय ने धर्मराज युधिष्ठिर को प्रयाग माहात्म्य बताया तो उससे प्रोत्साहित होकर युधिष्ठिर ने गंगा के इस पावन तट पर दस अश्वमेध यज्ञ किये और तभी से यह घाट दशाश्वमेध घाट के नाम से प्रसिद्ध है। इस घाट के ठीक सामने भूतभावन भगवान शिव का मंदिर है। गंगा स्नान करने के बाद श्रद्धालुजन शिवजी पर गंगाजल चढ़ाते हैं और तब जाकर इस घाट में स्नान की पूर्णता मानी जाती है। इस घाट पर स्नान का महत्व काशी के दशाश्वमेध घाट के समान कहा गया है। यद्यपि गंगा की विशेष स्थिति के कारण यहाँ अभी तक कोई पक्का घाट नहीं बनाया गया है, किन्तु यहाँ स्नान करने वालों की भीड़ उमड़ती रहती है। यह घाट दारागंज मुहल्ले से आगे जाने पर शास्त्री पुल के उत्तर में स्थित है।

राम घाट

अति प्राचीन नगरी प्रतिष्ठानपुरी (झूँसी) के निकट गंगातट पर स्थित राम घाट कई प्रकार से महत्वपूर्ण

है। कहा जाता है कि वनगमन के समय महर्षि भरद्वाज से मिलने आये भगवान श्रीराम ने ऋषिवर के साथ जाकर इस घाट पर स्नान किया था। तभी से इसका नाम रामघाट पड़ गया। इस घाट का महत्व इसलिये भी और बढ़ गया है कि प्रतिष्ठानपुरी के चंद्रवंशी राजा पुरुरवा ने गन्धर्वों के साथ अग्निहोत्र किया। गंधर्वों के प्रभाव से चन्द्रवंशी राजाओं ने नरबलि का त्याग कर इसी घाट पर अग्निहोत्र को अपनाया। अतः यह घाट अहिंसा को प्रोत्साहन देने वाला भी है। तीर्थयात्री इसमें स्नान करके अपने को धन्य समझते हैं।

त्रिवेणी संगम घाट

धवलधार गंगा और श्यामल यमुना के साथ अदृश्य सरस्वती का जिस स्थान पर संगम होता है, वही त्रिवेणी संगम घाट है। वेणी का तात्पर्य धारा से है। अतः तीन धारायें त्रिवेणी हैं और इन तीनों का जिस स्थान पर संगम हुआ है, वह स्थान त्रिवेणी संगम घाट के नाम से सम्बोधित किया गया है। गंगा और यमुना की धाराओं की अलग–अलग स्थिति के कारण प्रायः अलग–अलग स्थानों पर बनता रहता है। कभी संगम एक स्थान पर तो कभी दूसरे स्थान पर बनता है। जिज्ञासुओं की जानकारी के लिये झूँसी, अरैल और प्रयाग स्थित किला–तीनों के मध्य यह घाट बनता है। हाँ, इसकी स्थिति प्रायः इधर–उधर होती रहती है। दोनों नदियों की धाराओं के विशेष प्रभाव के कारण है। प्रयाग का यह सबसे प्रमुख घाट है। देश–विदेश के श्रद्धालु जन इसी घाट पर स्नान का पुण्य लूटने आते हैं। रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है–

"देवदनुज, किन्नर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी।"

सामान्य दिनों के अलावा प्रत्येक माघ और कुंभ–अर्धकुंभ में इस घाट पर अपार जनसमूह स्नान करता है।

शंकर घाट

प्रयाग नगर के उत्तरी भाग की ओर शिवकुटी मुहल्ले से लगा हुआ घाट शंकर घाट कहलाता है। यह गंगा नदी पर बने कर्जन पुल के पूर्व की ओर पड़ता है। यहाँ पर लोग स्नान करने के बाद शिवमंदिर में पूजा करने जाते हैं। चूँकि इस घाट से सटे हुये मुहल्ले का नाम शिवकुटी है और यहाँ शिवकुटी मंदिर है, इसी के कारण इस घाट का नाम शंकर घाट पड़ा। यह काफी ऊबड़–खाबड़ है। यहाँ कोई पक्का स्थान नहीं है, फिर भी स्नानार्थियों की भीड़ यहाँ होती है।

रसूलाबाद घाट

गंगा का यह घाट भी प्रमुख घाटों में है। इस घाट का उपयोग विशेष रूप से शवदाह के लिये होता है। इस तरह यह गंगा–तट का श्मशान घाट भी कहा जा सकता है। यहाँ प्रायः शवयात्रा में आने वाले लोग ही स्नान करते हैं।

सरस्वती घाट

सरस्वती घाट को अदृश्य नदी–सरस्वती का उद्‌गम–स्थल माना जाता है। यहाँ पर एक कूप होने की चर्चा आयी है, जिसमें सरस्वती का उद्‌गम हुआ है। इसे सरस्वती कूप के नाम से जाना जाता है। विष्णु पुराण के अनुसार सरस्वती ब्रह्मा जी की पुत्री हैं और प्रयाग में इसका जल वेगवान है। कहते हैं–ब्रह्मा जी के स्वेद से सरस्वती नदी निकली है। यद्यपि इस नदी का दृश्य–रूप नहीं पाया जाता है, फिर भी किले के निकट यमुना नदी पर इस घाट का अस्तित्व है।

मनकामेश्वर घाट

सरस्वती घाट से कुछ दूर पर यमुना के किनारे मनकामेश्वर मंदिर है, जिससे यमुना की ओर सीढ़ियों से उतरकर मनकामेश्वर घाट पड़ता है। भक्तजन इस घाट पर स्नान करके सर्व मनोकामनायें पूरी करने वाले औघड़ दानी भगवान शिव मनकामेश्वर जी का दर्शन करते हैं। यह घाट अत्यंत रमणीय है।

अरैल घाट

गंगा नदी के उस पार संगम से दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में अरैल घाट स्थित है। यहाँ पर लोग गंगा में स्नान करके आसपास के मंदिरों में पूजा–अर्चना करते हैं। कुंभ और अर्धकुंभ में इस घाट पर भी कल्पवासी बसाये जाते हैं।

गऊघाट

यमुना तट पर पुल के नीचे वाला घाट गऊघाट के नाम से विख्यात है। यहाँ पर स्नान करके गाय की पूजा करने का विशेष महत्व है। अब प्रायः यहाँ सैकड़ों नावें खड़ी रहती हैं। यह घाट विकसित नहीं है फिर भी लोग यमुना में स्नान करने जाते हैं।

बलुआघाट

सूर्यपुत्री यमुना का यह प्रमुख घाट है और इसी के नाम से बलुआघाट मुहल्ला भी बसा हुआ है। प्रयाग नगर के दक्षिणी क्षेत्र में स्थित इस घाट का विशेष महत्व कार्तिक मास में होता है। पूरे कार्तिक मास में यहाँ महिलायें प्रातः काल स्नान करती हैं तथा दान करती हैं। पुराणों में इस घाट के पास कालियदह होने की चर्चा आती है। जहाँ कभी कालियनाग का निवास हुआ करता था। बालू का आधिक्य होने के कारण इसे बलुआघाट कहा जाने लगा। कार्तिक में ही यहाँ मेला लगता है।

ककरहा घाट

यमुना तट पर ही ककरहा घाट भी स्थित है। यह घाट अत्यन्त ऊबड़–खाबड़ था, लेकिन अब इधर

कुछ ठीक हो गया है। यहाँ कम लोग स्नान करते हैं। विजय–दशमी के दिन इस घाट पर पजावा रामलीला कमेटी की ओर से रावणयुद्ध का आयोजन होता है, जिसे देखने के लिये भारी भीड़ उमड़ती है।

प्रयाग के तीर्थपुरोहित : प्रयागवाल

तीर्थराज की जितनी प्राचीनता है, उससे कम यहाँ के तीर्थ पुरोहितों की नहीं मानी जा सकती। पौराणिक काल में जब ऋषियों ने यहाँ प्रकृष्ट यज्ञ किये और इस भूमि को इतना पवित्र कर दिया कि इसके दर्शनमात्र से मनुष्य कृतार्थ हो जाए तो यहाँ पर तीर्थयात्रियों का आवागमन बढ़ गया और तभी से यहाँ के तीर्थ–पुरोहित प्रयाग क्षेत्र में त्रिवेणी स्नान करने वालों को विधिवत् पूजनादि कर्म कराने लगे। पूजनादि के उपरान्त यजमान अपने पुरोहित को जो भी यथाशक्ति दान–दक्षिणा प्रदान करते थे, उसे वे सहर्ष स्वीकारते तथा यजमान को शुभाशीर्वाद देते थे। प्रयाग में बसने के कारण यहाँ के तीर्थपुरोहित प्रयागवाल कहलाये। वर्तमान समय में यहाँ दो प्रकार के प्रयागवाल हैः प्रथम, पीढ़िया, द्वितीय, परदेसी। पीढ़िया मूलरूप से प्रयाग के निवासी हैं और परदेशी वे तीर्थ पुरोहित हैं, जो अन्य स्थान से आकर यहाँ आकर बस गये हैं। पुरोहित कर्म के माध्यम से अपना जीविकोपार्जन करने वाले नगर के निवासी हुये और प्रयागवाल कहलाये।

महाराजा हर्ष के शासनकाल में तीर्थ पुरोहितों का बहुत सम्मान रहा है। कुंभ और अर्धकुंभ के अवसर पर जब महाराजा हर्ष संगम–तट पर स्नान करने आते तो तीर्थ पुरोहितों को दान–दक्षिणा में स्वर्ण एवं रजत मुद्राओं के अलावा खाद्यान्न दिया करते थे। दान की वही परम्परा आज भी कायम है। महाराजा हर्ष के समय प्रयाग आये चीनी यात्री ह्वेनसांग ने लिखा है कि हर्ष ने अपने पूर्वजों की परम्परा का अनुसरण करते हुये पाँच वर्षों का संचित किया हुआ धन–धान्य छठवें वर्ष यहाँ त्रिवेणी तट पर दान कर दिया। पहले उन्होंने भगवान बुद्ध की प्रतिमा बनाकर उसका पूजन किया, तत्पश्चात् उस पर धन–धान्य और बहुमूल्य रत्नों को चढ़ाने के बाद तीर्थ–पुरोहितों को दान किया। महाराज हर्षपाल राजाओं और राजपूतों ने भी तीर्थ–पुरोहितों की मान–प्रतिष्ठा रखी। पाल नरेश त्रिलोचन ने सन् १०२७ ईसवी में तीर्थपुरोहितों को प्रतिष्ठानपुर का एक गाँव दान में दिया था। जिन पुरोहितों को यह दान मिला था, उनके वंशज अभी भी झूँसी (प्राचीन नाम प्रतिष्ठानपुर) में रहते हैं। राजपूतों में परिहारों एवं गहरवारों ने भी तीर्थ–पुरोहितों को दान दक्षिणा से सम्मानित किया था।

कालान्तर में मुसलमान शासकों में गुलामवंश के अलाउद्दीन खिलजी एवं अन्य शासकों ने तीर्थ–पुरोहितों के हितों का ध्यान रखा। मुगलकाल में सम्राट अकबर ने भी तीर्थ–पुरोहितों के अस्तित्व पर कुठाराघात नहीं किया। कहा जाता है कि जब सम्राट अकबर ने किले की नींव रखी तो किन्हीं कारणों से वह थम नहीं रहा था। सभासदों ने राय दी कि यदि किसी ब्राह्मण की बलि दे दी जाय तो दीवार बन जायेगी। अकबर ने तीर्थ पुरोहितों के सामने यह प्रस्ताव रखा। इनमें से परदेशी वंशजों में से एक व्यक्ति इसके लिये सशर्त तैयार हुआ। शर्त यह थी कि बलि देने के पश्चात् परदेशी वर्ग के लोग ही त्रिवेणी संगम को दान पाने के एक मात्र अधिकारी होंगे। अकबर ने यह शर्त मान ली और तब जाकर बलि दी गयी। कहते हैं, जिस व्यक्ति और हाथी की बलि

दी गयी थी, उसी का चित्र किले की बाहरी दीवार पर बना है। इसके पश्चात् काफी समय तक परदेशी वर्गों का दान दक्षिणा पर एकाधिकार रहा, लेकिन कालान्तर में दोनों वर्गों का समझौता हो गया, तब से पीढ़िया भी उसी तरह से दान लेने लगे। उस समय भी प्रयागवालों के मध्य से एक व्यक्ति चौधरी चुना जाता था, जो मेला बसाने की पूरी जिम्मेदारी निभाता था। यहाँ के सारे तीर्थपुरोहित १३ थोकों में विभाजित हैं, जिनमें से एक थोक परदेशी और १२ थोक पीढ़िया वर्ग के हैं।

तीर्थ पुरोहितों ने धर्म की रक्षा के साथ–साथ भारतीय संस्कृति और इसके संवाहकों का सदैव पोषण किया है। औरंगजेब के शासनकाल में जब शिवाजी मराठा आगरा से भागकर प्रयाग आये तो दारागंज में तीर्थपुरोहित के यहाँ उन्हें शरण मिली। अभी तक यह तय नहीं हो पाया कि शिवाजी जिस प्रयागवाल के यहाँ रुके थे, उनमें मथुरानाथ का परिवार है, या रंगनाथ पँचभइया का? शिवाजी के साथ उनके पुत्र शंभा जी भी यहाँ रुके थे, जो बाद में उस तीर्थपुरोहित को अपने साथ मराठवाड़ा ले गये और धन–धान्य तथा "कवि कलशा" की उपाधि प्रदान कर वापस भेजा। सिखों के गुरु रामसिंह एवं गुरु गोविन्द सिंह द्वारा भी तीर्थ पुरोहितों को सम्मानित करने की कथा मिलती है। प्रायः सभी मुसलमान शासकों ने प्रयागवालों के प्रति अपना व्यवहार सम्मानजनक रखा। नवाब वाजिद अली शाह का शाही फरमान अब भी श्री इमिलियादीन कर्महा के यहां सुरक्षित रखा है। इन तीर्थ पुरोहितों के यहाँ दक्षिण तथा उत्तर भारत के तमाम राजाओं और तालुकेदारों के दानपात्र एवं फरमान मिलते हैं। अंग्रेजों के विरुद्ध संग्राम के दौरान झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई प्रयाग आकर तीर्थ पुरोहितों के यहाँ रुकीं थीं।

प्रयाग के तीर्थ पुरोहितों का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बड़ा योगदान रहा है। ये लोग धर्म के प्रति जितनी अगाध निष्ठा रखते थे, उतनी ही देश के प्रति। आजादी की लड़ाई में दारागंज और कीडगंज के तमाम प्रयागवालों को तरह–तरह की यातनायें भोगनी पड़ीं। किसी का घर गिरा दिया गया तो किसी को फाँसी की सजा हुयी। सर्वश्री छविनाथ शर्मा, काशी प्रसाद अवस्थी, रंगनाथ शर्मा, वसंत लाल शर्मा, पशुपति नाथ शर्मा, काशी प्रसाद अवस्थी, बटुकनाथ आदि ने आजादी की लड़ाई में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। शहीद चन्द्रशेखर आजाद स्व० वेंकटेश नारायण तिवारी के मित्र थे और उनसे सदैव मिलते रहते थे।

प्रयागवाल और दान परम्परा

प्रयागवाल सदैव दान दक्षिणा के अधिकारी रहे हैं। गजेटियर में मिस्टर एच०आर० नोविल ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है–"जो यात्री प्रयाग आता है, उसका समस्त प्रकार का धार्मिक कर्मकाण्ड प्रयागवाल ही कराता है। सर्वप्रथम वेणीमाधव भेंट तत्पश्चात् संकल्प कराया जाता है। इसके बाद तीर्थयात्रियों का मुण्डन होता है। मुण्डन के पश्चात् स्नान और पिण्डदान, शैयादान, गोदान, भूमिदान, और अन्त में प्रयागवाल तीर्थयात्री को सुफल देता है।"

वर्तमान समय में भी त्रिवेणी तट का दान इत्यादि प्रयागवाल ही लेता है। मेले के अलावा देश के कोने–कोने से आने वाले यात्रियों के रुकने की व्यवस्था भी तीर्थपुरोहित ही कराते हैं।

प्रयाग के घाटिया

गंगा तट के विभिन्न घाटों के पास तख्त लगाकर बैठने वाले ब्राह्मण घाटिया कहलाते है। ये स्नान करने वाले तीर्थयात्रियों को स्नान की पर्याप्त सुविधा प्रदान करते हैं। स्नानार्थी इनके तख्तों पर अपने कपड़े और अन्य समान रखकर स्नान करने जाते हैं और तत्पश्चात् रोली चन्दन इन्हीं से लगवाते हैं। ये घाटिया संकल्प कराकर दान–दक्षिणा भी लेते हैं, लेकिन किसी तीर्थ–यात्री पर दबाव नहीं डालते कि उन्हें इतना पैसा या दान चाहिए। ये अपने पास गाय या बछिया भी रखते हैं और उसकी पूँछ पकड़ कर स्नानार्थी से गोदान भी कराते हैं।

प्रयाग और अखाड़े

आदिशंकराचार्य ने धर्म की रक्षा के लिये देश के चार भागों में चार मठ स्थापित किये। उन्होंने अपने शिष्यों को दस वर्गों में विभाजित किया– (१) गिरि (२) पुरी (३) भारती (४) तीर्थ (५) वन (६) अरण्य (७) पर्वत (८) आश्रम (९) सागर (१०) सरस्वती।

ज्योतिर्मठ, बदरिकाश्रम; शारदामठ, द्वारिकापुरी; गोवर्धनमठ, पुरी तथा शृंगेरी मठ–इन चारों में उन्होंने अपने प्रमुख शिष्यों को पीठासीन किया। शेष में, अपने दसनाम संन्यासी शिष्यों को। नये–नये सम्प्रदायों और मतों के प्रतिपादन से ऐसा स्पष्ट होता है कि शायद हमारे संतजन एक–दूसरे से मत–मतान्तर होने पर विवाद के बजाय स्वयं अपने मत या सम्प्रदाय की स्थापना कर लेते थे। इसीलिये दसनाम संन्यासियों के बाद वैष्णव मतावलम्बी रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य ने क्रमशः ७ और ८ मठों की स्थापना की। इसी प्रकार स्वामी रामानन्द, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि मठों की स्थापना हुई। इसमें संदेह नहीं कि वैष्णव आचार्यों ने देश की धर्मप्राण जनता को भगवत्–भक्ति एवं सद्कार्यों में निरत रहने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, लेकिन समकालीन परिस्थितियों में समग्र देश पर दृष्टिपात करने से ऐसा लगता है कि शंकराचार्यों की भूमिका अधिक प्रभावी है।

मठों में पर्याप्त विचार–विमर्श के पश्चात् देश व धर्म की रक्षा हेतु शास्त्रों के साथ अस्त्र–शस्त्र के अभ्यास पर बल दिया गया और यहीं से अखाड़ों की परम्परा का उदय हुआ। अखाड़े नागा संन्यासियों के विशिष्ट संगठन हैं, जो संयमित जीवन और सुदृढ़ धर्म–परम्परा बनाये रखने के लिये शास्त्र और शस्त्र दोनों पर विश्वास रखते हैं। ये शस्त्रों का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। दसनामी संन्यासियों के सात अखाड़े हैं– (१) महानिर्वाणी (२) निरंजनी (३) अटल (४) आनंद (५) जूना या भैरव (६) आवाहन (७) अग्नि।

ये शैव अखाड़े कहे जाते हैं। अटल अखाड़ा आठ भागों में बँट गया है, जिन्हें दावा कहते हैं, इनके अंतर्गत ५२ मढ़ी हैं। इसी प्रकार सभी अखाड़े ५२ मढ़ियों और दावा में विभाजित हैं। शैव अखाड़ों के उपरान्त वैष्णव अखाड़ों की उत्पत्ति हुई। ये अखाड़े शैवों के विरुद्ध बनाये गये थे। इनकी स्थापना रामानंदी सम्प्रदाय

के बाला–नंदाचार्य ने की थी। उन्होंने तीन अनी अखाड़ों की स्थापना की–(१) दिगम्बर (२) निर्वाणी (३) निर्मोही। इन तीनों अनियों का फिर विभाजन हुआ। दिगम्बर अनी के अंतर्गत दो अखाड़े आते हैं–(१) राम जी दिगम्बर (२) श्याम जी दिगम्बर। निर्वाणी अनी के अन्तर्गत ७ अखाड़े हैं–(१) रामानन्दीय निर्वाणी (२) रामानंदीय खाकी (३) रामानंदीय टारम्बरी (४) रामानंदीय निरालंबीय (५) हरिव्यासी निर्वाणी (६) बलभद्री (७) हरिव्यासी खाब्दी। निर्मोही अनी के अन्तर्गत नौ अखाड़े हैं–(१) रामानंदीय निर्मोही (२) रामानंदीय महानिर्वाणी निर्मोही (३) रामानंदीय मालाधारी निर्मोही (४) रामानंदीय झाड़िया निर्मोही (५) रामानंदीय संतोषी निर्मोही (६) राधावल्लभीय निर्मोही (७) हरिव्यासी महानिर्वाणी (८) हरिव्यासी संतोष (९) दादूपंथी।

इनके अलावा उदासीन सम्प्रदाय के अखाड़े भी हैं। इन अखाड़ों की स्थापना के सम्बन्ध में आचार्य चन्द्र का नाम आता है। सन् १७८८ में आचार्य प्रीतमदास ने उदासीन पंचायती अखाड़ा की स्थापना की। कालांतर में विवाद हो जाने पर सन् १९०२ ईसवी में यह अखाड़ा दो भागों में विभक्त हो गया, जिसमें नये अखाड़े का नाम महात्मा सूरदास ने उदासीन पंचायती नया अखाड़ा रखा तथा पुराने का नाम उदासीन पंचायती बड़ा अखाड़ा रखा गया। उदासीनों के अलावा निर्मल अखाड़ा भी है, जिसका सम्बन्ध गुरुनानक देव से माना जाता है। सन् १८१६ में रमता निर्मल अखाड़ा स्थापित किया गया। तत्पश्चात् १९१२ के हरिद्वार कुंभ में महन्त महताब सिंह की अध्यक्षता में निर्मल पंचायती अखाड़ा स्थापित किया गया।

प्रयाग के प्रत्येक कुंभ और अर्धकुंभ में ये अखाड़े अपना शिविर लगाते हैं, जिनकी व्यवस्था मेला–प्रशासन करता है। ये क्रमबद्ध होकर मुख्य स्नानपर्वों पर अपने साजो–सामान के साथ संगम स्नान करने जाते हैं, जिसे शाही स्नान कहा जाता है। कुंभ–अर्धकुंभ में कुल १३ अखाड़े अब तक स्नान करते आये हैं, जिनमें सात संन्यासी अखाड़े, तीन वैष्णव अखाड़े, दो उदासीन अखाड़े एवं एक निर्मल अखाड़ा शामिल है। अखाड़ों की समस्याओं के निवारणार्थ षट्दर्शन अखाड़ा परिषद की स्थापना की गयी है। प्रयाग में कुछ अखाड़ों के मुख्यालय भी हैं–

पंचायती अखाड़ा महानिर्वाणी, दारागंज
निरंजनी अखाड़ा, दारागंज
पंचायती अखाड़ा बड़ा उदासीन, कीडगंज
पंचायती अखाड़ा नया उदासीन, मुट्ठीगंज
निर्मल पंचायती अखाड़ा, पीली कोठी कीडगंज।

चतुर्दश प्रयाग : बहुतक गंगा

प्रयाग का नाम आते ही गंगा–यमुना और सरस्वती के संगम तट का स्मरण होने लगता है। इस पावन क्षेत्र में प्रत्येक माघ मेले और कुंभ में होने वाले संतों के जमावड़े का दृश्य उपस्थित होने लगता है। भारी संख्या में नावों पर बैठे यात्री और संगम में डुबकी लगाते, ठिठुरते हुए भी प्रफुल्लित 'मन' स्नानार्थी मानस पटल पर

उभरने लगते हैं। यह दृश्य तीर्थराज प्रयाग का है।

प्रयाग उस स्थल को भी कहा जाता है, जहाँ पर दो नदियों का संगम होता है। इस प्रकार इलाहाबाद स्थित तीर्थराज प्रयाग के अतिरिक्त और भी चौदह प्रयाग हैं। ये हैं: देव प्रयाग, रुद्र प्रयाग, कर्ण प्रयाग, नंद प्रयाग, विष्णु प्रयाग, सूर्य प्रयाग, इन्द्र प्रयाग, सोम प्रयाग, भास्कर प्रयाग, हरि प्रयाग, गुप्त प्रयाग, श्याम प्रयाग और केशव प्रयाग।

चतुर्दश प्रयागों के अतिरिक्त सम्भल क्षेत्र में वासुकि प्रयाग, क्षेमक प्रयाग, तारक प्रयाग और गन्धर्व प्रयाग का भी वर्णन मिलता है। नैमिषारण्य क्षेत्र में पंचप्रयाग का अस्तित्व बताया गया है।

गंगा तो भारत की पवित्रतम नदी है। ऋग्वेद में गंगा, यमुना, सरस्वती के साथ अन्य सात पवित्र नदियों का वर्णन है। इन नदियों के परुष्णी, असिकनी, मरुद्वृधा, वितस्ता, अर्जिकीया और सुषोमा नाम दिये गये हैं। वाल्मीकीय रामायण में गंगा त्रिपथगा का वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ में आकाशगंगा, पातालगंगा और प्रयाग में बहने वाली गंगा का नाम दिया गया है। ज्ञानतत्व में वाङ्मयी गंगा का वर्णन है। इसकी तीन धारायें कही गयी हैं– वैखरी, मध्यमा और पश्यंती। ये धारायें विद्याओं के नाम से भी जानी जाती हैं।

यद्यपि गंगा के सहस्र नाम गिनाये जाते हैं, जिनमें जाह्नवी, भागीरथी, त्रिवेणी, मंदाकिनी ओर अलकनंदा प्रमुख हैं। हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों से निकलने वाली अनेक गंगायें हैं। गंगोत्तरी के बर्फीले क्षेत्र से निकलने वाली गंगा 'भागीरथी गंगा' कही गयी है। इसके अवतरण में महाराजा भागीरथ का प्रयास माना जाता है। गंगोत्तरी के नीचे भैरव घाटी पर जाड़गंगा या जाह्नवी है, जो भागीरथी में मिल जाती है। यहीं पर जह्नु ऋषि का आश्रम था और इसीलिये गंगा को जाह्नवी भी कहा गया है। इसी के आगे श्रीकंठ पर्वत से दूधगंगा निकलती है, जो भागीरथी में समाहित हो जाती है और नीचे आने पर हरसिल क्षेत्र या हरिप्रयाग में हरिगंगा भागीरथी से संगम करती है। निकट ही श्याम प्रयाग में श्यामगंगा भागीरथी से मिलती है।

उत्तरकाशी स्थान में असिसंगा भागीरथी का संगम है। टिहरी के निकट भिलगंगा और आगे केदारनाथ भागीरथी में समाहित हो जाती है। व्यासगंगा गुप्त–प्रयाग में भागीरथी से संगम करती है। केदार नाथ के यात्रा मार्ग पर देवप्रयाग में अलकनंदा भागीरथी से मिलती है। अलकनंदा के तट पर वसुधारा प्रताप से सरस्वती गंगा निकलती है, जो आगे चलकर अलकनंदा से मिल जाती है। यहीं पर केशव–प्रयाग है। नीति दर्रा के निकट विष्णुगंगा या धौलीगंगा निकलती है, जो गिरथी नदी से मिलती हुयी विष्णु प्रयाग में अलकनंदा में समाहित हो जाती है।

नंदादेवी घाटी में 'ऋषिगंगा' का संगम होता है और हेमकुण्ड से निकली हुई 'लक्ष्मण गंगा' आगे अलकनंदा में मिलती हैं। कर्णप्रयाग में 'पिंडरगंगा' तथा पीपलकोठी के निकट 'गरुड़गंगा' मिलती है। बद्रीनाथ से कुछ पहले 'कंचन गंगा' है तथा चमोली के निकट 'विरहीगंगा'। आगे रुद्रप्रयाग में मंदाकिनी अलकनंदा का संगम है। बद्री–केदारनाथ मार्ग पर तुंगनाथ पर्वत में पातालगंगा है।

पर्वतीय क्षेत्र में स्थित प्रयाग में अलंकनंदा–भागीरथी मिलकर आगे गंगा बन जाती है। इसके बाद हरिद्वार तक कई छोटी–छोटी नदियाँ गंगा में मिलती हैं। कनखल के निकट नीलगंगा और आगे बाणगंगा–गंगा

का संगम होता है। गढ़मुक्तेश्वर नामक स्थान पर बूढ़गंगा तथा कन्नौज के निकट रामगंगा–गंगा का संगम है। इलाहाबाद स्थित प्रयागराज में यमुना और सरस्वती नदियाँ गंगा से संगम करती हैं। यही पावन त्रिवेणी क्षेत्र है, जिसकी महिमा अनंत है।

प्रयाग : प्राचीन ऐतिहासिक महत्व

पौराणिक आख्यानों एवं अन्य प्राचीन धर्मग्रंथों से स्पष्ट है कि तीर्थों में प्रयाग का महत्व सर्वाधिक है। इसीलिये इसे तीर्थराज कहा गया है। सनातन संस्कृति से तो प्रयाग क्षेत्र का अनादिकालीन सम्बन्ध रहा है, किन्तु अन्य सम्प्रदायों, जैसे–जैन या बौद्ध–परम्परा से भी यह भूमि अभिभूत रही है। श्रमण परम्परा, अर्थात्–जैन–धर्म के तीर्थंकर आदिनाथ का अक्षयवट के नीचे तपस्या कर कैवल्य ज्ञान प्राप्त करना और केशलुंचन करना, बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध का धर्म–प्रचार हेतु यहाँ आना भी इस पावन क्षेत्र की महत्ता के परिचायक हैं। यदि इसका धार्मिक महत्व न रहा होता तो ये इतिहास प्रसिद्ध महामानव, जिन्हें अवतार भी कहा गया है, यहाँ क्यों आते?

प्रयाग के प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी), वत्सदेश (कौशाम्बी), अलर्कपुर (अरैल) आदि राज्य प्राचीनतम राज्यों में रहे हैं। प्रतिष्ठानपुर राज्य की समकालीनता अयोध्या के सूर्यवंशी नरेश इक्ष्वाकु से मानी गयी है। उस समय यहाँ के राजा इला थे। वत्सदेश के महाराज उदयन का नाम भला कौन नहीं जानता होगा, जो शूरवीर तो थे ही, शास्त्रों के ज्ञाता और धर्मपरायण भी थे। गौतम बुद्ध की प्रयाग यात्रा का काल लगभग ४७५ ईसापूर्व माना जाता है। उस समय मगध–नरेश अजातशत्रु के शासन का प्रभाव यहाँ तक बताया जाता है। विष्णुपुराण से ज्ञात होता है कि मगध के शासक मौर्यवंशीय राजा चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य का विस्तार वत्सदेश तक था। चन्द्रगुप्त मौर्य का शासनकाल ईसा पूर्व ३२० वर्ष के आसपास का है। गुप्त सम्राटों का भी प्रयाग से गहरा सम्बन्ध रहा है, क्योंकि खुदाई से मिले सिक्कों और अवशेष से ऐसा स्पष्ट होता है। सम्राट अशोक का शासनकाल इतिहास का स्वर्णिम काल माना जाता है और जब सम्राट अशोक ने मगध का राज्य सिंहासन सँभाला तो सर्वप्रथम उसने राज्य–विस्तार किया। इससे पूर्व अशोक के कौशाम्बी के क्षत्रप होने का भी उल्लेख मिलता है, लेकिन यह काल उसके पिता बिन्दुसार का था। सम्राट अशोक के शिलालेख और कीर्तिस्तम्भ तो विश्व प्रसिद्ध हैं। वर्तमान में प्रयाग के कौशाम्बी, मदन मोहन मालवीय पार्क (मिन्टो पार्क) और किले के भीतर ये स्तम्भ अवस्थित हैं। अशोक के शिलालेखों में प्रजाहित की जो आज्ञायें उत्कीर्ण हैं, उनसे स्पष्ट है कि यह राजा अनुशासनप्रिय और प्रजा का हितैषी होने के साथ–साथ धर्मपरायण भी था। अशोक के एक शिलालेख का हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है–

"देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा (अशोक) ने ऐसा कहा है कि मानव भलाई ही देखता है कि हमने यह भलाई की है। वह पाप नहीं देखता कि हमने यह पाप किया है। यह बहुत कठिन है (परन्तु) इस (मानव) को इस प्रकार भी देखना चाहिये कि ये बुराइयाँ हैं, यथा कठोरता, निर्दयता, क्रोध, घमंड और ईर्ष्या आदि। यह भी सोचना चाहिये कि इन(बुराइयों) के कारण मैं दोषी न बनूँ। यह भली प्रकार देखना चाहिये कि यह

(कर्म) हमारे इस लोक के लिये और यह (कर्म) परलोक के लिये (अच्छा) है।" इस शिलालेख से सम्राट की महानता और ज्ञान की झलक मिलती है।

गुप्त सम्राटों का शासनकाल उत्कृष्ट माना जाता है। महाराजा समुद्रगुप्त जब मगध–नरेश हुए तो उन्होंने अपनी दिग्विजय के उपरान्त प्रयाग में अश्वमेध यज्ञ किया। यह ३२६ ईसवी के आसपास का काल था। वर्तमान झूँसी में विद्यमान समुद्रकूप समुद्रगुप्त का ही बनवाया हुआ माना जाता है–कहीं–कहीं पर ऐसा स्वीकार किया गया है, यद्यपि इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है।

गुप्त साम्राज्य के काल में ही यहाँ हूणों ने भी अपना अधिकार जमाना चाहा, जिस पर नरसिंह गुप्त ने मध्यभारत के सम्राट यशोवर्मन की सहायता से हूणों का अस्तित्व समाप्त किया और इसके पश्चात् यशोवर्मन ने प्रयाग को अपने राज्य में समाहित कर लिया। यह छठवीं शताब्दी का अंतिम समय था।

गुप्तों के बाद महाराजा हर्षवर्धन के शासनकाल में प्रयाग की कीर्तिपताका सारे विश्व में लहरायी। यह ऐसा प्रतापी नरेश था, जिसने प्रयाग के धार्मिक महत्व को नया मोड़ दिया। अभी तक प्रयाग में १२ वर्ष पर कुम्भ का ही महत्व था, किन्तु हर्षवर्धन के कार्यकाल से हर छठवें वर्ष अर्धकुंभ की परम्परा का सूत्रपात हुआ। महाराजा हर्ष अपने शासनकाल में पाँच वर्ष तक राज्य से अर्जित धन हर छठवें वर्ष संगम–तट पर मेला लगाकर दान करते रहे। दान, यज्ञ, धार्मिक अनुष्ठान, विद्वानों की परिषदें बुलाना, महामोक्ष परिषदों का आयोजन करना–यह सब संगम–किनारे हर्ष के काल में ही हुआ था।

महाराजा हर्ष बौद्ध धर्म से अभिभूत थे। उनके काल में भारतीय बौद्ध भिक्षु तो प्रयाग आते ही थे, चीनी भिक्षु ह्वेनसांग भी यहाँ आया। ह्वेनसांग ने ऐसे तमाम प्रमुख तथ्यों का जिक्र किया, जिन्हें आधार मानकर भारतीय इतिहास में भी समाहित किया गया। गंगातट पर जब बौद्ध परिषदें होती थीं तो सर्वप्रथम बौद्ध प्रतिमा की पूजा की जाती थी। इसके पश्चात् सूर्य और शिव की पूजा करके धन–धान्य का दान किया जाता था। दस दिनों तक निरन्तर दानादिक कार्यक्रम चलते थे। प्रयाग में छठवीं परिषद ७५ दिनों तक चली थी, जिसमें कामरूप नरेश भाष्कर वर्मा वल्लभी के ध्रुवभट्ट समेत तमाम राजा–महाराजा शामिल हुये थे। संगमतट की बालूयुक्त धरती को महामोक्ष पीठ की संज्ञा दी गयी थी और महाराज हर्ष को 'महानृप' कहा गया था। ह्वेनसांग ने 'पो–लोये किया' (प्रयाग) वर्णन में लिखा है कि इस देश का विस्तार ५०० ली (एक ली = १/५ मील) है। प्रयाग नगर दो नदियों के बीच २० ली क्षेत्र में बसा है। यहाँ अन्न और फल पर्याप्त मात्रा में होते हैं। जलवायु उष्ण, किन्तु स्वास्थ्यकर है। प्रयाग के निवासी विनम्र, सुशील, विद्याध्यायी हैं। यहाँ नगर में दो संघाराम हैं, परन्तु हीनयानी बौद्ध कम हैं। सम्राट अशोक द्वारा स्थापित स्तूप नगर के नैर्ऋत्य कोण पर है। नगर में प्रसिद्ध देवमंदिर है तथा इसके आँगन में एक विशाल वृक्ष है, जिसकी शाखायें दूर–दूर तक फैली हैं। इसकी छाया में दोनों ओर हड्डियों के ढेर हैं। ये हड्डियाँ उन लोगों की हैं, जो मोक्ष की कामना से यहाँ आत्मघात करते हैं (संभवतः यह अक्षयवट का वर्णन है)। महाराज हर्ष ने दो नदियों के संगम–तट पर अपना सर्वस्व दान कर दिया, लेकिन उन्हें तनिक भी क्लेश नहीं हुआ।

हर्षवर्धन के पश्चात् कुछ समय का इतिहास उल्लेखनीय नहीं रहा, किन्तु सन् ८१० ईसवी के लगभग कन्नौज के परिहार नरेशों ने यहाँ अपना शासन स्थापित किया। दसवीं शताब्दी के पश्चात् प्रयाग पालवंशीय

राजाओं के अधीन रहा। राजा त्रिलोचन पाल यहाँ रहता था। यह काल १०२७ ईसवी के आसपास का है। ११वीं शताब्दी के अन्त में जब कन्नौज गहरवारों के अधिकार में चला गया तो इनके राजा चन्द्रदेव ने प्रयाग के महत्व को समझते हुये कुछ काल तक यहाँ निवास किया था।

प्रयाग : मध्ययुगीन ऐतिहासिक महत्व

भारत में मुसलमान शासकों के कार्यकाल में भी प्रयाग का महत्व कम नहीं हुआ, बल्कि इस दौरान कई महत्वपूर्ण कार्य हुये। आक्रांता महमूद गजनवी के दरबारी अलबरूनी ने अपने प्रयाग वर्णन में अक्षयवट और गंगा–यमुना का वर्णन किया है। इसके पश्चात् कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर अलाउद्दीन खिलजी आदि मुस्लिम शासकों ने प्रयाग के कड़ा को अपनी राजधानी बनाया, जहाँ से अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गयीं। यह सामरिक महत्व का स्थान बन चुका था। लगभग ३०० वर्षों से इस दौर में कड़ा कई मुसलमान शासकों के अधीन रहा। इतिहासकारों के अनुसार मुगलकाल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक अकबर सर्वप्रथम १५७४ ईसवी में प्रयाग आया। इसके पश्चात् उसने सन् १५८० में कड़ा पर चढ़ाई करके सरदार इनायत खाँ को परास्त कर दिया। इनायत खाँ भाग गया और अकबर का उस किले पर अधिकार हो गया। अकबर ने प्रयाग में हिन्दू धर्मावलंबियों को कभी प्रताड़ित नहीं किया। अकबर के दरबारी अबुल फजल ने "आइने अकबरी" में लिखा है : हिन्दू लोग प्रयाग को तीर्थराज कहते हैं। प्रयाग के ही निकट गंगा–यमुना और सरस्वती–तीनों का संगम है। सरस्वती नदी अदृश्य है। अकबर के समय किला बनने का भी उल्लेख पाया जाता है। किले के भीतर शानदार महल और अट्टालिकायें हैं। इस किले का रानी–महल ऐसे स्थान पर बना है, जहाँ बैठकर महारानी जोधाबाई गंगा का दर्शन करती थीं। अकबर के समय तीर्थ पुरोहितों का सम्मान था। इस ज़माने के कुछ काग़ज़ात यहाँ के तीर्थ पुरोहितों के पास सुरक्षित हैं।

अकबर के बाद उसका बेटा सलीम जहाँगीर गद्दीनशीन हुआ। उसने किले में लगी अशोक की लाट पर अपनी वंशावली फ़ारसी में अंकित करायी। यह सन् १६०६ के आस–पास की बात है। जहाँगीर के पुत्र खुसरो की लाश लाकर दफनायी गयी तथा वहाँ एक बगीचा बनाया गया, जिसका नाम खुसरोबाग है। सन् १६५८ में जब औरंगजेब ने गद्दी सँभाली तो उसकी लड़ाई अपने भाई शुजा से यहीं पर हुई। औरंगजेब कड़ा और प्रयाग का किला–दोनों स्थानों पर रहा। औरंगजेब का बेटा दाराशिकोह धार्मिक प्रवृत्ति का था। वह प्रायः साधु–संतों की संगत में रहता था तथा बड़ी लगन के साथ संस्कृत पढ़ता था। प्रयाग के एक मुहल्ले दारागंज का नाम इसी के नाम पर रखा गया। इसी प्रकार, दाराशिकोह की पत्नी नादिरा बेगम के नाम पर बेगम सराय बसायी गयी।

प्रयाग : आधुनिकयुगीन महत्व

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद प्रयाग लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक अंग्रेजों के अधीन रहा। यहाँ की क्रांतिकारी जनता अपने अधिकारों के प्रति संघर्षशील रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८५७

में सेना में विद्रोह हो गया। मौलाना लियाकत अली ने खुसरोबाग में झण्डा फहराकर खुद को गवर्नर घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप सरकारी खजाना लूटकर कई अंग्रेज लेफ्टिनेंट और सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा बहुत से बंदी बना लिये गये।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की पहली छाप इस प्रकार पड़ी कि अंग्रेज शंकित हो गये और इसके परिणामस्वरूप सन् १८५८ में ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने मिन्टो पार्क में अपना घोषणापत्र पढ़कर सुनाया। इसी दौरान राजधानी आगरा से इलाहाबाद ले आयी गयी। इसके बाद आगरा से हाईकोर्ट भी यहाँ आया। अंग्रेजों ने तब से सन् १९४४ तक अपनी राजधानी यहीं रखी, किन्तु विकास के नाम पर ऐसा कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया, जिससे यहाँ सुख समृद्धि का वातावरण कायम हो।

अंग्रेजों के शासनकाल में सन् १८६३ में नगरपालिका की स्थापना हुई और सन् १८६५ में 'पायनियर' नामक अंग्रेजी अखबार का प्रकाशन प्रारंभ हुआ तथा १८७७ में "हिन्दी प्रदीप" और १८८० में 'प्रयाग समाचार' प्रकाशित हुआ। इसी बीच मेयोहाल का निर्माण कराया गया और सन् १८८७ में कोआपरेटिव बैंक खुला। सन् १८८७ में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की स्थापना हुयी और गवर्नमेंट प्रेस खुला।

समाचार पत्रों के प्रकाशन से राष्ट्र प्रेमियों को ऊर्जा मिली। वे निरन्तर अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। श्री मदन मोहन मालवीय, मोती लाल नेहरू, सर सुन्दर लाल, श्री अयोध्यानाथ आदि ने अंग्रेज़ों के खिलाफ संघर्ष शुरू किया। सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना के बाद चौथा अधिवेशन न होने पाया, बाद में श्री मदन मोहन मालवीय के प्रयास से धूमधाम से अधिवेशन हुआ। सन् १८९२ में कांग्रेस का आठवाँ अधिवेशन पुनः इलाहाबाद में कराया गया। तब से यह स्थान भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का केन्द्र बनता गया। सन् १८९२ से सन् १९०० के बीच कई शिक्षण संस्थायें यहाँ स्थापित हुईं, जिनमें गवर्नमेन्ट कालेज, शिवराखन स्कूल (सी०ए०वी० इन्टर कालेज), आर्य समाज, क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल, एंग्लोबंगाली स्कूल, कायस्थ पाठशाला, इविंग क्रिश्चियन कालेज आदि प्रमुख हैं। इन संस्थाओं ने शिक्षा की दृष्टि से नागरिकों को पुष्ट बनाया।

इसी बीच सन् १९०० ई० में 'सरस्वती' नामक हिन्दी पत्रिका प्रकाशित हुई। सन् १९०४ में गौरी पाठशाला स्थापित हुई, १९०५ में इलाहाबाद–फैजाबाद रेल लाइन बनी तथा १९०७ में 'अभ्युदय' अखबार निकला। स्वराज्य जैसा क्रांतिकारी अखबार भी इसी धरती से निकला। सन् १९१० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना से हिन्दी के प्रचार–प्रसार को बल मिला। १९०६ में 'लीडर' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके पश्चात् विद्यामंदिर स्कूल, अग्रवाल विद्यालय आदि की स्थापना हुई, जिससे इलाहाबाद में शिक्षा–प्राप्ति के कई केन्द्र हो गये। इस दौरान स्वाधीनता आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। इसी बीच १९१० में किले के समीप काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसी समय यहाँ एक प्रदर्शनी लगायी गयी थी। २०० बीघा भूमि में लगायी गयी उक्त प्रदर्शनी तीन माह तक चली, जिसे देखने के लिये लगभग १० लाख लोग आये थे। प्रदर्शनी में २१ लाख रुपये से अधिक का खर्च आया था। भारत में पहली बार इसी अवसर पर जहाज उड़ाये गये थे। राजा–महाराजाओं के अलावा जर्मनी के युवराज भी यह प्रदर्शनी देखने आये थे। सर जान हीवेट उस समय गवर्नर थे। यह प्रदर्शनी १२ भागों में विभाजित थी, जिसमें हर तरह की रोचक वस्तुएँ थीं। १९१८ में हिंदी विद्यापीठ की स्थापना तथा १९२२ में "चाँद" का प्रकाशन शुरू हुआ। सन् १९३६ से यहाँ दशहरा का मेला होने लगा।

इस नगर के मोती लाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गांधी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, हेमवती नंदन बहुगुणा, केशवदेव मालवीय, विश्वनाथ प्रताप सिंह, डा० राजेन्द्र कुमारी वाजपेयी, डा० मुरली मनोहर जोशी, जनेश्वर मिश्र, सत्यप्रकाश मालवीय, मुख्तार अब्बास नकवी आदि नेताओं को राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिली है। कल्याण चन्द्र मोहिले (छुन्नन गुरू), केशरी नाथ त्रिपाठी, कमला बहुगुणा, चौधरी नौनिहाल सिंह, अमीन अंसारी, राजेन्द्र त्रिपाठी, प्रमोद तिवारी, रामपूजन पटेल, डा० नरेन्द्र कुमार सिंह गौर, राकेशधर त्रिपाठी, विक्रमाजीत मौर्य, डा० रंजना वाजपेयी आदि नेता भी प्रदेश स्तर पर जाने जाते है।

साहित्य के क्षेत्र में महादेवी वर्मा, रघुपतिसहाय 'फिराक गोरखपुरी', सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, रामकुमार वर्मा, हरवंश राय बच्चन, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजय देव नारायण साही, श्री नरेश मेहता, उपेन्द्र नाथ अश्क, इलाचन्द्र जोशी, भैरव प्रसाद गुप्त, उमाकांत मालवीय, कमलेश्वर, डा० रघुवंश, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डा० जगदीश गुप्त, शैलेश मटियानी, अमरकांत, केशवचंद्र वर्मा, मार्कण्डेय, रामकमल राय, ममता कालिया, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, श्री शम्सुर्रहमान फारुकी, डा० सुहैल जैदी, डा० अकील रिजवी आदि का नाम जाना जाता है। फिल्म के क्षेत्र में यहाँ के अमिताभ बच्चन ने दुनियाभर में नाम रोशन किया है। कला के क्षेत्र में बाँसुरी वादक हरिप्रसाद चौरसिया का नाम भी सर्वत्र जाना जाता हैं।

इलावास से इलाहाबाद तक

नाम के स्थायित्व की परम्परा बड़ी प्राचीन है। कुल या वंश के नाम से नगर या ग्राम बसने की परम्परा प्राचीन इतिहास में देखने को मिलती है और इसी परम्परा के क्रम में प्राचीन नगर इलावास नाम का भी अस्तित्व है। ऐसी मान्यता है कि समय–चक्र की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार बदलकर यह इलाहाबाद हो गया।

सुप्रसिद्ध मानववंशीय इतिहास–वेत्ता पार्टिजर ने अनुसंधानों के आधार पर पाया कि अति प्राचीन काल में 'इला' या 'ऐल' जाति के लोग पर्वतीय क्षेत्र से अल्मोड़ा होकर प्रतिष्ठानपुरी आये तथा यहाँ पर अपना राज्य स्थापित किया। इलावंशीय राजाओं ने अपनी शक्ति के बल पर अपने राज्य की सीमा का शीघ्र ही विस्तार कर लिया। वैशाली, अयोध्या और विदेह राज्यों को छोड़कर शेष भारत तथा दक्षिण भाग में विदर्भ क्षेत्र तक अपनी प्रभुसत्ता कायम कर ली। एक पौराणिक कथा के अनुसार प्रतिष्ठानपुरी नरेश इला एक बार शिकार पर निकले और उस वन में चले गये, जहाँ भगवान शिव पार्वती के साथ विचरण कर रहे थे। चूँकि वे स्त्री के साथ वहाँ थे, इसलिये उन्होंने उस पूरे क्षेत्र को अभिमंत्रित करके यह घोषणा कर रखी थी कि जो भी इसमें प्रवेश करेगा, वह स्त्री हो जायेगा। यह बात इला को ज्ञात नहीं थी और वे अचानक वहाँ पहुँच गये तो स्त्री बन गये। स्त्री बनकर उस वन में इधर उधर घूम रहे इला को देखकर चन्द्रपुत्र बुध मोहित हो गये। बुध के संयोग से इला को गर्भ हो गया, जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम पुरुरवा रखा गया। इला ने बाद में घोर

तपस्या की और भगवान शंकर को प्रसन्न करके अपना पुरुष रूप पुनः प्राप्त कर लिया। इला अपनी वृद्धावस्था में राज्य का दायित्व अपने पुत्र को सौंपकर गंगातट पर तपस्या करने चले गये। चूँकि वहाँ इला के निवास के लिये गंगा के पश्चिमी तट पर घासफूस की झोपड़ी बनायी गयी थी, इसलिये उसे 'इलावास' कहा जाने लगा। एक बार गंगा में प्रलयंकारी बाढ़ आयी, जिससे प्रतिष्ठानपुरी बह गयी, बचे खुचे निवासी चन्द्रवंशी राजाओं के आदेश पर गंगा के इस पार कुछ ऊँचे क्षेत्र में आ गये और इन राजाओं ने भी अपनी राजधानी 'इलावास' बना ली। इस प्रकार यह नगर इलावास के नाम विख्यात हो गया। इतिहासकारों के अनुसार अकबर के फरमानों में भी इलावास नाम ही मिलता है। मुगलकालीन मुद्राओं में भी 'इलावास' नाम ही अंकित मिलता है।

एक किंवदंती के अनुसार मुगल सम्राट अकबर ने 'दीन–ए–इलाही' नामक धर्म–प्रवर्तन किया और इसी के कारण नगर का नाम इलाहाबाद पड़ा। एक और किंवदंती इस प्रकार है: अकबर के पुत्र जहाँगीर सलीम ने एक बार अपने पिता से विद्रोह कर दिया और नगर के पश्चिमी क्षेत्र में एक मुहल्ला बसाकर रहने लगा, जिसका नाम 'अल्लाहाबाद' रखा और तभी इसका नाम 'इलाहाबाद' पड़ गया; किन्तु 'इलियर हिस्ट्री आफ इन्डिया' में पाया जाता है कि अंग्रेज़ गवर्नर क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने पहली बार तत्कालीन राजपत्रों में इस नगर का नाम इलाहाबाद लिखना शुरू किया।

प्रयाग नाम बहुत प्राचीन है, किन्तु वेदों में इसका उल्लेख नहीं है। पुराणों में सर्वत्र उल्लेख है। वाल्मीकीय रामायण और महाभारत में भी प्रयाग नाम मिलता है।

इलाहाबाद : भौगोलिक स्थिति

जनपद २४.७ डिग्री और २५.४७ डिग्री अक्षांश तथा ८१.६ डिग्री तथा ८२ डिग्री देशान्तर के मध्य स्थित है। पूरब से पश्चिम तक लम्बाई ११७ कि.मी. एवं उत्तर से दक्षिण तक की चौड़ाई १०१ कि.मी. है। उत्तरी भाग प्रतापगढ़ और जौनपुर को जोड़ता है। पूरब में भदोही तथा दक्षिण पूरब में मिर्ज़ापुर जनपद स्थित है। दक्षिण में जनपद मध्य प्रदेश की सीमा से जुड़ता है। दक्षिण पश्चिम में चित्रकूट तथा पश्चिम में कौशाम्बी और फतेहपुर है। जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल ७२६१ वर्ग कि.मी. तथा घनत्व ५२३ वर्ग कि.मी. है।

जनपद की औसत वर्षा ६७५.४ मि०मि० के लगभग है। मध्य नवम्बर से जिले के तापमान में गिरावट प्रारम्भ होती है। इस समय दैनिक तापक्रम २३.७ डिग्री सेल्सियस या ७४.७ डिग्री फारेनहाइट होता है। गर्मी में तापमान ४८.८ डिग्री सेल्सियस और न्यूनतम २८.८ डिग्री से०ग्रे० तक पहुँच जाता है। जनपद का औसत वायु वेग ५.७ कि०मी० प्रति घंटा है, जो जून में अधिकतम २.७ कि०मी० प्रति घंटा तक होता है।

जनपद को प्राकृतिक दृष्टिकोण से तीन भागों में बाँटा जा सकता है–गंगापार, यमुनापार और द्वाबा क्षेत्र। गंगा पार क्षेत्र में तीन तहसीलें–सोरॉव, फूलपुर और हंडिया हैं। यमुनापार का क्षेत्र मुख्यतः पहाड़ी और पठारी है। इस क्षेत्र में बारा, करछना और मेजा तहसीलें है, जिनकी सीमा टोंस नदी निर्धारित करती है। क्षेत्र के उत्तरी भाग में विन्ध्य की पहाड़ियाँ, मध्य में पठारी तथा दक्षिणी क्षेत्र में पन्ना, कैमूर की पहाड़ियाँ हैं। टोंस

और बेलन इस क्षेत्र की प्रमुख छोटी नदियाँ हैं। द्वाबा क्षेत्र गंगा और यमुना के बीच बसा है, जिसके उत्तर में गंगा और दक्षिण में यमुना नदियाँ सीमा निर्धारित करती है। इस क्षेत्र में चायल, मंझनपुर और सिराथू तहसीलें हैं। ससुर खदेरी क्षेत्र की महत्वपूर्ण नदी है, जो आगे चलकर यमुना में मिल जाती है।

जनपद में गंगा की लम्बाई लगभग १२५ कि०मी० है, जो सिराथू तहसील के अफजलपुर सातों गाँव के उत्तर लगभग ५ कि० मी० पर जनपद को छूती है। यह बसनही गाँव के पास जनपद के अन्दर प्रवेश करती है तथा पूरब में मांडा रेलवे स्टेशन के ३ कि०मी० उत्तर पूरब में जनपद को छोड़ देती है। यमुना, गंगा की मुख्य सहायक नदी है। यह जनपद में लगभग १०१ कि०मी की लम्बाई तय करती हुई इलाहाबाद में किले के पास मिलती है। जनपद में सर्वाधिक महत्वपूर्ण खनिज सिलिका सैंड जनपद के शंकरगढ़ और लोहगरा इलाके में पाया जाता है, जो काफी अच्छे किस्म का होता है।

१६६१ की जनगणना के अनुसार इलाहाबाद उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा ज़िला है। यहाँ की कुल जनसंख्या ४६,२१,३१३ है। प्रदेश की घनी जनसंख्या वाले दस जिलों में इलाहाबाद शामिल है। नौ अन्य जिले–क्रमशः ग़ाज़ियाबाद, सोनभद्र, नैनीताल, लखनऊ, देहरादून, मिर्ज़ापुर, मुरादाबाद, ललितपुर तथा वाराणसी हैं। उल्लेखनीय है कि १६८१ की जनगणना में भी जनसंख्या के लिहाज से इलाहाबाद पहले नम्बर पर और उत्तरकाशी सबसे अन्तिम नम्बर पर था।

जनपद की ग्रामीण जनसंख्या ३८,६८,६४८ तथा नगरीय जनसंख्या १०,२२,८४७ है। जिले में १२,०३,८४७ अनुसूचित जाति तथा २२०४ अनुसूचित जनजाति के लोग निवास करते हैं। कुल ग्रामीण जनसंख्या में १०,७१,६४५ अनुसूचित जाति तथा १,६६१ अनुसूचित जनजाति के लोग हैं। इसी प्रकार नगरीय जनसंख्या में अनुसूचित जातियों की संख्या १,३२,२०२ तथा अनुसूचित जनजातियों की संख्या २१३ है। ज़िले की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति का प्रतिशत २४.४६ तथा अनुसूचित जनजाति का प्रतिशत ०.०४ है। प्रतिवर्ग कि०मी० पर जनसंख्या का घनत्व ६७६ है। गत दशक में यहाँ की जनसंख्या में २६.३ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जनपद की साक्षरता का प्रतिशत ३४.६ है। पुरुष साक्षरता ४८.३ तथा स्त्रियों की साक्षरता १६.५ प्रतिशत है। जनपद में कुल २६,२४,८२६ पुरुष तथा २२,२६,४८४ स्त्रियाँ हैं। इलाहाबाद महानगर की जनसंख्या ८,४१,६३८ है जिसमें ४,६२,१३० पुरुष और ३,७६,५०८ स्त्रियाँ हैं।

जनपद में सात वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या १०,२०,२७१ है। इसमें ५,२५,६३० बच्चे तथा ४,४४,६४१ बच्चियाँ हैं। जनपद में १२,४१,४८६ पुरुष एवं ४,२२,६१० स्त्रियाँ कुल १६,६४,०६६ लोग साक्षर हैं। जनपद में पुरुष श्रमिकों की संख्या १२,२१,६७३ तथा महिला श्रमिकों की संख्या ३,३०,५८६ है। इस तरह कुल १५,५२,५६२ श्रमिक हैं। कृषि कार्य में लगे हुए लोगों की संख्या ६,७१,७०० है। इसी प्रकार जनपद में कुल ४,०२,७४५ कृषि श्रमिक (२,५४,२६७ पुरुष एवं १,४८,४४८ महिला) जनपद में निवास करते हैं। नेशनल इन्फारमेटिक्स सेन्टर, इलाहाबाद से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार, पशुधन, वन आदि व्यावसायों में लगे हुए लोगों की संख्या ८,७७१ है। व्यापार एवं वाणिज्य में काम करने वाले कुल १,०३,५६५ कर्मी (६६,०५७ पुरुष, ४,५०८ स्त्रियाँ) हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि अब द्वाबा क्षेत्र इलाहाबाद जिले से अलग हो गया है। नये जिले का नाम कौशाम्बी है।

इलाहाबाद नगर : एक नजर

इलाहाबाद नगर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से ही नहीं राजनीतिक एवं शैक्षिक दृष्टिकोण से भी समृद्ध है। इसका अतीत जितना गौरवशाली है, उतना ही वर्तमान भी।

इलाहाबाद नगर करीब ६५ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। यह क्षेत्रफल उत्तर प्रदेश का ६.७ प्रतिशत है। सन् १६०१ में इस नगर की आबादी एक लाख ७० हजार थी जो सन् १६६५ में बढ़कर लगभग १५ लाख हो गयी। शहर में बने मकान पूरे जिले की आबादी का २८.८ प्रतिशत है। शहर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पुराना शहर और नया शहर। पुराने शहर में जनसंख्या का घनत्व प्रति हेक्टेयर ५५० व्यक्ति है, जबकि नये शहर में यह घनत्व भी २५ से ५१ व्यक्ति प्रतिहेक्टेयर है।

इलाहाबाद में आर्थिक वृद्धि की दर काफी धीमी है। यह दर करीब २.५ प्रतिशत है। यहाँ की २५.३ प्रतिशत जनसंख्या ऐसे कार्मिकों की है, जो सीमित संसाधनों में गुज़र-बसर करते हैं। २० से २५ प्रतिशत जनसंख्या कच्चे मकानों में निवास करती है, जहाँ साफ-सुथरा वातावरण भी नहीं है। एक सर्वेक्षण के अनुसार ४० से ५० प्रतिशत लोग एक-एक कमरे में रहते हैं, जबकि ३० प्रतिशत लोग दो कमरों के मकानों में रहते हैं। मात्र ३.५ प्रतिशत लोग ही ऐसे हैं, जिनके पास ५ कमरों का मकान है। प्रति परिवार का औसत ८.६ व्यक्तियों का है। आँकड़ों के अनुसार वर्ष १६६५ में शहर में पानी की मांग २१६ एम० एल० डी० है, जबकि उपलब्धता लगभग १३५ एम० एल० डी० है। शहर के ५० प्रतिशत हिस्से में ही सीवर की उपलब्धता है, जिससे केवल ६५ प्रतिशत नागरिक इस सुविधा का लाभ उठा रहे हैं। आँकड़े बताते हैं कि शहर में प्रतिदिन ६०० मीट्रिक टन कूड़ा-करकट निकलता है, किन्तु नगर निगम के द्वारा इसके उठाने की क्षमता ४८० मीट्रिक टन ही है, जिससे नगर में गंदगी होना स्वाभाविक है। ६४ वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में से ४२.६४ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में रोशनी की व्यवस्था है। हाल ही में नव निर्वाचित नगर प्रमुख डा० रीता बहुगुणा जोशी ने शहर के विकास के लिए कई बड़ी योजनायें बनायी हैं, जिनके लागू हो जाने पर पेयजल बिजली और गंदगी की समस्याओं से निजात मिल सकती है। डा० जोशी ने दक्षिण एशियाई देशों के नगर प्रमुखों एवं स्थानीय निकायों की काठमांडू (नेपाल) में सम्पन्न एक कांफ्रेंस में अपनी कुछ योजनाओं का प्रारूप भी प्रस्तुत किया था।

इस विशाल नगर में करीब पौने चार सौ मुहल्ले हैं। पूरब में दारागंज, अल्लापुर (भरद्वाजपुरम्), पश्चिम में धूमनगंज, उत्तर में शिवकुटी, तेलियरगंज, गोविन्दपुर मुहल्ले और दक्षिण में मीरापुर आदि मुहल्ले हैं। कई मुहल्लों के नाम सांस्कृतिक दृष्टिकोण से रखे गये हैं। उदाहरण के तौर पर, अतरसुइया मुहल्ले का नाम ऋषि अत्रि एवं सती अनसुइया के नाम पर पड़ा तो दारागंज का नाम मुसलमान शासक और संस्कृतवेत्ता दाराशिकोह के नाम पर रखा गया। इसी तरह महामना मदन मोहन मालवीय के नाम पर मालवीय नगर, अँग्रेज कलेक्टर विलियम जान्स्टन के नाम पर जानसेनगंज, इलाहाबाद के पहले कलेक्टर मि. अमुहटी के नाम पर मुट्ठीगंज नाम रखा गया। जनरल कीड तत्कालीन सेना में किले के कमान्डर थे। चूँकि किले की तरफ एक बस्ती बसायी जा रही थी, इसलिए उसका नाम कीडगंज रख दिया गया। आज का कंपनी बाग, जिसे अल्फ्रेड पार्क कहते

हैं, के दक्षिणी भाग में मेवातियों का एक गाँव बसा था। यह गाँव सम्दाबाद कहलाता था। सन् १८५७ में जब गदर हुआ तो इस गाँव के मेवातियों ने अच्छी खासी क्रांति खड़ी कर दी, जिस पर अंग्रेजों ने इसे उजाड़ दिया। सर विलियम म्योर एक अच्छे शिक्षाविद थे। उन्हें इलाहाबाद से काफी दिलचस्पी थी, इसलिये उन्हीं के नाम पर म्योर सेन्ट्रल कालेज (इलाहाबाद विश्वविद्यालय का विज्ञान संकाय) और म्योर रोड बनाया गया। वर्तमान मोतीलाल नेहरू मेडिकल कालेज का सेन्ट्रलहाल कभी अंग्रेज गवर्नर का आवास हुआ करता था, जिसे गवर्नर हाउस कहते थे। 'पायोनियर' समाचार पत्र के संस्थापक सर जार्ज एलन के नाम से एलनगंज और म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन मि. मम्फोर्ड के नाम से मम्फोर्डगंज बसाया गया। शहर के दक्षिणी इलाके में शहराराबाग और चौक के पश्चिम खुल्दाबाद मुहल्ले शहजादा जहाँगीर ने बसाये थे। शहराराबाग में एक बगीचा था, जो स्मृति के रूप में था। अब उसका अस्तित्व नहीं है। औरंगजेब के समय जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने कटरा मुहल्ला बसाया। इसके उत्तर राजापुर गाँव (अब मुहल्ला) और दक्षिण–पूर्व में फतेहपुर विछुआ मुहल्ला की मालगुजारी भी वही लिया करते थे। अरब से आये शाह अब्दुल जलील को माफी में मिली भूमि पर चक मुहल्ला बसा। सन् १६०६ में सोहबतियाबाग मुहल्ले के एक हिस्से में जार्ज टाउन बसाया गया। सन् १६११ में शहर बस्ती के बीच से हीवेट रोड निकाली गयी, जिसे अब विवेकानन्द मार्ग नाम दिया गया है। उसके चार–पाँच साल बाद क्रास्थवेट रोड और शिवचरन लाल मार्ग बने। ये दोनों सड़कें म्यूनिसिपल बोर्ड के चेयरमैनों के नाम पर बनी। सन् १६२७ में नया कटरा बना था। १६२६ में जीरो रोड बना, जिसका नाम १६३१ में बदलकर के०पी० कक्कड़ रोड किया गया। इसी प्रकार मौलाना मोहम्मद अली के नाम से चौक में मो० अली पार्क बना। अब यहाँ अच्छा खासा बाजार है। नगर क्षेत्र के अन्तर्गत ही उपगनगर नैनी है। पूरे नगर को नागरिक सुविधायें मुहैया कराने की जिम्मेदारी नगर निगम उठाता है।

नगर की वर्तमान स्थिति

इलाहाबाद उत्तर प्रदेश की राजधानी अब नहीं रहा, परन्तु इसका महत्व किसी राजधानी से कम नहीं। यहाँ वे सारे कार्यालय अब भी हैं, जो एक राजधानी में होने चाहिये। उच्च न्यायालय, उत्तर प्रदेश महालेखाकार कार्यालय, उत्तर प्रदेश पुलिस मुख्यालय, उत्तर प्रदेश शिक्षा निदेशालय, विश्व का अब तक का सबसे बड़ा परीक्षा बोर्ड–उ० प्र० माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश का आबकारी आयुक्त कार्यालय, रक्षा लेखा पेंशन कार्यालय, उत्तर प्रदेश लोकसेवा आयोग, कर्मचारी चयन आयोग कार्यालय आदि यहीं हैं।

उद्योग

इलाहाबाद का औद्योगिक क्षेत्र नैनी में है, जहाँ इंडियन टेलीफोन इन्ड्रस्टीज, भारत पंप्स एण्ड काम्प्रेसर्स लि०, त्रिवेणी स्ट्रक्चरल्स लि., जी० ई० सी० लि०, त्रिवेणी इंजीनियरिंग वर्क्स, रेमंड सिंथेटिक्स लि०, हिन्दुस्तान केबिल्स लिमिटेड के अलावा कई–कई लघु उद्यमों की फैक्ट्रियाँ हैं। शहर से करीब ४० किलोमीटर पूर्व की ओर फूलपुर कस्बे के पास इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर्स लि० घिया नगर में उर्वरक की बहुत बड़ी

फैक्ट्री है। घूरपुर क्षेत्र में ग्लास फैक्ट्री तथा शहर के पश्चिम में बमरौली क्षेत्र एवं तेलियरगंज क्षेत्र में कई छोटी–छोटी फैक्ट्रियाँ हैं।

स्वास्थ्य सेवायें

नगर के बीच मोतीलाल नेहरू मेडिकल कालेज के पास ७०० बिस्तरों का एक बड़ा चिकित्सालय है, जो स्वरूपरानी नेहरू चिकित्सालय के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा तेज बहादुर सप्रू चिकित्सालय, मोतीलाल नेहरू चिकित्सालय (काल्विन अस्पताल), कमला नेहरू स्मारक हास्पिटल, सरोजनी नायडू महिला चिकित्सालय (डफरिन अस्पताल), मेहता नेत्र चिकित्सालय, राजकीय नेत्र चिकित्सालय, राजकीय क्षय रोग चिकित्सालय आदि हैं। इनके अलावा राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, होम्योपैथिक चिकित्सालय भी हैं। नगर निगम की ८ डिस्पेन्सरियों के अलावा राज नर्सिंग होम, प्रीति हास्पिटल, लोकनाथ नर्सिंग होम, प्रीति नर्सिंग होम, सिटी हास्पिटल, देवराज मेडिकल सेन्टर, केस्वानी हास्पिटल, नाजरेथ अस्पताल, सुश्रुत सर्जिकल सेन्टर, मदनानी हास्पिटल, विकलांग केन्द्र अस्पताल, जहाँगीर मेमोरियल चैरिटेबिल हास्पिटल आदि निजी अस्पताल हैं।

संस्थायें

नगर में कई संस्थायें हैं, जो सामाजिक कार्यों में संलग्न रहती हैं। आर्य समाज की शाखायें चौक और कटरा आदि स्थानों में हैं, जिनमें वर्ष–पर्यन्त कुछ–न–कुछ कार्यक्रम चलते रहते हैं। यहाँ दो बड़ी रामलीला कमेटियाँ हैं। एक श्री पथरचट्टी रामलीला कमेटी एवं दूसरी पजावा रामलीला कमेटी। पथरचट्टी रामलीला कमेटी उत्तर भारत की सबसे प्राचीन रामलीला कमेटी कही जाती है। यह कमेटी दशहरा के अवसर पर रामदल निकालने में अहम भूमिका निभाती है। इसके द्वारा हर वर्ष स्मारिका भी निकाली जाती है, जो पठनीय होती है। इसी प्रकार पजावा रामलीला कमेटी दशहरे के समय रामदल निकालने में अहम भूमिका निभाती है। यह कमेटी अच्छी स्मारिका प्रकाशित करती है। इसके अलावा कटरा, दारागंज, बैहराना, अल्लापुर (भरद्वाजपुरम्) आदि की रामलीला कमेटियाँ अपने–अपने क्षेत्रों में रामदल निकालती हैं। अल्लापुर रामलीला कमेटी पठनीय स्मारिका प्रकाशित कराती है। सामाजिक कार्यों में सर्वेन्ट आफ इण्डिया सोसाइटी, भारत सेवक समाज, सेवा समिति, रोटरी क्लब और लायंस क्लब आदि सेवा में संलग्न हैं। जहाँगीर मेमोरियल चैरिटेबिल सोसायटी शहर और ग्रामीण इलाकों में कई अस्पताल बनाकर समाज सेवा में संलग्न है। आलोक कल्याण संस्थान, इंडियन इंस्टीट्यूट फार डेवलपमेन्ट स्टडीज एण्ड रिसर्च, महादेवी मेमोरियल चैरिटेबिल सोसाइटी, नूर मोहम्मद मेमोरियल चैरिटेबिल सोसाइटी आदि संस्थायें भी समाज–सेवा कर रही हैं। यहाँ पर प्रयाग व्यापार मण्डल व्यापारियों का मुख्य संगठन है, जिसके अध्यक्ष श्री प्रेमचन्द्र गुप्त, उपाध्यक्ष श्री ओंकार नाथ खन्ना 'झब्बू जी', महामंत्री श्री विजय अरोड़ा, मंत्री श्री सुहैल अहमद हैं। इसी प्रकार इलाहाबाद प्रयाग मण्डल

का गठन किया गया है, जिसके अध्यक्ष श्री सुनील सेठ बग्गा हैं। इसके अलावा नगर के विभिन्न क्षेत्रों में लगभग ८० व्यापारी संगठन हैं।

पुस्तकालय

नगर में विभिन्न मुहल्लों ओर कार्यालयों में कुल मिलाकर करीब दो दर्जन पुस्तकालय हैं। इनमें भारती भवन पुस्तकालय सबसे पुराना है। यह १८९१ में स्थापित किया गया था। इसके अलावा राजकीय पब्लिक लाइब्रेरी, नगर निगम पुस्तकालय, केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय, राजकीय जिला पुस्तकालय, केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय, राजकीय भाषा पुस्तकालय, रामकृष्ण मिशन पुस्तकालय, राजर्षि टंडन पुस्तकालय, श्री ज्ञान पुस्तकालय, गांधी भवन पुस्तकालय आदि में अच्छी पुस्तकें उपलब्ध हैं। श्री महेन्द्र राजा जैन एवं डॉ. उर्मिला जैन ने बंदरोड, एलनगंज स्थित अपने आवास पर एक समृद्ध पुस्तकालय खोलने का संकल्प ले रखा है।

❀

तीर्थ, मंदिर, संत

तीर्थ का तात्पर्य

भारत देश तीर्थों की भूमि कहा गया है। इनके बारे में विशेष वर्णन वेद और पुराण आदि ग्रंथों में पाया जाता है। वेद, पुराण और शास्त्र हमारी संस्कृति के संवाहक और मूलतत्व हैं। इनमें किया गया वर्णन भारतीय जनमानस के लिये अति मूल्यवान है। समय–समय पर परिभाषायें बदल सकती हैं, पर 'ऋत' कभी 'अनृत' नहीं हो सकता। तीर्थ के सम्बन्ध में यह श्लोक–

तरति पापादिकम् यस्मात् तत्तीर्थम्।

अर्थात्–वह स्थान विशेष, जहाँ जाने से पापों का क्षय हो जाता है, तीर्थ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति मानवमात्र का उद्देश्य रहा है। समकालीन समाज में प्रायः मनुष्य जब सांसारिक दायित्यों का निर्वहन कर चुका होता है, तब तीर्थयात्रा पर निकलता है। सांसारिक कार्यों के लिये अर्थ की आवश्यकता होती है, जो तब तक पूरी हो चुकी रहती है। यद्यपि कामनायें तो जीवन–पर्यन्त विद्यमान होती हैं, किन्तु धर्म और मोक्ष की प्राप्ति तीर्थों में जाने से ही हुआ करती हैं।

हमारे धर्मग्रंथों में कहा गया है–जिस प्रकार शरीर के अंश विशेष पवित्र होते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के कुछ स्थल पवित्र होते हैं और यही पवित्र स्थल तीर्थ कहे जाते हैं। पुराणों ने तीन प्रकार के तीर्थ बताये हैं–

मानस तीर्थ,
जंगम तीर्थ,
भौम तीर्थ।

मानस तीर्थ

मन से प्रकट होने वाले सद्विचारों को मानस तीर्थ कहा जाता है। इन सद्विचारों में सत्य, क्षमा, इंद्रिय निग्रह, दया, सरलता, मृदुभाषण, ब्रह्मचर्य, दान, ज्ञान, दम, धृति और पुण्य मानस तीर्थों की श्रेणी में आते हैं।

जंगम तीर्थ

सन्तों, ब्राह्मणों को संसार का जंगम तीर्थ या चलता–फिरता तीर्थ कहा गया है। ये जंगम तीर्थ अपना मन तो पवित्र रखते ही हैं, अन्य सांसारिक लोगों के मलिन मन में पवित्रता के लिये उपक्रम करते हैं, अर्थात्–ज्ञानोपदेश के माध्यम से माया–मोह से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न करते हैं।

भौम तीर्थ

पृथ्वी पर जितने भी पवित्र स्थल हैं, वे प्रायः पर्वतों और नदियों के निकट हैं। ऐसा इसलिये है कि ऋषियों ने इन्हीं स्थलों पर बैठकर तपस्या की है। चूँकि यह तपोभूमि होती है, इसलिये पवित्र मानी जाती है।

तीर्थराज प्रयाग को ही लीजिये। इसके संबंध में पद्मपुराण कहता है–

गंगा यमुनयोर्मध्ये यत्र गुप्ता सरस्वती।
प्रयागः सतु विज्ञेयः सर्वपापं प्रणाशनः।।

द्वादश माधव और विष्णुपीठ

प्रयाग के मुख्य देवता विष्णु माने गये हैं। इन्हीं को भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है। तीर्थराज प्रयाग क्षेत्र में आठ नायकों का उल्लेख पाया जाता है।

त्रिवेणी माधवं सोमं भरद्वाजं च वासुकिम्।
वन्दे अक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्।।

इस प्रकार त्रिवेणी, माधव, सोम, भरद्वाज, वासुकि, अक्षयवट, शेषनाग और प्रयाग–ये आठ नायक कहे गये हैं। प्रयाग क्षेत्र की आठों दिशाओं में त्रिवेणी और अक्षय के निकट पूर्व और ईशान कोण के मध्य द्वादश माधवों के स्थान बताये गये हैं। कहीं–कहीं पर १३ माधव स्थान भी गिनाये गये हैं। इन माधवों के नाम और स्थिति इस प्रकार है–

१. शंखमाधव–त्रिवेणी क्षेत्र के पूर्व छतनाग में।
२. चक्रमाधव–त्रिवेणी क्षेत्र के अग्निकोण से अग्नितीर्थ के निकट।
३. गदामाधव–यम आश्रम के निकट, अरैल में।
४. पद्ममाधव–त्रिवेणी क्षेत्र के नैर्ऋत्यकोण में वीकरग्राम के निकट।
५. अनन्तमाधव–अक्षय वट के पश्चिम वरुणाश्रम के निकट।
६. बिन्दुमाधव–त्रिवेणी के वायव्य कोण में द्रौपदी घाट के निकट।
७. मनोहर माधव–सूरज कुण्ड जानसेनगंज के निकट।
८. असिमाधव–त्रिवेणी से ईशान कोण में शंकर आश्रम के निकट।
९. संकष्टहर माधव–झूँसी में हंसतीर्थ के पूर्व संध्यावट के निकट।
१०. वेणीमाधव–त्रिवेणीसंगम की धारा में।
११. आदि वेणीमाधव–अक्षयवट के उत्तर दारागंज में।
१२. मूलमाधव–अक्षयवट के दक्षिण की ओर।
१३. वटमाधव– अक्षयवट के नीचे।

उपर्युक्त माधवों का माहात्म्य इस प्रकार कहा गया है–शंखमाधव जीवों की माया को नष्ट करते हैं तथा चक्रमाधव अपने चक्र से सभी कष्टों का निवारण करते हैं। गदामाधव मन विचलित करने वाले शत्रुओं का नाश करते हैं तथा पद्ममाधव योगियों को सिद्धि देते हैं। अनंतमाधव असीम आनंद के प्रदाता हैं और बिन्दु माधव जीव को शांति देते हैं। मनोहर माधव धन–धान्य के अतिरिक्त वैकुण्ठ का वास देते हैं और असिमाधव दुष्टों

का शमन करते हैं। संकष्ट हर माधव अपने भक्तों का संकट हरण करते हैं तथा वेणी माधव त्रिविध तापों का हरण करते हैं। आदि वेणी माधव सिद्धि और शक्ति देते हैं। वटमाधव अमरत्व प्रदान करते हैं।

पंचक्रोशी परिक्रमा और वेदियों के देवता

यह सर्वविदित तथ्य है कि प्रयाग में समस्त देवताओं का निवास माना जाता है। अतः इस क्षेत्र की परिक्रमा का फल अवश्य अक्षय होता है। जिस प्रकार अन्य तीर्थों की परिक्रमा की जाती है, उसी प्रकार प्रयाग की परिक्रमा का भी विधान है, किन्तु श्रद्धालु तीर्थयात्रियों और कल्पवासियों को इसका विधिवत् ज्ञान न होने के कारण वह सही ढंग से परिक्रमा कर पाने में अपने को अक्षम पाते हैं। प्रयाग क्षेत्र का विस्तार पाँच कोस है, यह पद्मपुराण के इस श्लोक से स्पष्ट है–

पंचक्रोशात्मकं क्षेत्रं षट्कोणं विश्वतोन्नतम्।

तात्पर्य यह है कि प्रयाग का क्षेत्र पाँच कोस है। इसके षट्कोण का अर्थ है–गंगा के दो कूल, यमुना के दो कूल और गंगा–यमुना की मिश्रित धारा के दो कूल–इस प्रकार कुल मिलाकर छः कूलों वाला यह उत्तम क्षेत्र है।

तीर्थ, कुण्ड, आश्रम, कूप, देवता, अष्टनायक, तीनों वेदियाँ (अंतर्वेदी, मध्यवेदी बहिर्वेदी) और तेरह माधवों का दर्शन करते हुये पूरे क्षेत्र की परिक्रमा ही पंचक्रोशी परिक्रमा करना है।

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि परिक्रमा कितने दिन और किन–किन मार्गों से की जाये? इसके लिये विद्वानों और संतों ने कुछ सुझाव दिये हैं, जिनके अनुसार पूरे क्षेत्र की परिक्रमा में कम से कम १२ दिन का समय लगता है, क्योंकि मार्ग घुमावदार है। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है कि कल्पवासियों का कल्पवास खंडित न हो। प्रयाग के प्रमुख संत ब्रह्मलीन प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने अपने प्रवचनों एवं लेखों में प्रयाग क्षेत्र की १२–१३ दिन की परिक्रमा का विधान बताया है। पंचक्रोशी परिक्रमा का स्पष्ट मार्ग निर्धारित नहीं किया गया है, फिर भी श्रद्धालुओं की जिज्ञासा के लिये यहाँ कुछ संकेत दिये जा रहे हैं।

परिक्रमा प्रारंभ करने के प्रथम दिन त्रिवेणी स्नान के पश्चात् सर्वप्रथम अक्षय का दर्शन, पातालपुरी मंदिर का दर्शन, फिर किले के नीचे दक्षिण दिशा से सरस्वती कुण्ड, यमुना के उत्तरी तट से होकर ककरहा घाट, ललिता देवी, कल्याणी देवी आदि का दर्शन करते हुये भरद्वाज आश्रम, शिवकुटी आदि का दर्शन करना चाहिये, वहाँ से लौटकर सलोरी स्थित बलराम जी के दर्शन करने चाहिये। तत्पश्चात् नागवासुकि, दशाश्वमेध, अलोपशंकरी, वेणीमाधव और बाँध के नीचे हनुमान जी का दर्शन करने के पश्चात् अंतर्वेदी की परिक्रमा समाप्त की जानी चाहिये। यह परिक्रमा एक दिन की है।

परिक्रमा के दूसरे दिन प्रातः काल त्रिवेणी स्नान करने के पश्चात् नाव या पुल से पार जाकर अरैल क्षेत्र से सोमेश्वर नाथ का दर्शन, अन्य देव मंदिरों का दर्शन, नैनी में गदामाधव जी का दर्शन, आगे रामसागर तीर्थ का दर्शन करने के पश्चात् यमुना के दक्षिणी तट होकर विकिर क्षेत्र (वीकर) की परिक्रमा और फिर यमुना

जी के उत्तरी तट से त्रिवेणी क्षेत्र आकर मध्यवेदी की परिक्रमा समाप्त करनी चाहिये।

परिक्रमा के तीसरे दिन उसी प्रक्रिया के तहत दशाश्वमेध क्षेत्र से गंगा पार करके मनसैता के मानस तीर्थों का दर्शन करने के पश्चात् झूँसी में हंसतीर्थ, हंसकूप, संध्यावट, संकट हर माधव के दर्शन करते हुये व्यास आश्रम, शंख माधव, समुद्रकूप, नागेश्वरनाथ (नागतीर्थ) की परिक्रमा पूरी करके त्रिवेणी पहुँचना चाहिये। इस प्रकार यह वहिर्वेदी की परिक्रमा है।

यह प्रयाग की पंचक्रोशी परिक्रमा है। जिसके लिये उक्त मार्ग व क्षेत्र अभिचिह्नित हैं, किन्तु ऐसा कोई ठोस प्रयास नहीं किया गया कि परिक्रमा का मार्ग निश्चित कर दिया जाये। इसी के अन्तर्गत प्रयाग के माधवों, कुण्डों, तीर्थों आदि का स्थान पुराणों और ग्रंथों के आधार पर निश्चित करने की आवश्यकता है।

प्रयाग क्षेत्र तीन वेदियों में विभाजित है। अन्तर्वेदी, मध्यवेदी और बहिर्वेदी। इन्हीं वेदियों के मध्य द्वादश माधव भी हैं। इन तीनों वेदियों में गंगा और यमुना के मध्य–क्षेत्र अंतर्वेदी, त्रिवेणी के अग्निकोण और यमुना के दक्षिणी दिशा का क्षेत्र मध्यवेदी तथा गंगा के पूर्व और उत्तर का क्षेत्र वहिर्वेदी के अन्तर्गत आता है। तीनों वेदियों के तीर्थों, देवों ओर कुण्डों का विवरण इस प्रकार है–

अंतर्वेदी के तीर्थ

१. शूलटंकेश्वर (अक्षयवट से १० हाथ उत्तर)
२. तिलभाण्डेश्वर (शूलटंकेश्वर के पश्चिम)
३. साक्षीविनायक (तिलभाण्डेश्वर के समीप)
४. कुलस्तम्भ (साक्षीविनायक के पश्चिम)
५. ललिता (अलोपशंकरी) (कुल स्तम्भ के उत्तर)
६. ललितेश्वर (ललिता के समीप)
७. सूर्यकुण्ड (अक्षयवट के पश्चिम)
८. आदिवेणी (अक्षयवट के दक्षिण)
९. घृतकुल्या (आदिवेणी के पश्चिम)
१०. मधुकुल्या (घृतकुल्या के पश्चिम)
११. आदित्य तीर्थ (मधुकुल्या के पश्चिम)
१२. ऋणमोचन (आदित्य तीर्थ के पश्चिम)
१३. पापमोचन (ऋण मोचन के पश्चिम)
१४. सरस्वती कुण्ड (अक्षयवट के दक्षिण)
१५. परशुराम तीर्थ (सरस्वती कुंड के समीप)
१६. गोघट्टन तीर्थ (परशुराम तीर्थ के पश्चिम)
१७. पिशाचमोचन (गोघट्टन के पश्चिम)

१८. कामेश्वर तीर्थ (पिशाचमोचन के पश्चिम)
१६. कपिल तीर्थ (कामेश्वर तीर्थ के पश्चिम)
२०. तक्षक तीर्थ (कपिल तीर्थ के पश्चिम)
२१. कालिय कुण्ड (तक्षक कुण्ड के पास)
२२. चक्रतीर्थ (कालिय कुण्ड के पश्चिम)
२३. सिन्धु सागर (चक्र तीर्थ के पश्चिम)
२४. पाण्डव तीर्थ (कूप) (सिन्धु सागर के उत्तर)
२५. वरुणाश्रम (वरुण कुण्ड) (पाण्डव कूप के उत्तर)
२६. कश्यपाश्रम (वरुणाश्रम के उत्तर)
२७. अत्रि आश्रम (कश्यपाश्रम के उत्तर)
२८. भरद्वाज आश्रम (अत्रि आश्रम के उत्तर)
२६. सीताराम आश्रम (भरद्वाज आश्रम के उत्तर)
३०. विश्वामित्र आश्रम (सीताराम आश्रम के उत्तर)
३१. गौतमाश्रम (विश्वामित्र आश्रम के उत्तर)
३२. जमदग्नि आश्रम (गौतमाश्रम के उत्तर)
३३. वशिष्ठ आश्रम (जह्नु आश्रम के उत्तर)

अक्षयवट के दक्षिण वरुणकुण्ड से यमुना के किनारे ककरहा घाट तक, फिर वहाँ से उत्तर की ओर भरद्वाज आश्रम होते हुए द्रौपदी घाट तक (वायव्य मण्डल तक) के प्रसिद्ध तीर्थ हैं।

३४. शिवकुटी (द्रौपदी घाट से पूर्व)
३५. उच्चैःश्रवा तीर्थ (शिवकोटि से पूर्व)
३६. वृष (धर्मराज) तीर्थ (उच्चैःश्रवा तीर्थ के पूर्व)
३७. भोगवती कुण्ड (वृषतीर्थ के पूर्व वासुकि के पास)
३८. वासुकि नाग (भोगवती कुण्ड के पश्चिम)
३६. ब्रह्मकुण्ड (वासुकि के दक्षिण)
४०. दशाश्वमेध (ब्रह्मकुण्ड के दक्षिण)
४१. दशाश्वमेधेश्वर महादेव (दशाश्वमेध के पश्चिम)
४२. लक्ष्मी तीर्थ (दशाश्वमेघ के दक्षिण)
४३. मलापह तीर्थ (लक्ष्मी तीर्थ के दक्षिण)
४४. उर्वशी कुण्ड (मलापह के दक्षिण)

मध्यवेदी के तीर्थ

१. सोम तीर्थ सोमेश्वर शिव–अक्षयवट से अग्निकोण में।
२. सूर्यतीर्थ–सोम तीर्थ के पश्चिम।
३. कुबेर तीर्थ–सूर्य तीर्थ से पश्चिम।
४. वायु तीर्थ–कुबेर तीर्थ के पश्चिम।
५. अग्नि तीर्थ– वायु तीर्थ के पश्चिम।
६. धर्मराज तीर्थ–अग्नि तीर्थ के पश्चिम।
७. वीर तीर्थ– धर्मराज तीर्थ के पश्चिम।
८. माधव–वीर तीर्थ के पास (गदामाधव)
९. याम्य तीर्थ– माधव के समीप।
१०. रामतीर्थ– याम्यतीर्थ पश्चिम(रामसागर)।
११. सीताकुण्ड– रामतीर्थ के पश्चिम।
१२. हनुमत्तीर्थ–सीताकुण्ड के पश्चिम।
१३. उर्वशी कुण्ड– हनुमत्तीर्थ के पास युमना के दक्षिण।
१४. सुधारस तीर्थ– उर्वशी कुण्ड के पश्चिम।
१५. कम्बलाश्वतर नाग– सुधारस तीर्थ के दक्षिण।
१६. वीकर (सुजावनदेव) यमुना की धारा में।
१७. बहुमूलक नाग– विकर क्षेत्र के उत्तर में स्तम्भ।

(ये सारे तीर्थ त्रिवेणी के अग्निकोण और यमुना के दक्षिणी तट पर हैं।)

इन तीनों वेदियों के तीर्थ, कुण्ड, आश्रम, कूप और देवताओं तथा अष्टनायक एवं तेरह माधवों का दर्शन तथा परिक्रमा ही पंचक्रोशी परिक्रमा है।

तीर्थ परिक्रमा के सम्बन्ध में कुछ विकल्प इस प्रकार हैं–

१. केवल क्षेत्र की चारों सीमाओं की परिक्रमा ही पंचक्रोशी परिक्रमा है ?
२. तीनों वेदियों की अलग–अलग परिक्रमा पंचक्रोशी परिक्रमा है ?
३. पंचक्रोशी परिक्रमा कितनें दिनों में होनी चाहिए ?
४. पंचक्रोशी परिक्रमा में शास्त्रवर्णित तीर्थ, आश्रम एवं देवों का दर्शन आवश्यक है ?

बहिर्वेदी के तीर्थ

१. मानस तीर्थ– गंगा के उत्तर मनसैता गाँव में
२. यज्ञ तीर्थ–मानस तीर्थ के दक्षिण गंगा तट पर

३. अरुन्धती तीर्थ– यज्ञ तीर्थ के दक्षिण
४. हंस तीर्थ– अरुन्धती तीर्थ के दक्षिण
५. कालकूप–हंसकूप–हंस तीर्थ के पूर्व
६. शाल्मली तीर्थ– हंस कूप के दक्षिण
७. ब्रह्मकुण्ड–शाल्मली तीर्थ के पास
८. हंसप्रपतन तीर्थ– ब्रह्मकुण्ड के पीछे
९. नल तीर्थ–ब्रह्मकुण्ड के दक्षिण
१०. ऐल तीर्थ– नल तीर्थ के दक्षिण
११. समुद्र कूप–ऐल तीर्थ के दक्षिण, पुरानी झूँसी में
१२. व्यासाश्रम– समुद्रकूप के दक्षिण
१३. नागतीर्थ (नागेश्वर शिव)

ये समस्त तीर्थ गंगा के उत्तर और पूर्व में स्थित हैं।

अक्षय वट

स चाक्षयवटः ख्यातः कल्पान्तेऽपि च दृश्यते।
शेते विष्णुर्यस्य पत्रे अतोऽयमव्ययः स्मृतः।।

(पद्म पुराण, उत्तरखण्ड २४।८)

उक्त श्लोक से स्पष्ट है कि सृष्टि के प्रलयकाल में भी यह वृक्ष स्थित देखा जाता है। इसका नाश कभी नहीं होता। इसके पत्तों के ऊपर शंखचक्र गदापद्मधारी भगवान विष्णु उस समय शयन करते हैं। अतः उसे अक्षय (अव्यय) वट कहा गया है।

प्रयाग की अमूल्य निधियों में अक्षयवट का सर्वाधिक महत्व बताया गया है। देवी, देवताओं के अलावा ऋषियों–महर्षियों ने इस वृक्ष के नीचे बैठकर तपस्या की है। इस वृक्ष की महत्ता हमारे पुराणों में स्पष्ट रूप से कही गयी है–

मूलं विष्णुः स्वयं साक्षात् स्कन्धा लक्ष्मी स्वयं शुभा
पत्राणि भारती देवी पुष्पाणि विबुधेश्वरः
ब्रह्मा फलानि सर्वाणि सर्वधारी हरिः प्रभुः

अर्थात्–उस अक्षय वट की जड़ें स्वयं साक्षात् विष्णु तथा शाखायें स्वयं मंगलमयी लक्ष्मी, देवी सरस्वती उसके पत्र तथा भगवान शंकर उसके पुष्प, चतुरानन ब्रह्मा जी फल और विष्णु जी इन सबका आधार हैं।

जिस समय भगवान श्रीराम अयोध्या से चित्रकूट जा रहे थे, उस समय सीता जी ने इस वृक्ष को प्रणाम कर अचल अहिवात की कामना की थी और लंका विजय के पश्चात् जब भगवान श्रीराम पुष्पक विमान से

अयोध्या वापस लौट रहे थे तो उस समय भी उन्होंने सीता जी को इसे प्रणाम करने के लिये कहा था।

श्रीराम कहते हैं–हे सीता! देखो, यही वह श्याम वट है, जिससे तुमने प्रार्थना की थी। फलों से युक्त होने पर यह पद्मराग मणियों से सम्पन्न इन्द्रनील मणियों की राशि के समान प्रतीत हो रहा है।

पुराणों में कुछ स्थानों पर इसे श्याम वट तो कहीं पर अक्षय वट के नाम से इंगित किया गया है। वेदव्यास ने इसे अक्षयवट कहा है। पाण्डवों ने अपने वनवासकाल में इसकी छाया में चार माह बिताये थे, ऐसा वर्णन महाभारत में पाया जाता है।

मार्कण्डेय जी का अक्षय वट से अतीव लगाव था। महाभारत युद्ध के पश्चात् उन्होंने दुखी युधिष्ठर को प्रयाग जाकर अक्षय वट का दर्शन करने को कहा था। कूर्म पुराण में अक्षय वट का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है–

वटंमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
स्वर्ग-लोकमतिक्रम्य रुद्र-लोकं स गच्छति।।

अर्थात्–अकाम–सकाम भावना से यदि कोई व्यक्ति अक्षय वट के मूल में प्राणों का त्याग करता है तो वह स्वर्ग को पार करके रुद्र लोक को प्राप्त होता है।

अक्षय वट, जिसे श्याम वट के नाम से भी जाना जाता है, का वर्णन पद्मपुराण में इस प्रकार मिलता है–

श्यामोवटो श्यामगुणं वृणोति स्वच्छायया श्यामलया जनानाम्।
श्यामःश्रमं कृतन्तियत्र दृष्टः स तीर्थराजो जयति प्रयागः।।

अर्थात्–जहाँ श्याम वट (अक्षय वट) अपनी श्यामल छाया से मनुष्यों को दिव्यसत्व गुण प्रदान करता है, जहाँ माधव (श्याम) अपने दर्शन करने वालों का पाप–ताप नष्ट कर देते हैं, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो।

अक्षय वट से कूदकर देहत्याग का महत्व भी कई स्थानों पर बताया गया है। मुक्ति की कामना से लोग ऐसा करते थे। ऋग्वेद खिल का यह मंत्र उक्त तथ्य का परिचायक है–

सितासितौ सरिते यत्र संगते
तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीराः
स्ते जनासो अमृत्वं भजन्ते।। (ऋग्वेद खिल १०१६५/१)

अक्षय वट के नीचे बैठकर अपने शरीर के अंग काटकर पक्षियों को खिलाने की प्रथा का उल्लेख कई ग्रंथों में मिलता है। यह सब मोक्ष प्राप्ति की कामना से किया जाता था। महाराजा हर्षवर्धन के काल में चीनी यात्री हेनसांग आया था और उसने भी ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है, जिसमें एक–दो उसके समक्ष हुयी थीं। हेनसांग ने लिखा है–

प्रयाग का क्षेत्रफल २० ली के लगभग है और वह दो नदियों के संगम पर स्थित है। राजधानी में पूजितदेव मंदिर के समीप बहुत दूर तक फैला एक वृक्ष है। मंदिर के दर्शनार्थी कुप्रभाव तथा अंधविश्वास में पड़कर प्राचीन समय से आत्मदाह करते आये हैं। (एक मील लगभग ५ ली के बराबर होता है।)

यद्यपि अग्निपुराण के अनुसार जो व्यक्ति इस वटवृक्ष से कूदकर प्राण त्याग करता है, वह विष्णुलोक को प्राप्त करता है–

प्रयागवट शाखाग्रात् पतनं यः करोति सः।
स्वयंदेह निवासस्यकाले प्राप्ते महीपतिः।
उत्तमान प्राप्तुयालोकाननात्मघाती भवेत्क्वचित्।।

इस प्रकार इससे प्राण त्याग करने वालों को आत्महत्या (आत्मघात) का पाप नहीं लगता।

महमूद गजनवी के साथ सन् १०१७ ई० में भारत आने वाले मुस्लिम यात्री अलबरूनी ने भी उक्त घटना का उल्लेख किया है।

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है–

देवदनुज किन्नर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी।।
पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अछयवट हरषहिं गाता।।
संगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अछयवट मुनि मनमोहा।।

अक्षय वट का महत्व तो बना रहा, परन्तु किले के अंदर बंद हो जाने से लोग इसका दर्शन नहीं कर पाते थे। सन् १९४० के आसपास प्रयाग के प्रतिष्ठित नागरिक श्री शिवनाथ काटजू ने किले के भीतर वास्तविक अक्षय वट की खोज का संकल्प लिया। इनके इस कार्य में किले के तत्कालीन ब्रिगेडियर जयपाल और कमांडिंग आफिसर मेजर कुंदन सिंह ने काफी सहायता की। श्री काटजू जी को अंततः अक्षय वट की खोज में सफलता मिल गयी। स्वयं काटजू जी के शब्दों में–

"मैंने किले के विभिन्न स्थान देखे, परन्तु मुझे असली अक्षयवट कहीं नहीं दिखाई पड़ा। कुछ दिनों के पश्चात् मैंने कुछ योगियों से पूछताछ की। एक दिन दोपहर के बाद मुझे एक योगी मिले, जो यमुना जी की ओर लिवा ले गये और किले की दीवार पर खुदे हुये कमल के चिह्न को दिखाते हुये बोले कि पारंपरिक कथनानुसार वास्तविक अक्षयवट यहीं कहीं होना चाहिये। मैं उस वृक्ष के नीचे पहुँचना चाहता था, परन्तु वह स्थान बंद था। अधिकारियों को उस वृक्ष तक मार्ग निकालने में तीन सप्ताह लगे। अंततः २८ जुलाई, १९४० को मेजर कुंदन सिंह तथा उनके कुछ अफसरों के साथ मैंने सर्वप्रथम उस वृक्ष को देखा। इसके नीचे का स्थान सड़ी पत्तियों से लगभग एक फिट तक ढका हुआ था। इसके चारों ओर सर्प घूम रहे थे। अधिकारियों ने जब मार्ग साफ कराया तो हम वृक्ष के नीचे पहुँचे।"

श्री शिवनाथ काटजू के अलावा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के प्रोफेसर डा० रंजन ने इस वृक्ष का वैज्ञानिक परीक्षण किया और इसकी प्राचीनता प्रामाणिकता बतायी।

मनकामेश्वर तीर्थ

मनकामेश्वर प्रयाग के प्रमुख तीर्थों में से एक है। यमुना–तट पर स्थित मनकामेश्वर भगवान शिव का मंदिर है, जिसमें मनकामेश्वर महादेव अवस्थित हैं। पुराण वर्णित इस तीर्थ का इसलिये विशेष महत्व है, क्योंकि

मनकामेश्वर महादेव के स्मरण और पूजन से लोगों की मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। प्रयाग माहात्म्य में कामेश्वर तीर्थ का वर्णन है–

"कामेश्वरोपि तत्रास्ते तस्य तीर्थस्य दैवतम्"

मनकामेश्वर मंदिर परिसर में और भी देवता स्थित हैं, किन्तु प्रधान देव के दर्शन और अर्चन हेतु यहाँ नित्यप्रति श्रद्धालुओं की भीड़ आती है। महाशिवरात्रि के अवसर पर मंदिर–परिसर को खूब सजाया जाता है और रुद्राभिषेकादि धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं।

वर्तमान समय में जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती जी महाराज का आश्रम भी यहीं पर स्थापित है। शंकराचार्य जी के माध्यम से इस तीर्थ का विकास भी हो गया है। मंदिर से नीचे यमुना–स्नान करने जाने के लिये सीढ़ियाँ बन गयी हैं तथा आसपास का वातावरण रमणीक लगता है। बगल में इलाहाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा विकसित एक सुंदर पार्क है, जहाँ सैलानी प्रायः आते ही रहते हैं। श्रावण में मास पर्यन्त मनकामेश्वर महादेव का विशेष पूजन चलता है। मंदिर के पास ही अंग्रेजों के शासनकाल में बना हुआ एक भग्न बंदरगाह है, जो यमुना जल के वेगमय प्रवाह को अपनी ओर से मोड़ देता है, किन्तु यदि यह समाप्त हो गया तो मंदिरों के अस्तित्व को खतरा हो सकता है।

रमणीक स्थल होने के कारण प्रायः संतजन यहीं आकर विश्राम करना श्रेयस्कर समझते हैं।

पातालपुरी मंदिर

संगम के निकट स्थित किले के पूर्वी भाग में तहखाने में स्थित देव मंदिर ही पातालपुरी मंदिर है। इसका निर्माण कब और किसके द्वारा कराया गया, यह विवरण नहीं मिलता, लेकिन इसकी प्राचीनता ह्वेनसांग के एक अभिलेख से झलकती है : "नगर में एक देवमंदिर है, जो अपनी सजावट और चमत्कारों के लिये प्रसिद्ध है। इसके बारे में कहा जाता है कि यदि कोई यहाँ एक पैसा चढ़ाता है तो स्वर्ग को चला जाता है। मंदिर के आँगन में एक विशाल वृक्ष (अक्षयवट) है, जिसकी शाखाएँ और पत्तियाँ दूर–दूर तक फैली हुई हैं।"

वर्तमान स्थिति यह है कि किला भारतीय सेना के अधीन है और मंदिर केवल माघ के महीने में आम जनता के लिये खोला जाता है। मंदिर की लम्बाई ८४ फीट एवं चौड़ाई ४६.५ फीट है। खंभों के ऊपर टिकी हुई छत की ऊँचाई मात्र साढ़े छः फीट है। मंदिर के भीतर १२–१२ खंभों की सात कतारें हैं। इसके पश्चिमी भाग की ओर मुख्य द्वार है, जिससे सीढ़ियाँ उतरकर जाना पड़ता है। उससे आगे जाने पर मंदिर का मुख्य भाग मिलता है। रास्ते में धर्मराज आदि की मूर्तियाँ हैं। अंदर गणेश, गोरखनाथ, नरसिंह, शिवलिंग आदि समेत कुल ४३ मूर्तियाँ हैं। यहीं पर एक जड़–जैसी कोई चीज है, जिसके ऊपरी भाग में बरगद का पत्ता लगा है। इसे अक्षयवट बताया जाता है, किन्तु वास्तव में यह अक्षयवट नहीं है। अक्षयवट तो विशाल वट वृक्ष है, जो मंदिर से कुछ दूरी पर है। रक्षा भूमि होने व सुरक्षा–कारणों से यह आम जनता के लिये नहीं खोला गया है।

ऐसा समझा जाता है कि यह देवमंदिर पहले खुले स्थान पर रहा होगा, किन्तु किला बनने के बाद यह

उसकी सीमा में आ गया। पातालपुरी मंदिर वर्तमान समय में भी आस्था और विश्वास का केन्द्र बना हुआ है। माघ मास में प्रत्येक वर्ष लाखों लोग यहाँ दर्शन करके अपने को धन्य समझते हैं।

बड़े हनुमान जी

गंगा, यमुना तथा अदृश्य सरस्वती के पावन संगम तट पर, त्रिवेणी बाँध के नीचे 'बड़े हनुमान जी' का मंदिर अवस्थित है। इस मूर्ति के बारे में एक जनश्रुति है कि एक वणिक जो कि निःसंतान था, हनुमान जी की एक विशालकाय प्रतिमा बनवाकर नाव में लादकर ले जा रहा था। ऐसा कहा जाता है कि उस वैश्य की नाव इसी स्थान पर, जहाँ हनुमान जी का मंदिर स्थित है, रुक गयी। रात्रि–स्वप्न में वैश्य को यह दिखाई दिया कि वह मूर्ति को इसी स्थान पर छोड़कर चला जाये। वणिक ऐसा करने के उपरान्त घर को लौट गया। इस प्रकार उस निःसन्तान वैश्य की मनोकामना पूर्ण हुई और इसी स्थान पर बाघम्बरी बाबा को हनुमान जी की मूर्ति का आभास हुआ। उन्हीं के संरक्षण में खुदाई से 'बड़े हनुमान जी' की प्रतिमा मिली; उस स्थान से मूर्ति को उठाने का प्रयास किया गया, किन्तु मूर्ति अपने स्थान से हिली भी नहीं। प्रयास असफल हो गया। अंततोगत्वा वहीं बाँध के नीचे हनुमान जी के मंदिर का निर्माण कराया गया। वैसे मंदिर के अस्तित्व का समय ठीक–ठीक ज्ञात नहीं है, फिर भी यह घटना लगभग ५०० वर्ष पूर्व की है। १५८३ ई० में अकबर ने गंगा–यमुना–सरस्वती के संगम पर किले की नींव रखा, उसके पूर्व से ही (बड़े हनुमान जी की) मूर्ति के उस स्थान पर होने का अनुमान किया जाता है। इस मूर्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें हनुमान जी का मस्तक उत्तर दिशा में तथा पैर दक्षिण दिशा की ओर है। इनके बायें पैर के नीचे पाताल की देवी 'कामदा' दबी हैं, दाहिने पैर के नीचे अहिरावण दबा पड़ा है, दाहिनी भुजा के नीचे मकरध्वज है, हाथ में गदा सुशोभित हो रही है, बायें हाथ में श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण विराज रहे हैं। हनुमान जी की इस मुद्रा का दर्शन देश की किसी अन्य प्रतिमा में दिखायी नहीं देता। प्रतिदिन प्रातः ५ बजे आरती के साथ मंदिर का पट अपराह्न २ बजे तक खुला रहता है, फिर शयन होता है। पुनः सायं ५ बजे से रात्रि साढ़े आठ बजे तक मंदिर खुलता है। यूँ तो प्रतिदिन ही असंख्य श्रद्धालु भक्तगण श्रद्धा के साथ पुष्प, जल, अक्षत्र नैवेद्य के साथ अपनी श्रद्धा व भक्ति अर्पित करते हैं। प्रतिदिन सिन्दूर, सवा किलो घी तथा चमेली का तेल हनुमान जी की मूर्ति में लगाया जाता है तथा दूध और गंगाजल से स्नान कराया जाता है। प्रत्येक मंगलवार एवं शनिवार के दिन दर्शनार्थियों की अपार भीड़ काफी उत्साह व श्रद्धा के साथ दर्शन–पूजन करती हैं। भक्तगणों की ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक मंगलवार एवं शनिवार को दर्शन करने से बड़ी से बड़ी मनोकामना पूर्ण होती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि बड़े हनुमान जी के दर्शन से मनुष्य के सारे दैविक व भौतिक तपों का नाश होता है।

'बड़े हनुमान जी' मंदिर के संस्थापक बाघम्बरी बाबा थे, जोकि एक सिद्धपुरुष थे। वे सदैव बाघ की खाल पहनकर संगम तट पर पूजा पाठ करते थे; उन्हीं को सर्वप्रथम यहाँ पड़े हनुमान जी की प्रतिमा होने का आभास हुआ था।

आदिशंकर विमान मण्डपम्

गंगा तट पर त्रिवेणी बाँध में खंभे वाले मंदिर की चर्चा करते ही आदि शंकर विमान मण्डपम् की आकृति आँखों के सामने उभरने लगती है। कांची काम कोटि पीठम् के तत्वावधान में शंकराचार्य स्वामी चन्द्रशेखर सरस्वती की देखरेख में निर्मित यह मंदिर प्रयाग की गरिमा को और उन्नत करता है। अभी तक अपने प्रकार का यह यहाँ अकेला मंदिर है। २६ दिसम्बर, १९६८ से इसका निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ। मंदिर की आधार–शिला उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल बी. गोपालरेड्डी ने रखी थी।

आदि शंकर अकादमी आफ संस्कृत कल्चर एण्ड क्लैसिक आर्ट्स, नई दिल्ली के निर्देशन में इस मंदिर का निर्माण हुआ है। मंदिर की नींव, भूमि के नीचे ४० फीट और मंदिर का वाह्यआकार १२० फीट ऊँचा है। मंदिर १६ खम्भों पर आधारित है। खम्भों की लम्बाई १७ फीट है।

मंदिर का प्रवेश द्वार त्रिवेणी बाँध की ओर से है। तीन खण्डों में बने इस मंदिर के प्रथम तल में कामाक्षी देवी की प्रतिमा स्थापित है। यहाँ देवी परिवार तथा आदि शंकर के जीवन वृत्तान्त संबंधी चित्र हैं।

द्वितीय तल में भगवान वेंकटेश्वर, बालाजी तथा इसके चारों ओर विष्णु परिवार की विभिन्न लीलाओं का चित्रण है। मंदिर के तृतीय तल में सहस्र मुखीय शिवलिंग स्थापित है, जिसका भार १२ टन है। शिवलिंग में ब्रह्मा, विष्णु और महेश के तीन भाग हैं।

सम्पूर्ण मंदिर राजस्थानी पत्थरों से दक्षिण भारतीय शिल्पकारों ने बनाया है। मंदिर में कुल मिलाकर लगभग ३०० मूर्तियां हैं। तीनों तलों में जाने के लिये सौ सीढ़ियाँ और १५ दरवाजे हैं। यह मंदिर भारतीय स्थापत्य कला का यह उत्कृष्ट नमूना होने के साथ–साथ आस्था और विश्वास का केन्द्र बन गया है।

उदासीन संतों की गद्दी

बेनी बाँध पर उदासीन सम्प्रदाय के दो संतों की गद्दियाँ बनी हुयी हैं। इनमें से एक गद्दी संत कंकड़ दास की है, दूसरी संत सूरदास की। ये दोनों संत गुरुभाई थे, जो सम्राट अकबर के समय यहाँ आये। कहते हैं, कंकड़ दास बाबा बड़े विलक्षण थे, वे कंकड़ के ढेर में बैठते थे और उसी में तपस्या भी करते थे, इसीलिये उनका नाम कंकड़ दास पड़ गया।

जनश्रुति के अनुसार अकबर ने बाँध बनवाने के लिये कंकड़ों के कई ढेर लगवाये थे। बाबा ने एक ढेर पर अपना आसन लगा लिया और लाख प्रयास के बाद भी वहाँ से नहीं हटे। उनके परवर्ती संतों ने वे कंकड़ मंदिर में रखवा दिये। कंकड़ दास की गद्दी पर मुक्तरात बाबा, ब्रह्मसर बाबा, ब्रह्मलोक बाबा, ब्रह्मेन्द्र बाबा, ब्रह्मचेत बाबा–जैसे ज्ञानी और तपस्वी संत आसीन हुये। आजकल ये गद्दियाँ अखाड़ा *नया उदासीन* के अधीन है, जिसके संस्थापक श्री चन्द्राचार्य जी थे।

श्री तुलसीदास जी का बड़ा स्थान

तीर्थराज प्रयाग के परम पावन देवस्थलों में श्री तुलसीदास जी का बड़ा स्थान का अपना एक अलग ही महत्व है। यह स्थान वैष्णव सम्प्रदाय के उपासकों की पूजास्थली है। प्रयाग के दारागंज मोहल्ले के दक्षिणी छोर पर स्थित यह स्थल पूरे देश में विख्यात है। कहा जाता है कि इसकी स्थापना मानस–रचयिता गोस्वामी तुलसी दास जी के समकालीन श्री देवमुरारी जी ने की थी, जो स्वयं एक सिद्ध महात्मा थे। उनके गुरु का नाम श्री तुलसीदास था। उन्हीं के नाम पर इस स्थल का नाम "श्री तुलसीदास का बड़ा स्थान" पड़ा।

इस स्थल पर श्री राम–लक्ष्मण–जानकी, जगन्नाथ जी, वेंकटेश जी तथा श्री हनुमान जी की दिव्य प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं, जिनमें श्री राम–लक्ष्मण–जानकी प्रतिमा का विशेष महत्व है। इस सिद्धस्थली पर गुरु–शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ही महन्त नियुक्त किये जाते हैं। प्रतिदिन देश के कोने–कोने से साधु, महात्मा, भक्तजन यहाँ आते रहते हैं, जिनके आवास तथा भोजन की निःशुल्क व्यवस्था है। वैसे तो पूरे वर्ष ही यहाँ प्रतिदिन आरती तथा पूजा–अर्चन होता है, किन्तु श्रीराम नवमी के दिन यहाँ विशेष उत्सव, शृंगार होता है। श्रावणमास के श्रावणी झूला में यहाँ झाँकी सजती है, जो भक्तजनों के आकर्षण व श्रद्धा का केन्द्र होती है। यहाँ रहने वाले सिद्ध तथा विरक्त महात्मा किसी प्रकार दान ग्रहण नहीं करते। एक जनश्रुति यह है कि–मुगल बादशाह अकबर ने त्रिवेणी–बाँध–निर्माण काल के दौरान इस सिद्धस्थल को हटाना चाहा, किन्तु महात्मा देवमुरारी जी के प्रभाव से अकबर की यह योजना साकार न हो सकी। उनके प्रताप को देखकर तत्कालीन राजा–महाराजाओं ने इस सिद्धस्थल को भूमिदान तथा धन वगैरह देने की बहुत कोशिश की, किन्तु सांसारिक मोहमाया से विरक्त सिद्ध महात्माओं ने कोई भी दान नहीं स्वीकार किया। इस पवित्र देवस्थली के विषय में अनेकानेक दंतकथायें तथा किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। वर्तमान में भी कुंभ मेले के समय जुलूस इसी वैष्णवी अखाड़े से उठता है। चारों वैष्णव सम्प्रदायों के महन्त यहीं से श्री हनुमान जी की विजयपताका का ध्वज लेकर कुंभ–स्नान करते थे। लगातार बारह वर्षों तक उस पावन पताका की रक्षा बड़ी सावधानी से होती थी, ताकि अगले कुंभ मेले में पुनः इसे प्रयोग किया जा सके। इसी माहात्म्य के कारण इस पवित्र देवस्थली को श्री तुलसीदास जी का बड़ा अखाड़ा की संज्ञा दी गयी।

२०वें विक्रमी संवत्सर के उत्तरार्ध में प्रकाशित तथा राम टहलदास द्वारा रचित 'श्री मद्देवमुरारी जी की जीवनी' के अनुसार तीर्थराज प्रयाग में तीनों लोकों का वास है। जो तीन देवलोक हैं, वे इसी महान पवित्र नगरी में उपस्थित हैं: यथा, अरैल–जहाँ आदिमाधव हैं, विष्णुपुरी के नाम से जाना जाता है तथा गंगापार झूँसी–ब्रह्मपुरी, भरद्वाज आश्रम व श्री नागवासुकी–शिवपुरी के अन्तर्गत जाना जाता है।

एक अन्य जनश्रुति इस प्रकार है : प्राचीन काल में कुछ औघड़ सिद्ध झूँसी–ब्रह्मपुरी में रहने वाले वैष्णव साधकों की साधना में विघ्न डालते थे। वे मुर्दों की छाती पर बैठकर मांस (ज़िंदा पुरुषों का मांस), मदिरा का भक्षण और योग–साधना करते थे। वहाँ रहने वाले वैष्णव साधनों की साधना में विघ्न उत्पन्न हो रहा था। श्री तनतुलसी दास ने अपने शिष्य श्री देवमुरारी जी को वैष्णव साधनों की साधना निर्विघ्न रूप से करवाने हेतु

झूँसी (तत्कालीन ब्रह्मपुरी) भेजा। कहते हैं–देवमुरारी जी ने कठिन तपस्या तथा साधना द्वारा औघड़ संतों को वशीभूत कर लिया। इस कारण वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायियों द्वारा देवमुरारी जी तथा तनतुलसीदास जी को काफी सम्मान दिया जाता था।

वर्तमान "श्री तुलसीदास का बड़ा स्थान" वैष्णव सम्प्रदाय की पावन पूजा स्थली है। इसकी स्थापना के विषय में कहा जाता है कि यह सोलहवीं शताब्दी में त्रिवेणी बाँध बनने के पूर्व का है। इसकी स्थापना देवमुरारी जी ने अपने १७ शिष्यों के साथ प्रयाग में सन्तसेवा की भावना से की थी।

रामानन्दाचार्य मठ

प्राचीन भारतीय संतों, आचार्यों की शृंखला में श्री शंकराचार्य, माधवाचार्य, रामानुजाचार्य तथा निम्बार्काचार्य का नाम उल्लेखनीय है। स्मरणीय है कि प्राचीन भारतीय आचार्यों की शृंखला में उत्तरभारत के सर्वप्रथम नेतृत्व का श्रेय श्री रामानंदाचार्य को जाता है। आप ने रामभक्ति–धारा को पूरे देश में संचारित कर उत्तर–भारत के गौरव को जीवित रखा। उत्तर भारत में राममक्ति रसधारा को प्रवाहित करने वाले श्री रामानंद प्रयाग के प्रथम नागरिक थे, जिन्होंने सम्पूर्ण भारत को राममय बनाया।

आचार्य रामानंद ऐसे संक्रमण काल में पैदा हुये थे, जब विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचारों से भारतभूमि पर रहने वाले लोग पीड़ित थे। आचार्य प्रवर ने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर संतों को सम्मिलित किया और देश की जनता का ध्यान धर्म की ओर प्रेरित किया। यद्यपि उनके काशी निवास की कथायें अधिक पायी जाती हैं किन्तु उनके प्रयाग में जन्म लेने का उल्लेख वाल्मीकि संहिता में भी है–

रामानन्दयतिर्भूत्वा तीर्थराजे च पावने।
अवतीर्य जगन्नाथो धर्म स्थापयते पुनः।।

आचार्य रामानंद की स्मृति में श्री रामानन्दाचार्य मठ का निर्माण हुआ। वर्तमान समय में त्रिवेणी बाँध के दक्षिणी किनारे पर किले से सटा श्री रामानन्दाचार्य मठ प्रयाग के गौरव में अभिवृद्धि कर रहा है। वहाँ आज भी नित्य प्रातः व सायंकाल भक्तिमय संगीत का संचारण होता है। इस मठ का इतिहास काफी पुराना है। मठ का वर्तमान स्वरूप ५ फरवरी १९७६ से है। इस मठ में श्री सीताराम, शंकर जी, जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी और शक्ति की देवी दुर्गा जी की मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा की गयी है।

रामानन्ददास जी से पूर्व स्वामी राम बालक दास जी इस मंदिर में रहते थे। वे वैष्णव सम्प्रदाय के थे तथा भारत की आजादी के सम्बन्ध में काफी चिन्तित रहते थे। तत्कालीन कांग्रेसी जन उनकी कुटिया में गुप्त सभायें आयोजित कर आजादी के लिए की जाने वाली योजनाओं को मूर्त रूप दिया करते थे। त्रिवेणी बाँध पर केवल उन्हीं की कुटिया ऐसी थी, जिस पर तिरंगा झंडा लहराया करता था। उस समय के साधु–संत स्वामी जी के इस प्रकार झंडा लगाने की कड़ी आलोचना किया करते थे। आलोचकों का कहना था कि जिसने हर प्रकार की मोह–माया का परित्याग कर दिया हो, ऐसे विरक्त को झंडा लगाने की कोई आवश्यकता नहीं।

स्वामी राम बालक दास जी भारत की स्वाधीनता के लिए श्री दुर्गा जी की प्रतिमा के समक्ष घी का अखण्ड दीप जलाये रखते थे।

आज भी स्वामी श्री राम बालक दास जी के उस अखण्ड दीप को प्रज्ज्वलित कर उनके संदेशों, उपदेशों को जागृत रखा गया है। श्री राम बालक दास जी के शिष्य स्वामी राम पदारथ जी थे, उन्हीं के विशेष आग्रह पर महन्त श्री रामानन्द दास जी तत्कालीन कुटिया में आये।

जंगमबाड़ी मठ

नगर के दारागंज मुहल्ले में जंगमबाड़ी मठ की शाखा स्थापित है। वीरशैव मतावलंबियों का यह स्थान दशाश्वमेध घाट के पास है। कहा जाता है कि वीरशैव मत के प्रतिपादक स्वयं भगवान शिव थे।

वीरशैव मतावलंबियों की विशेषता यह है कि वे अपने शरीर में सदैव शिवलिंग धारण किये रहते हैं। इनकी मान्यता है कि सृष्टि के ३६ तत्वों का क्रियाविलास पंच ब्रह्मारूप शिव की ही लीला है। आगमों में शिव के इन्हीं पाँच मुखों से इसके पंचाचार्यों का अवतार बताया जाता है। इन्हें अनादि कहा जाता है। हर युग में पंचाचार्यों के पाँच मठ माने जाते हैं। कोलुनपाक के सोमेश्वर लिंग से खेणाध्य का प्राकट्य माना जाता है। यह मठ पश्चिमी मैसूर बालैहोन्नूर नामक स्थान में हैं। अवंतिका में सिद्धेश्वरलिंग से भगवान मरुलाराध्य का प्राकट्य हुआ, जो अब वहाँ से हटकर बल्लारी में हैं। केदारनाथ में भगवान एकोरामाध्य का अधोररूप है, जो द्राक्षाराम क्षेत्र में रामनाथ लिंग से प्रकट हुये थे। श्री शैल के मल्लिकार्जुनलिंग से भगवान पंडिताराध्य का प्राकट्य हुआ तथा काशी के विश्वनाथ लिंग से भगवान विश्वाराध्य प्रकट हुये। इन्हीं पाँच स्थानों में जंगमबाड़ी के बड़े–बड़े मठ स्थापित हैं। काशी का जंगमबाड़ी मठ विश्वविद्यालय मार्ग पर है। १४ सौ वर्ष पूर्व सन् ५७४ का एक दानपत्र काशी के मठ में सुरक्षित है, जिसमें राजा जयनंद देव द्वारा जंगमपुर की भूमि दान करने का उल्लेख है। इसी प्रकार इस मठ को हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, आदि मुसलमान शासकों ने भी दान किया, जिनके पत्र जीर्णशीर्ण अवस्था में यहाँ देखने को मिलते हैं।

प्रयाग में स्थापित इस मठ की शाखा में शिवमंदिर है तथा कई कक्षों में संस्कृत के छात्र निःशुल्क रूप से रहते हैं। यहाँ समय–समय पर धार्मिक आयोजन होते रहते हैं।

शिवमठ और सिद्धेश्वर महादेव मंदिर

प्रयाग एक ऐसा स्थान है, जहाँ हर कोई बसना चाहता है। भारत के सुदूर प्रान्तों के निवासी, जो किन्हीं कारणों से प्रयाग आये और फिर उन्हें यहाँ का वातावरण इतना अच्छा लगा कि यहीं के होकर रह गये। संगम के निकट दारागंज मुहल्ले में स्थित शिवमठ एक ऐसे ही सुदूर प्रान्त के रहने वाले तपस्वी की तपस्या का परिणाम है, जिसे उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लगाकर स्थापित किया। दक्षिण भारत के तिरुनलवेली जिले

के वाहकुलम गाँव निवासी श्री वेंगुशिवन जो, आज से लगभग १७० वर्ष पूर्व अपनी सारी सम्पत्ति शिवमंदिर को समर्पित कर प्रयाग आ गये और धार्मिक वातावरण देखकर यहीं बसने का संकल्प किया। संस्कृत के विद्वान श्री वेंगुशिवन ने दक्षिण भारतीय तीर्थ यात्रियों के निवास के उद्देश्य से शिवमठ की स्थापना की और यहीं पर शिवपंचायतन पूजा प्रारम्भ की। इसकी स्थापना के बाद दक्षिण भारत से आने वाले तीर्थयात्रियों को आवासीय सुविधा तो मिलने ही लगी, भाषाई समस्या भी काफी हद तक हल हो गयी।

श्री वेंगुशिवन के पश्चात् उनके पुत्र श्री सुन्दर शास्त्री, तत्पश्चात् उनके पौत्र एस. वेंकेटेश शास्त्री द्वारा शिवमठ का संचालन किया जाता रहा। श्री वेंकटेश शास्त्री के अथक परिश्रम के चलते तमिल भाषियों के बीच शिवमठ खूब प्रचारित हुआ। प्रयाग की क्षेत्रीय समस्याओं पर ध्यान रखने एवं उनके निवारण हेतु संघर्षरत रहने के कारण श्री शास्त्री को यहाँ का म्युनिसिपल कमिश्नर भी बनाया गया। इसी दौरान उन्होंने शिवमठ के सामने स्थित सिद्धेश्वर महादेव मंदिर का भी जीर्णोद्धार कराया। सिद्धेश्वर महादेव मंदिर में सामने ही पत्थर का एक विशाल त्रिशूल स्थापित है। अंदर भगवती दुर्गा, शिव परिवार, गंगा के साथ–साथ पंचमुखी हनुमान व नवग्रह देवताओं की भी मूर्तियाँ हैं। वर्तमान में मंदिर का संचालन श्री कांचीकामकोटिपीठम् के अन्तर्गत हो रहा है।

उधर शिवमठ का संचालन वेंकटेश शास्त्री के अनुज एस. नटेशशास्त्री व पौत्र रमणी शास्त्री व गणेश शास्त्री कर रहे हैं। यहाँ शिवपंचायतन पूजा परम्परागत ढंग से होती है। दक्षिणाम्नाय श्री शृंगेरी शारदा पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य एवं कांचीकामकोटिपीठम् के शंकराचार्य अपने प्रयाग प्रवास के दौरान यहाँ ठहरकर भगवान शिव की पूजा करते हैं। कांचीकामकोटिपीठम् के परमाचार्य स्वामी चंद्र शेखरेन्द्र सरस्वती जी ने सन् १९३४ ई० में यहीं प्रवास का चातुर्मास्य व्रत पूरा किया था तथा सिद्धेश्वर महादेव की अराधना की थी। उन्होंने सिद्धेश्वर महादेव की स्तुति में श्री सिद्धेश्वराष्टक की रचना भी की।

उत्तरादि मठ

साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना की त्रिवेणी, प्रयाग में गंगा–जमुना एवं अदृश्य सलिला सरस्वती के पावन नगर तीर्थराज प्रयाग में अवस्थित उत्तरादिमठ, मध्व सम्प्रदाय की आराधना का प्रमुख केन्द्र है। यह वर्तमान समय में नगर के दारागंज मुहल्ले की मीरा गली में पड़ता है। दक्षिणी राज्य कर्नाटक तथा देश के सभी भागों से मध्व सम्प्रदाय के अनुयायी यहीं आकर टिकते हैं। इस मठ में हनुमान जी का विग्रह है।

मध्व सम्प्रदाय के प्रवर्तक मध्वाचार्य, जो कि द्वैतवाद में आस्था रखते थे, का आध्यात्मिक आधार भक्ति है। मध्व सम्प्रदायी, इस धर्म के प्रवर्तक परम श्री मध्वाचार्य को हनुमान जी का ही अवतार मानते थे। इन्हीं की स्मृति में आज भी वे हनुमान जी की आराधना बड़ी भक्ति भाव से करते हैं। वर्तमान में भी मठ में हनुमान जी का विग्रह है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी मानते हैं कि हनुमान जी की आराधना द्वारा ईश्वर का दर्शन किया जा सकता है।

मध्वाचार्य ने शंकराचार्य के सिद्धान्त का खण्डन किया था। उन्होंने ब्रह्म तथा जगत् दोनों को सत् माना।

उनके अनुसार, मनुष्य कभी भी ब्रह्म का स्थान नहीं ले सकता, बल्कि वह उस दिव्य शक्ति में अपने आप को समाहित कर सकता है। शंकराचार्य अद्वैतवादी थे। इसके विपरीत मध्वाचार्य द्वैतवादी थे। उन्होंने मोक्ष का मार्ग विष्णु–भक्ति को बताया। उनकी भक्ति–परम्परा में १८ मठ हैं, जिनमें से ८ कर्नाटक के मंगलौर में ऊडवी के पास है। उत्तरादि मठ, व्यासराज मठ, काशी मठ और राघवेन्द्र मठ आदि का नाम उल्लेखनीय है। ईशभक्ति का संचालन कर मध्वाचार्य ने जनमानस में नई चेतना का संचार किया। दक्षिण भारत के आचार्यों में रामानुजाचार्य, शंकराचार्य, मध्वाचार्य और निम्बार्काचार्य आदि का स्थान विशिष्ट है। रामानन्दाचार्य ने रामभक्ति आन्दोलन को सुसंगठित कर इन आचार्यों को ऋण से मुक्ति दिखाई। इन्हीं आचार्यों के कारण जनमानस में ईश्वरानुराग का संचार हुआ। समाज को सदाचार की शिक्षा मिलती रही तथा आध्यात्मिकता की अग्नि प्रज्ज्वलित होती रही।

राघवेन्द्रस्वामी मध्वमत के प्रमुख भाष्यकार कहे गये हैं। आपका जन्म तमिलनाडु की पावन भूमि में हुआ था। आपने ३१० वर्ष पूर्व सौ वर्ष की अवस्था में आदौनी–तालुक (आन्ध्र प्रदेश) के यन्त्रालय नामक स्थान पर जीवित समाधि ले ली थी। आपकी समाधि के पास ही श्री हनुमान की मूर्ति स्थापित है। अपनी समाधि तथा इस मूर्ति हेतु स्वामी जी ने स्वयं शिलाखण्डों का संग्रह किया था। आपके अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने लंका जाते समय विश्राम हेतु इन्हीं शिलाखंडों पर आसन लगाया था।

औरंगजेबनामा के एक वृतान्त से यह बात ज्ञात होती है कि श्री राघवेन्द्र स्वामी ने समाधि लेने के २१ वर्ष पश्चात् औरंगजेब के पुत्र मोहम्मद आजम को 'जलोदर' नामक असाध्य रोग से मुक्ति दिलायी थी।

नागवासुकि

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवतगीता में अपने मुख से नागवासुकि की महत्ता बतायी है। गीता के अध्याय १० के श्लोक २८–२० में कहा गया है–"सर्पों में वासुकि हूँ"। इस प्रकार नागवासुकि के माहात्म्य की और कुछ चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है।

प्रयाग के अत्यन्त प्राचीन और पौराणिक स्थलों में नागवासुकि का पुष्ट प्रमाण है। वर्तमान समय में नागवासुकि का मंदिर दारागंज (बक्शी) मुहल्ले में स्थित है, जहाँ नागवासुकि की प्राचीन मूर्ति है। वासुकि मध्य में प्रतिष्ठित हैं। उनके दोनों ओर नाग–नागिनियों के चार जोड़े कामदशाओं में उत्कीर्ण हैं। मंदिर के पूर्वी द्वार पर देहली में शंख बजाते हुये दो कीचक उत्कीर्ण हैं, जिनके बीच दो हाथियों के साथ कमल बना हुआ है। मंदिर के गर्भ गृह में फणधारी नाग–नागिन की पुरानी मूर्ति है। मंदिर में विघ्ननाशक गणेश जी की भी प्रतिमा है।

असिमाधव और भोगवती तीर्थ का सम्बन्ध वासुकि मंडल से है। अभीष्ट की प्राप्ति हेतु स्नान व पूजन की चर्चा धनु प्रमाण के साथ की गयी है। प्रयागशताध्यायी में भी इसकी विशेष चर्चा है।

नागवासुकि मंदिर में नागपंचमी को श्रद्धालुओं की भारी भीड़ उमड़ती है। इस दिन नागदेवता की विशेष पूजा–अर्चना की जाती है। श्रद्धालुजन गंगा–स्नान करके नागवासुकि के दर्शन करते हैं। नागवासुकि के महत्व

का वर्णन करते हुये शेषनाग ने कहा है–"दिवोदास नामक तपस्वी ने मुझे प्रसन्न करने के लिये इसी स्थान पर बैठकर साठ हजार वर्षों तक तपस्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर मैंने उसे काशी का अचल राज्य प्रदान किया। यह स्थान मुझे और वासुकि दोनों को अत्यंत प्रिय है। इस क्षेत्र में अनेक नाग निवास करते हैं। जो मेरे कुण्ड में स्नान करके वासुकि और मेरी पूजा करते हैं, उन्हें इस संसार के समस्त फल प्राप्त होते हैं और मृत्यूपरांत स्वर्गलोक मिलता है।"

शंकराचार्य मठ

विद्वत्ता और तपस्या की साक्षात् प्रतिमूर्ति स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती का नाम कौन नहीं जानता होगा? ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम को अपने तपोबल से जागृत करने वाले इन शंकराचार्य ने प्रयाग के महत्व को समझते हुये यहाँ एक मठ की स्थापना का संकल्प लिया। उन्होंने देखा कि अलोपशंकरी देवी के सामने एक शिवमंदिर है। स्वामी ब्रह्मानंद जी को यह स्थान उपयुक्त लगा। मंदिर का क्षेत्र दलीपपुर प्रतापगढ़ के राय पशुपत सिंह के अधीन था। शंकराचार्य जी ने रियासत के मालिकों से अपना उद्देश्य बताकर यह स्थान क्रय कर लिया।

यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि इस मंदिर की स्थापना अष्टादश रुद्रमंदिर के पश्चात् दारागंज निवासी राय राधारमण अग्रवाल ने करायी थी, जिसमें शिवलिंग और नंदी की मूर्ति स्थापित हुई थी।

स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती जी द्वारा क्रय कर लेने के पश्चात् इस मंदिर–क्षेत्र का विकास किया गया। यहाँ ज्योतिर्मठ का कार्यालय बनाया गया। स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती जी के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् उनके शिष्य स्वामी विष्णुदेवानंद सरस्वती ने इस मठ की गरिमा को बनाये रखा और अब उनके शिष्य शंकराचार्य स्वामी वासुदेवानंद सरस्वती यहाँ निवास किया करते हैं।

मठ–परिसर में ब्रह्मलीन स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती जी की प्रतिमा के साथ–साथ श्रीमन्त्र भी यहाँ बना हुआ है। मठ में प्रायः शंकराचार्य स्वामी वासुदेवानंद जी के निर्देशन में धार्मिक अनुष्ठान चलते रहते हैं और मठ परम्परा का निर्वाह भी हो रहा है।

मठ–परिसर में एक संस्कृत महाविद्यालय भी है, जहाँ विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा ग्रहण करते हैं। इनके भोजनादि का प्रबंध मठ की ओर से किया जाता है। छात्रों के निवास हेतु छात्रावास और अध्ययन हेतु पुस्तकालय है। इसके अतिरिक्त संतों के निवास हेतु भी स्थान है, जहाँ प्रायः १०–२० संत रहते हैं।

शक्तिपीठ : अलोपशंकरी देवी

सुतीर्थराज पश्चिमे वटस्य वायु कोणगाम्।
प्रयागराज वासिनी नमाम्यलोपशंकरीम्।।

(सुन्दर तीर्थराज के पश्चिम और अक्षयवट के वायव्य कोण में स्थित प्रयागराज में वास करने वाली अलोपशंकरी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।)

प्रयाग की ललिता पीठ के अन्तर्गत अलोपशंकरी देवी का अत्यधिक महत्व है। अलोपी बाग मुहल्ले में

महानिर्वाणी पंचायती अखाड़े के अधीन देवी अलोपशंकरी का मंदिर स्थित है। अनेक देवी ग्रंथों में पर्याप्त अनुसंधान के पश्चात् ५१ शक्तिपीठ होने का प्रमाण मिला है। इनमें प्रयाग की ललिता पीठ भी है। कहा जाता है कि दक्ष के यज्ञ में सती द्वारा प्राण–विसर्जन के पश्चात् सती के मोह में भूतभावन भगवान शंकर उस शव को लेकर सर्वत्र घूमते रहे, लेकिन एक दिन भगवान विष्णु ने उस शव को अपने चक्र से ५१ टुकड़ों में काट डाला और जम्बू द्वीप के ५१ क्षेत्रों में गिरा दिया। इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर एक–एक शक्तिपीठ स्थापित हो गये तथा एक भैरव का प्राकट्य हुआ। प्रयाग की पावन भूमि पर सती की उंगलियाँ गिरी थीं, जिससे ललिता अलोपशंकरी का आविर्भाव हुआ तथा भवभैरव प्रकट हुये। इस तथ्य की पुष्टि हेतु "पीठोत्पत्ति निरूपण" में सम्पूर्ण विवरण देखा जा सकता है, जिसके ३५वें श्लोक में ललिता अलोपशंकरी का स्पष्ट उल्लेख मिलता है–

प्रयागे संगमात् क्रोशं प्रताच्यामंगुलिर्गता।
ललिताऽलोप देवी या राजते भवभैरवे।।

अर्थात्–प्रयाग में संगम–क्षेत्र की पश्चिम दिशा में एक कोस पर जो उंगली गिरी थी, वह ललिता अलोपी देवी के रूप में भवभैरव के साथ विराजमान है।

अलोपीदेवी के संदर्भ में यहाँ यह बताना आवश्यक है कि देवी का जो मंदिर है, इसमें कोई प्रतिमा नहीं है, यहाँ एक चौकोर चबूतरा है तथा चबूतरे के मध्य एक चौकोर कुण्ड है, जिसमें जल भरा रहता है। इस कुण्ड के ऊपर मंदिर की छत से लटका हुआ एक झूला है। इसी झूले और कुण्ड की पूजा की जाती है। मंदिर के सामने आधी फर्लांग की दूरी पर एक शिवमंदिर है, जिसमें शिवलिंग स्थापित है। संभव है, यही भव भैरव का स्थान हो।

इस मंदिर को विस्तृत करके और ऊँचा किया गया है। यहाँ पर शारदीय और वासंतिक नवरात्र में विशेष धार्मिक अनुष्ठान चलते रहते हैं। नगर के लोग हर शुभ कार्य करते समय देवी अलोपी का दर्शन अवश्य करते हैं–

यथेच्छं तु कामान्तरं संप्रसक्ते
सदा चेष्टा दात्री वसन्ती प्रयागे
कृतं तत्र दानं तपो नैव लुप्तं
ह्यतोऽलोपदेवी त्वियं शंकरी वै।।

तात्पर्य यह है कि इच्छानुसार कामनाओं को पूर्ण करने वाली माता अलोपशंकरी प्रयाग में निवास करती हैं। यहाँ पर किये जाने वाले तप, दान, यज्ञादि के फल का लोप नहीं होता। इसी से इनका नाम अलोपशंकरी देवी है।

शक्ति पीठ : माँ ललितादेवी

'पीठ निर्णयम्' के श्लोक २८ में प्रयागपीठ के अन्तर्गत देवी ललिता का नाम आता है। तीर्थराज प्रयाग स्थित ललिता पीठ अत्यन्त प्राचीन है, जिसका वर्णन मत्स्य पुराण, ब्रह्मपुराण, कुब्जिका तंत्र, रुद्रयामल तंत्र,

तंत्र चूड़ामणि, शाक्तानंद तरंगिणी, गन्धर्वतंत्र, देवी भागवत आदि ग्रंथों में पाया जाता है। देवी भागवत में पीठों में प्रयाग को तृतीय स्थान पर रखा गया है, जिसकी अधिष्ठात्री देवी ललिता हैं। ५१ शक्ति पीठों में वर्णित ललिता पीठ के सम्बन्ध में सती की उंगलियों के गिरने वाली एक कथा पायी जाती है, जिसका वर्णन पुराणों में हैं। इसी के निकट भव भैरव का स्थान भी बताया गया है। अक्षय वट के वायव्य कोण में जिस शक्ति का वर्णन मिलता है, वह ललितादेवी ही है, ऐसा तमाम साक्ष्यों से स्पष्ट हो चुका है।

प्रयाग के मीरापुर मुहल्ले में स्थित ललिता शक्तिपीठ काफी समय तक जागृत नहीं हो पाया, किन्तु श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने १६ नवम्बर, सन् १९८७ को देवी ललिता के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया, तब जाकर "प्रयागे तु ललिता" उक्ति सार्थक सिद्ध हुयी। उन्होंने ५० वर्ष पूर्व भी यहाँ छोटा–सा मंदिर बनवाया था, क्योंकि पीठ का अस्तित्व तो पहले से ही था। अब यह मंदिर ८५ फीट ऊँचा है। मंदिर के भीतर देवी ललिता की त्रिमूर्ति स्थापित है। मंदिर परिसर में श्री पारदेश्वर महादेव का लिंग स्थापित है। पारद लिंग की महिमा स्वयं शिव ने अपने श्रीमुख से इस प्रकार बतायी है–

अभ्रकं तव बीजन्तु मम बीजम् तु पारदः।
वृद्धोपारदो लिंगो यं मृत्युदारिद्य नाशनम्।।

अर्थात्–मेरा जो पारद बीज है, उसको स्थिर करने के पश्चात् लिंग स्वरूप का जो पूजन करता है, उसके घर में दरिद्रता कभी नहीं आती और न ही उसे जीवन–मृत्यु का भय होता है।

माँ ललितादेवी के पूजन का भी विशेष फल होता है, क्योंकि यह पीठ पुराण–वर्णित है। मंदिर में प्रतिवर्ष शारदीय और वासंतिक नवरात्र पर विशेष धार्मिक आयोजन होते हैं तथा मंदिर में देवी के दर्शन हेतु भारी भीड़ उमड़ती है।

शक्तिपीठ : कल्याणी देवी

अलोपशंकरी देवी के प्रसंग में ५१ पीठों की कथा के क्रम में माँ कल्याणी का भी वर्णन आया है। मत्स्य पुराण के १०८वें अध्याय में कल्याणी देवी का वर्णन पाया जाता है। यही माँ कल्याणी महर्षि भरद्वाज की अधिष्ठात्री हैं–

"तस्योत्तरे अस्ति ललिता कल्याणीति च गीयते।
दर्शनस्तस्य पूजाभिः सर्वेषां सर्वकामदा।।"

(प्रयाग माहात्म्य, अध्याय ७६, श्लोक १७)

इस प्रकार प्रयाग माहात्म्य के अनुसार कल्याणी और ललिता एक ही हैं, किन्तु यहाँ पृथक अस्तित्व पाया जाता है, जिसकी चर्चा आगे की जायेगी।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के तृतीय खण्ड में वर्णित प्रसंग के अनुसार महर्षि याज्ञवल्क्य ने प्रयाग में भगवती की आराधना करके माँ कल्याणी देवी की ३२ अंगुल की प्रतिमा की स्थापना की है। कल्याणी देवी की प्राचीनता

के पुरातात्विक प्रमाणों के संदर्भ में पुरातत्ववेत्ता डा० सतीश चन्द्र काला का एक शोधपूर्ण लेख है, जिसके अनुसार माँ कल्याणी की प्रतिमा कम से कम १५ सौ वर्ष पुरानी है। वर्तमान समय में यह एक जागृत पीठ बन चुकी है।

नगर के कल्याणी देवी मुहल्ले में एक भव्य मंदिर में स्थापित दिव्य आभा से परिपूर्ण माँ कल्याणी की एक चतुर्भुजी प्रतिमा स्थापित है, जो सिंहस्थ है। प्रतिमा के शीर्ष भाग पर आभामण्डल है तथा मस्तक पर योनि, लिंग व नाग सुशोभित है। मध्य प्रतिमा के वाम भाग में दस महाविद्याओं में से एक देवी छिन्नमस्ता की प्रतिमा स्थापित है। दाहिनी ओर आदिदेव भगवान शंकर की प्रतिमा माँ पार्वती के साथ है। मुख्य प्रतिमा के ऊपर दायें भाग में प्रथम पूज्य देवता गणेश जी की आकर्षक प्रतिमा है। यहीं पर बाईं ओर हनुमान जी की प्रतिमा भी है। इन प्रतिमाओं का नवरात्र व विशेष अवसरों पर भव्य शृंगार किया जाता है। मंदिर में दोनों नवरात्रों पर शतचण्डी महायज्ञ होते हैं। उसी दौरान प्रतिदिन देवी के विविध शृंगार किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त आषाढ़ पक्ष की अष्टमी, चैत्र कृष्णपक्ष की अष्टमी शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी (ढेढ़िया) के अवसर पर देवी माँ का विशेष शृंगार किया जाता है, जिसे देखने के लिये भारी भीड़ उमड़ती है।

शक्तिपीठ : शीतला देवी (कड़ा)

प्रयाग क्षेत्र के शक्ति पीठों में कड़ा की शीतला देवी का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका वर्णन पद्मपुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में पाया जाता है। गंगा के किनारे स्थित कड़ा कस्बा में माँ शीतला का प्राचीन मंदिर है, जिसमें माँ शीतला विराजमान है। पुराणों के अनुसार यहीं पर विस्फोटक नामक राक्षस उत्पन्न हुआ था, जिसका दमन करने हेतु माँ शीतला ने कालरात्रि रूप धारण करके भक्तों का कल्याण किया था।

इस पीठ का महत्व बताते हुये कहा गया है कि चैत्रपक्ष की शीतला अष्टमी को विधिवत पूजन करने और मंदिर जाकर माँ शीतला का दर्शन करने से वे प्रसन्न होती हैं तथा उपासकों की वांछित मनोकामना पूर्ण होती है। बच्चों को चेचक आदि निकलने पर शीतला की पूजा करने का विधान बताया गया है।

इस शक्ति–स्थल का विशेष महत्व होते हुये भी ग्रामीण अंचल होने के कारण इसका विकास नहीं हो पाया, फिर भी लोगों की अगाध श्रद्धा के चलते मंदिर में दर्शनार्थियों की भीड़ होती है। यहाँ आने जाने के लिये कोई नियमित बस सेवा नहीं है। लोग प्रायः निजी साधनों से ही आते जाते हैं। अब यह देवी–मन्दिर नवसृजित कौशाम्बी जिले में पड़ता है।

अष्टादश रुद्र मंदिर

भगवान शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों का वर्णन पाया जाता है और इनकी स्थापना के स्थान भी बताये गये हैं, किन्तु अष्टादश रुद्रों का वर्णन एकाध शैव ग्रंथों में ही मिलता है। प्रयाग के अलोपीबाग मुहल्ले में

अष्टादश रुद्रों का एक भव्य मंदिर पाया जाता है। शंकराचार्य मठ से भरद्वाजपुरम् (अल्लापुर) जाते समय पहले छोटे चौराहे के निकट बायीं ओर एक बड़े अहाते के अंदर वह मंदिर बना हुआ है। इस परिसर में १७ छोटे–छोटे शिवलिंग अलग–अलग मंदिरों में स्थापित हैं और बीच में दो बड़े शिवलिंग हैं।

प्राप्त पुष्ट विवरण के अनुसार लगभग १७५ वर्ष पूर्व (बैसवाड़ा) रायबरेली जनपद के राना बोध सिंह ने विक्रम संवत् १८७४ में यहाँ पर अष्टादश (अठारह) रुद्रों की प्राण प्रतिष्ठा करायी। इसके पश्चात् १९०६ तक में दो विशाल मंदिर और १७ छोटे–छोटे मंदिर बनवाये। दोनों बड़े मंदिर ठीक एक–दूसरे के सामने हैं : एक उत्तर दिशा में और एक दक्षिण दिशा में। इन दोनों पर नंदी की मूर्तियाँ स्थापित हैं। मंदिर के चारों ओर वर्गाकार क्रम में छोटे–छोटे मंदिर हैं, जिनके अंदर छोटे–छोटे शिवलिंग हैं।

वस्तुतः यह मंदिर प्रयाग की प्राचीन धरोहर तथा यहाँ की धार्मिक संस्कृति का जीवंत प्रमाण है।

रूप गौड़ीय मठ

गौड़ीय मिशन ने चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूप गोस्वामी की स्मृति में इस मठ की स्थापना की। नगर के सोहबतिया बाग मुहल्ले में सन् १९२८ में स्थापित इस मठ में श्री राधाकृष्ण चैतन्य की तीन मूर्तियाँ हैं।

कृष्ण भक्ति में आस्था रखने वाला गौड़ीय समुदाय चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा का परिणाम है। पश्चिम बंगाल के नदिया ज़िले के मायापार नामक स्थान पर सन् १४८६ में चैतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ। चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के अवतार कहे गये। उन्होंने अपने समय में कृष्ण भक्ति की ऐसी धारा बहाई कि सारा भारत उससे प्रभावित हुआ। बाद में उनके शिष्य जीव गोस्वामी ने विश्व वैष्णव राजसभा स्थापित कर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया, जिसके अध्यक्ष रूपगोस्वामी थे। रूप गोस्वामी भी चैतन्य महाप्रभु के ही शिष्य थे। कुछ समय पश्चात् दोनों सन्तों के परमपद प्राप्त करने पर इस सभा का कार्य अधूरा रह गया, जिसे श्रीला ठाकुर भक्ति विनोद ने गौड़ीय मिशन स्थापित कर पूरा किया। अचिन्त्य सिद्धान्त पर आधारित इस सम्प्रदाय के अनुयायियों को गौड़ीय कहा जाता है। गौड़ीय मिशन का मुख्यालय कलकत्ता में है, किन्तु देश भर में इसकी ३० से अधिक शाखायें हैं। लंदन में भी इसकी शाखा है।

गौड़ीय सम्प्रदाय में जाति भेद नहीं माना जाता, बल्कि सभी लोग वैष्णव धर्म में गहरी आस्था रखते हैं। ये लोग नाम संकीर्तन को महत्व देते हैं। प्रयाग स्थित रूप गौड़ीय मठ का स्वरुप भव्य है, जिसमें विशाल अतिथि भवन है। मठ में एक दर्जन मूर्तियाँ हैं।

भारत सेवाश्रम संघ

'भारत सेवाश्रम संघ' की स्थापना सन् १९२५ ई० में आचार्य स्वामी प्रणवानन्द जी ने की थी। स्वामीजी बाल योगी थे। आप बचपन से ही दलितों, गरीबों, दुःखियों तथा बीमार व्यक्तियों की सेवा–भावना से युक्त थे। सत्रह वर्ष की अवस्था में आपने गोरखपुर जाकर गोरखनाथ की परम्परा में योगिराज गंभीरानन्द जी से दीक्षा

ग्रहण की और योग साधना में वर्षों रत रहे। सिद्धि प्राप्त कर लेने के पश्चात् आपने गंभीरानन्द जी महाराज की आज्ञा लेकर सेवाभावना से सन् १९१७ ई० में बंगाल में 'भारत सेवाश्रम संघ' की स्थापना की। आज पूरे देश में इस संस्था की कुल ३० शाखाएँ हैं और कुछ शाखायें विदेशों में कार्यरत हैं। इस संस्था की प्रसिद्धि इस बात से स्पष्ट है कि इतने कम समय में यह देश–विदेश में काफी विख्यात हो गयी है तथा आज भी निरन्तर अपनी शाखाएँ बढ़ा रही है। प्रयाग नगर का 'भारत सेवाश्रम संघ' इसी एक बड़ी संस्था की छोटी इकाई है, जिसमें तीर्थ यात्रियों के लिए लगभग ४० कमरे हैं। वहाँ होम्योपैथ तथा अंग्रेजी दवायें दीन–दुखियों को निःशुल्क प्रदान की जाती है। वैसे तो यह संस्था पूरे साल प्रतिदिन निःस्वार्थ भाव से सेवा करती है तथा मानवता, त्याग, धैर्य, साम्प्रदायिक–सद्भाव की भावना हर वक्त प्रसारित करती है, किन्तु माघ मेले व कुंभ तथा अर्धकुंभ के समय कुछ विशिष्ट सेवाएँ सामान्य जनों, दीनों, गरीबों आदि को उपलब्ध करायी जाती है।

आज सेवाश्रम संघ के उद्देश्यों में पूर्ण प्रशिक्षित लगभग ६०० संन्यासी ब्रह्मचारी और स्वयंसेवक देश–विदेश में फैले हैं तथा संघ की सेवाभावना द्वारा कार्यरत हैं। देश के विभिन्न भागों में कुल ३०० मिलन मंदिर कार्यरत हैं, जो पिछड़े वर्ग के लोगों, विशेषकर जनजातियों के बीच कार्यरत हैं। ये शारीरिक शिक्षा तथा जन शिक्षा पर विशेष बल देते हैं।

भारत सेवाश्रम संघ एक सामाजिक, धार्मिक और जनसेवी संस्था है। इसकी स्थापना का मुख्य तत्व त्यागभावना, अनुशासन, धैर्य, आत्मविश्वास आत्मनिर्भरता, दरिद्र नारायण की सेवा, दलितों की विकास और हिन्दू समुदाय में आत्मजागृति उत्पन्न करता है। इसके संस्थापक स्वामी प्रणवानन्द महाराज जी को यह दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य मानवता की सेवा करते हुए आत्म–दर्शन प्राप्त कर सकता है। स्वामी जी स्वयं आगंतुकों से मिलकर उन्हें आध्यात्मिक तथा धार्मिक उपदेश देकर आत्मदर्शन करते थे।।

देश के विभिन्न भागों से असंख्य तीर्थयात्रियों का जमघट 'भारत सेवाश्रम संघ' की धर्मशाला में प्रतिदिन लगा रहता है। यहाँ यात्रियों के रहने की निःशुल्क व्यवस्था की गयी है। इस संघ में संस्थापक दिवस बहुत उत्साह तथा धूमधाम से मनाया जाता है।

संघ के ब्रह्मचारी, संन्यासियों और स्वयंसेवकों का उद्देश्य है : समाज में सेवा का दीप प्रज्ज्वलित करना। बाढ़, भूकम्प, अकाल आदि प्राकृतिक विपदाओं में राहत कार्यों में भारत सेवाश्रम संघ १९२१ से ही लगा हुआ है। जब कभी लोग इन प्राकृतिक विपदाओं से ग्रस्त होते हैं, सेवाश्रम संघ के संन्यासी, ब्रह्मचारी व स्वयंसेवक तन, मन तथा धन से निःस्वार्थ भाव से सेवा में लग जाते हैं। परोपकार ही सेवाश्रम संघ का कार्य है तथा दीन दुःखियों, दलितों, निराश्रितों की सेवा ही इनका उद्देश्य है। इसी भावना को जागृत रखने के कारण प्रयाग स्थित 'भारत सेवाश्रम संघ' विख्यात है।

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय

इस विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १९३६ में राजस्थान के आबू पर्वत पर हुई। इसके संस्थापक दादा लेखराज थे। कहते हैं–एक बार दादा लेखराज एकान्त कक्ष में बैठे थे, उन्हें चतुर्भुज विष्णु का साक्षात्कार

हुआ। इसके पश्चात् साक्षात्कार की घटनाओं का सिलसिला शुरू हो गया। उन्हें निराकार शिव के ज्ञानरूपी प्रकाश की अनूभूति हुई तथा आत्म–ज्ञान हुआ। दादा लेखराज जब अपने को सांसारिक व्यवहार से भिन्न पाने लगे और सृष्टि करने के लिये विचार किया तो प्रजापिता ब्रह्मा की भूमिका में उन्होंने 'ओ३म् मंडली' की स्थापना की। तत्पश्चात् ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय की स्थापना कर नारी तत्व में शक्ति के स्वरूप का अनुभव किया। परिणाम यह हुआ कि बहुत सी देवीस्वरूपा नारियों ने ब्रह्माकुमारी के रूप में अपना जीवन न्योछावर कर दिया। ब्रह्माकुमारियों की मूल भावना यह होती है कि समस्त विश्व की मानव जाति ब्रह्मा की संतान है। अतः जो पुरुष है, वह ब्रह्माकुमार है और जो स्त्री है, वह ब्रह्माकुमारी है। प्रयाग में मुट्ठीगंज तथा अल्लापुर मुहल्ले में इसके केन्द्र हैं तथा राजयोग प्रशिक्षण व शांति कार्यक्रम चलते रहते हैं।

भरद्वाज आश्रम

महर्षि भरद्वाज को कौन नहीं जानता होगा? वे महान तपस्वी और ज्ञानी आचार्य थे। प्रयाग में भरद्वाज जी की चर्चा श्री राम के वनगमन के समय मिलती है। यह भी पुष्ट प्रमाण है कि प्रथम बार रामकथा ऋषि याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को सुनायी थी। जब श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के साथ वनगमन कर रहे थे तो प्रयाग आने पर उन्होंने लक्ष्मण को बताया कि अग्नि की लपटें उठ रही हैं, लगता है कि भरद्वाज मुनि यहीं पर हैं। वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड में ऐसा उल्लेख है–

प्रयागंभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम्।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये सन्निहितो मुनिः।।

रामचरित मानस में भी गोस्वामी तुलसी दास ने लिखा है–'भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा।'

वर्तमान में महर्षि भरद्वाज का आश्रम कर्नलगंज मुहल्ले में आनन्द भवन के समीप स्थित है, जिसमें भरद्वाज की कोई प्रतिमा तो नहीं है, लेकिन भरद्वाजेश्वर शिवलिंग एवं सहस्र फणधारी शेषनाग की मूर्ति है। शिवलिंग की स्थापना स्वयं महर्षि भरद्वाज ने की है, ऐसा माना जाता है। मंदिर के आसपास की भौगोलिक संरचना से स्पष्ट होता है कि गंगा किसी समय यहीं से बहती रही होगी, क्योंकि आश्रम ऊँचाई पर स्थित है और आसपास काफी ढलान है। कहा जाता है कि, जो प्रयाग आने पर भरद्वाज आश्रम नहीं जाता, उसकी यात्रा का फल कम होता है।

अब आश्रम के पास ही दक्षिण दिशा में इलाहाबाद विकास प्राधिकरण ने एक सुंदर पार्क बनवाया है, जिसका नाम भरद्वाज पार्क है। यहाँ पर सायंकाल नगरवासी प्राकृतिक आनंद लेने जाते हैं।

कोटितीर्थ (शिवकुटी)

प्रयाग में गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित तीर्थ कोटितीर्थ कहा गया है। आधुनिक शिवकुटी ही कोटितीर्थ है। पद्मपुराण के अनुसार यहाँ कोटि–कोटि तीर्थों का निवास है और गंगा के तट पर कोटितीर्थ

स्नान है–

कोटि तीर्थस्तु तत्पूर्वे गंगायाः दक्षिणतटे।
वर्त्तते परमस्थानं कोटितीर्थ फलप्रदम्।।

(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय–८८)

इस कोटितीर्थ के देवता कोटि तीर्थेश्वर भगवान शिव कहे गये हैं। इसी स्थान के उत्तर भार्गव, गालव और चामर तीर्थों का भी उल्लेख मिलता है। कोटि तीर्थ का महत्व इसलिये भी स्पष्ट होता है कि आज भी उसके मंदिर विद्यमान हैं।

कोटितीर्थ के दर्शन और स्नान का विशेष लाभ होता है। श्रावणमास पर्यन्त यहाँ मेला लगता है, किन्तु श्रावण अष्टमी को इस तीर्थ की आराधना अतीव महत्वपूर्ण बतायी गयी है। यहाँ पर भगवान शिव की पूजा होती है। आजकल भी यहाँ उक्त तिथि को मेला लगता है तथा दूर–दूर से श्रद्धालुजन शिवजी के दर्शन करने आते हैं। कोटितीर्थ में किये गये दान–पुण्य, पितृतर्पण आदि का फल अनन्त कहा जाता है। अब तो इसके चारों ओर घनी बस्ती हो गयी है, किन्तु जब यह निर्जन स्थान रहा होगा तो पर्याप्त रमणीयता रही होगी। आज भी इस तीर्थ में जाने पर भक्ति–भावना उमड़ पड़ती है।

वर्तमान में विद्यमान शिवमंदिर से गंगा की लहरों का आनंद लिया जा सकता है। लोग गंगा में स्नान करने के बाद इस मंदिर में जाकर शिवलिंग की पूजा करते हैं।

श्री नारायण आश्रम

गंगा के पावन तट तथा नगर की उत्तर दिशा में शिवकोटि (शिवकुटी) नामक स्थान पर श्री नारायण आश्रम, श्रद्धालुओं तथा तीर्थयात्रियों की पावन–स्थली है। इसका निर्माण श्री नारायण महाप्रभु ने सन् १९४८ में कराया था। यद्यपि इस आश्रम की अनेक शाखाएँ देश–विदेश के कई अन्य महानगरों में भी स्थापित हैं, किन्तु जो महत्व शिवकुटी स्थित श्री नारायण आश्रम का है, वह अति विशिष्ट है। विराटनगर (नेपाल), कनखल (हरिद्वार) देवघर (बिहार), अहमदाबाद (गुजरात) तथा लखनऊ में श्री नारायण आश्रम स्थित हैं। स्वामी श्री नारायण महाप्रभु ने इस मंदिर का निर्माण प्राणियों की भक्ति के उपयोगी व यथार्थ ज्ञान, सदाचार, शालीनता तथा देश की महान संस्कृति की अमिट, गौरवशाली परम्परा कायम रखने के लिये की थी, ताकि मानव परोपकार, आध्यात्मिकता तथा सदाचार का पाठ पढ़ कर जीवन के तमाम दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर सके।

श्री नारायण महाप्रभु का मुख्य उद्देश्य मानवमात्र के कल्याण तथा मानवता का संदेश जन–जन तक पहुँचाने का था। इसी कारण इस आश्रम में आध्यात्मिक प्रवचन होते रहते हैं और दीन–दुःखियों की सहायता निःस्वार्थ भाव से की जाती है। अंग्रेजी–चिकित्सा, होम्योपैथ आदि की औषधियाँ, धर्मार्थ, रोगीजनों को वितरित की जाती है। आश्रम के अंतःप्रदेश में बालक–बालिकाओं को शिक्षा विद्यालय में सुलभ करायी जाती हैं। श्री नारायण महाप्रभु ने अपने जीवनकाल में विश्व कल्याणार्थ बाइस यज्ञों को सम्पन्न कराया था। अब तक विश्व

कल्याणार्थ कई महायज्ञों का सम्पादन हो चुका है। विश्व–कल्याणार्थ महाप्रभु ने जो संदेश दिया था, वह आज भी प्रयाग के शिवकुटी स्थित नारायणी आश्रम में अनुभव किया जा सकता है। स्वामी जी के अनुसार–हमारा शरीर नारायण का वासर है। अतः हम राग, द्वेष, छल, कपट, लोभ, मोह माया आदि बन्धनों को त्यागें तथा निःस्वार्थ व निष्काम कर्म करके नारायण की इस पवित्र देह (शरीर) को मानवता के कल्याणार्थ समर्पित करें।

स्वामी जी ने कहा था कि निर्मल मन से मनुष्य कीर्तन, भजन, पूजा–पाठ आदि शुभकर्मों द्वारा अपने को ईश्वर की उपासना में लिप्त कर परोपकार युक्त कर्म करते हुए अपने जीवन के इहलोक तथा परलोक को सँवार सकता है।

श्री नारायण आश्रम के द्वार पर रथ के घोड़ों की रस्सी पकड़े श्री कृष्ण भगवान की प्रतिमा है। इसके शीर्ष पर श्री हनुमान जी विराजमान हैं, यह दृश्य महाभारत–युद्ध के समय को चित्रित करता है, जब स्वयं नारायण, कौन्तेय के सारथी बनकर युद्ध स्थल में उतरे थे। कई अन्य आकर्षण भी इस आश्रम के हैं। इसके भीतर श्री लक्ष्मी नारायण की मूर्ति है, जिसके दायीं तथा बायीं ओर गणेश जी तथा हनुमान जी की प्रतिमाएँ विराजमान है। आश्रम प्रांगण में ही माँ दुर्गा की एक दिव्य प्रतिमा है। जो श्रद्धालु भक्तगण, गंगा स्नानार्थ दर्शन पूजन हेतु प्रयाग आते हैं, वे श्री नारायण आश्रम (शिवकुटी) में भी श्रद्धा–सुमन, अक्षत, नैवेद्य आदि द्वारा पूजन–अर्चन कर अपने को धन्य समझते हैं।

ज्ञानवृक्ष आश्रम

नगर के मध्य भाग में स्थित विशाल राजकीय उद्यान में मदन मोहन मालवीय स्टेडियम की चहारदीवारी से सटा हुआ सुरम्य आश्रम, जिसे देखकर वहाँ आने, जाने वालों के कदम सहसा ठहर जाते हैं, यही ज्ञानवृक्ष आश्रम है। पहले यहाँ पर एक वटवृक्ष था, जिसके नीचे बैठकर कुछ भगवत् जिज्ञासु परस्पर सत्संग करते थे, किन्तु कुछ समय के पश्चात् पूज्य स्वामी विद्यानंद जी परमहंस भ्रमण करते हुये आये तो यहाँ बैठे हुए जिज्ञासु युवा संन्यासी के आभा मंडल से इतने प्रभावित हुये कि उनसे भगवत् चर्चा सुनाने का आग्रह कर बैठे। स्वामी जी ने अपनी ओजस्वी वाणी से जब ब्रह्मज्ञान की चर्चा की तो जिज्ञासु इतने प्रभावित हुये कि उनसे नित्य प्रति आने का अनुरोध करने लगे। स्वामी जी तो परिव्राजक थे, वे भला एक स्थान पर कहाँ ठहरने वाले थे, लेकिन श्रद्धालुओं के अनुरोध पर वे यहाँ प्रायः आने–जाने लगे और अंततः उन्होंने इस वटवृक्ष का नाम ज्ञानवृक्ष रख दिया।

आज से लगभग ५० वर्ष पहले स्वामी जी के लिये कुछ भक्तों ने जब यहाँ ज्ञानवृक्ष के नीचे आश्रम स्थापित करने का विचार बनाया तो राजकीय भूमि होने के कारण कानूनी अड़चनें थी, लेकिन उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी को जब यह जानकारी दी गयी कि यह आश्रम स्वामी जी के लिये है, तो उन्होंने सहर्ष भूमि देने का आदेश कर दिया। परिणामस्वरूप धीरे–धीरे यहाँ आश्रम बनने लगा और एक रमणीय स्थल के रूप में तैयार हो गया। आश्रम का पूरा नाम ब्रह्मविद्या केन्द्र प्राचीन मुनि भूमि

ज्ञानवृक्ष है। आश्रम के अंदर पीपल, बरगद और नीम का एक संयुक्त वृक्ष है।

स्वामी जी अपने जीवन के बारे में किसी से कुछ नहीं बताते थे। उन्होंने स्वामी वल्लभानंद से दीक्षा ली थी और संन्यासी का जीवन बिताने लगे थे। स्वामी जी ब्रह्मज्ञानी तो थे ही, उच्चकोटि के संगीतज्ञ भी थे। उनकी आवाज में जादू था। जब वे हारमोनियम लेकर भजन गाने बैठते थे तो श्रोता मंत्रमुग्ध होकर झूमने लगते थे।

स्वामी विद्यानंद जी महाराज विलक्षण ज्ञानी थे। संकेत में ही सारी बात कह जाते थे और पूछने पर उसको परिभाषित करते थे। इन पंक्तियों के लेखक को भी स्वामी जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ है। वे गूढ़ रहस्यों की चर्चा करते समय बड़े गंभीर हो जाते तथा हिमालय के संतों के रोचक प्रसंग बताते। स्वामी जी प्रायः आश्रम में संगीत सम्मेलन आयोजित करते और संगीतकारों को प्रश्रय देते। सुविख्यात संगीतज्ञ अनुपम राय ने संगीत की प्रथम शिक्षा स्वामी विद्यानंद जी से ही प्राप्त की थी।

श्री हनुमत् निकेतन

नगर की हृदयस्थली सिविल लाइन्स क्षेत्र के कमला नेहरू रोड और स्टेनली रोड के मध्य ऐतिहासिक पुरुषोत्तम दास टंडन पार्क के समीप स्थित 'हनुमत्–निकेतन' साढ़े तीन एकड़ के क्षेत्र में सुन्दर वाटिकाओं से सुसज्जित है। तीर्थयात्रियों, पर्यटकों व नगर निवासियों की श्रद्धा के केन्द्र श्री हनुमत् निकेतन के संस्थापक रामलोचन ब्रह्मचारी जी थे, जिन्होंने बल, बुद्धि, विद्या व ब्रह्मचर्य के प्रतीक, श्री हनुमान जी के दक्षिण भाग में श्री राम, लक्ष्मण व जानकी और उत्तर भाग में सिंह वाहिनी दुर्गा की मूर्ति वाले इस मंदिर को राष्ट्र को समर्पित कर दिया है।

'हनुमत निकेतन' की कुछ विशेषताएँ हैं। निकेतन परिसर में एक आधुनिक व्यायामशाला हनुमान जी के व्यक्तित्व के अनुरूप है, जिसके ऊपरी मंजिल में योगालय है। इसके अतिरिक्त इस निकेतन में पुस्तकालय, वाचनालय, प्राचीन व अर्वाचीन, धार्मिक ग्रंथों व शास्त्रों का संग्रहालय है। श्री हनुमत् निकेतन ब्रह्मचारी जी की कठोर त्याग तपस्या व लगन का परिणाम है। जिसके निर्माण हेतु उन्होंने कठोर संघर्ष द्वारा केवल प्रयागवासियों से धन–संग्रह किया था। ब्रह्मचारी जी ने इस निकेतन का निर्माण कार्य सन् १९५८ ई० में नींव पूजन के साथ आरम्भ किया। सन् १९७३ ई० में हनुमान जी की प्रतिमा की स्थापना के साथ धीरे–धीरे व्यायामशाला, आतिथ्यालय, वेद भवन, वाचनालय, पुस्तकालय का निर्माण हुआ। निकेतन सन् १९७४ में पूर्ण हुआ।

निकेतन में हनुमान जी की मूर्ति सर्वांगपूर्ण और पूजनीय है। ब्रह्मचारी जी कहा करते थे कि सामान्यतः हनुमान जी की मूर्तियों में कौपीन और जाँघिया बनाकर इन्द्रियों का लोप कर दिया जाता है। ऐसी मूर्तियाँ उनके मतानुसार खंडित कही जाती हैं, क्योंकि हनुमान जी जितेन्द्रिय थे। अतः जब तक किसी मूर्ति में शरीर के सभी अवयवों, इन्द्रियों आदि का दर्शन नहीं होता, मूर्ति पूर्ण नहीं मानी जा सकती है।

मंदिर के पूर्वी भाग के मुख्य द्वार पर ब्रह्मचर्य की प्रतिमूर्ति श्री भीष्म पितामह की प्रतिमा है, जो महाभारत युद्ध में प्रतिज्ञा करते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। स्मरणीय है कि महाभारत के युद्ध में भीष्म पितामह ने माधव के शस्त्र लेकर युद्ध करने के लिये बाध्य कर देने की जो प्रतिज्ञा ली थी, उसी के अनुरूप उन्होंने इस तरह का युद्ध किया कि पाण्डवों को विचलित देख भगवान कृष्ण भी अपने ऊपर नियंत्रण न कर सके और रथ का पहिया लेकर युद्ध–स्थल में भीष्म पितामह टूट पड़े। अर्जुन ने आग्रहपूर्वक भगवान कृष्ण को युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा याद दिलायी और इस प्रकार माधव का क्रोध शांत किया। 'श्री हनुमत् निकेतन' के मुख्य प्रवेश द्वार पर भीष्म पितामह की यही प्रतिज्ञा उत्कीर्ण है–

"आज जो हरिहिं न शस्त्र गहावौं।
तो लाजों गंगा जननी को,
शांतनु सुत न कहावौं।"

श्रीराम मंदिर

सिविल लाइंस में स्ट्रैची रोड पर अवस्थित श्रीराम मंदिर आज से लगभग ४० वर्ष पहले बनाया गया। नगर के सबसे अच्छे इलाके के इस मंदिर में श्रीराम, लक्ष्मण व माता जानकी की श्वेत संगमरमर की मूर्तियाँ हैं। इनके अलावा विष्णु–लक्ष्मी और राधा–कृष्ण की भी मूर्तियाँ हैं। बाहर मंदिर के द्वार पर हनुमान जी, दुर्गा जी, गरुड़ जी एवं नारद जी की मूर्तियाँ हैं।

मंदिर बड़े सुंदर ढंग से बनाया गया है। पहले तो साधारण पत्थर ही थे, लेकिन गत वर्ष सारे मंदिर में मुजैक, संगमरमर और कलेजी का काम किया गया है, जिससे मंदिर का सौंदर्य बढ़ गया है। मंदिर में प्रवेश करते ही अंदर की दीप्ति देखकर श्रद्धालु प्रसन्नता का अनुभव करने लगते हैं।

श्रीराम मंदिर परिसर में भगवान शंकर का भी मंदिर है, जिसमें शिवलिंग के अलावा पार्वती जी, गणेश जी, कार्तिकेय जी और शिव जी के वाहन नंदी की मूर्तियाँ है। शंकर जी की भी एक भव्य मूर्ति मंदिर में स्थापित की गयी है। मंदिर की स्थापना सेठ भगवान दास ने अपनी पत्नी श्रीमती भागसुधी की स्मृति में की थी।

मंदिर परिसर में एक सत्संग भवन तथा संत निवास बना हुआ है। समाज सेवा के दृष्टिकोण से मंदिर के बाहरी हिस्से में ऐलोपैथिक एवं होम्योपैथिक चिकित्सा की निःशुल्क व्यवस्था है। इसके अलावा प्राकृतिक चिकित्सा क्लीनिक एवं योग कक्षायें भी चलायी जाती हैं। मंदिर ट्रस्ट की ओर से समारोह आदि के लिये आम जनता को मंदिर का हाल तथा एक सौ लोगों को भोजन कराने हेतु स्टील के बर्तनों का सेट भी बिना किसी शुल्क के उपलब्ध कराया जाता है। गरीब बच्चों को स्कूल की फीस, किताबों और कपड़ों की भी मदद की जाती है। मंदिर में प्रतिमाह एक–एक महात्मा रहकर प्रवचन करते हैं।

श्री निम्बार्क मठ

तीर्थराज प्रयाग के रामबाग मुहल्ले के पास जी.टी. रोड पर स्थित लाखौरी ईंटों से निर्मित निम्बार्क मठ का विशेष महत्व है। इसका निर्माण रायबरेली के समर्पहा राजघराने के राजा बसन्त सिंह व उनकी धर्मपत्नी दरियाव कुँवर ने लगभग १८५७ के आस–पास निम्बार्की राधिकादास की स्मृति में चार बीघे के क्षेत्रफल में फैले इस मठ को बनवाया था।

श्री राधिका दास एक निम्बार्की महात्मा थे और वे तत्कालीन राजा बसन्त सिंह के गुरु थे। निम्बार्क मठ में श्री राधाकृष्ण का एक विशाल मंदिर है। श्री नर्मदेश्वर शिव के मंदिर तथा राय दरबार से युक्त एक धर्मशाला, कुआँ तथा पुजारियों के आवास से सुसज्जित है। निम्बार्क मठ में अवस्थित श्री राधाकृष्ण की युगलमूर्ति दर्शनीय है। ऐसी मूर्ति वृन्दावन के मंदिरों के अतिरिक्त कहीं नहीं मिलती।

जनश्रुति है कि श्री निम्बार्क अरुण ऋषि तथा माता जयंती के पुत्र थे। यद्यपि इनके जन्म काल के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी नहीं है, किन्तु ज्यादातर विद्वान इनका जन्मकाल बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी मानते हैं। कुछ विद्वान इन्हें शंकराचार्य के पूर्व का मानते हैं और कुछ इनका जन्मकाल शंकराचार्य के बाद का मानते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय सबसे प्राचीन है, ऐसा उल्लेख कृष्ण–काव्यों में मिलता है।

कहते हैं–इनके माता–पिता इन्हें अल्पायु में ही वृन्दावन लेकर चले आये थे। वहाँ ये गोवर्धन पर्वत की पश्चिमी गुफा में तपस्या करने लगे। निम्ब वृक्ष पर सूर्य का दर्शन कराने के कारण इनका नाम निम्बार्क पड़ा। आज भी 'निम्बग्राम' वृन्दावन में निम्बार्थियों का मुख्य तीर्थ स्थल माना जाता है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म, जीव, प्रकृति, अनादि और अनन्त हैं। जीव और प्रकृति ब्रह्म के अधीन हैं। इस प्रकार तीनों में परस्पर भेद एवं अभेद दोनों ही है। इसीलिए जीवन को मिथ्या या असत्य न मानकर सत्य अथवा नित्य मानते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुसार जीव बंधनग्रस्त है, किन्तु इस बंधन (माया) से मुक्ति भी संभव है। ये अपने आराध्यदेव श्री राधाकृष्ण, जिन्हें ये ब्रह्म का स्वरूप मानते हैं, की आराधना से जीवन-बंधन, अर्थात्–माया से मुक्ति का संदेश देते हैं। इस सम्प्रदाय के सिद्धपुरुष परम श्री निम्बार्काचार्य ने श्रीकृष्ण को सर्वेश्वर माना है। उनके अनुसार प्रत्येक जीव में उनका अंश, अर्थात्–प्रत्येक जीव में श्री राधाकृष्ण का वास है। कर्मयोग और ज्ञान–योग की अपेक्षा भक्तियोग ही सबसे अंतरंग साधन है, जिसके माध्यम से राधाकृष्ण रूपी ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। आज भी निम्बार्क सम्प्रदाय के संत अनुयायी देश के कोने–कोने में अपने दार्शनिक विचारों तथा उपदेशों के द्वारा सामान्य मानव जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्यों के कष्टों को दूर करने का संदेश देते हैं। चूँकि श्रीकृष्ण सर्वेश्वर हैं, अतएव मनसा, वाचा, कर्मणा यदि किसी जीव को कष्ट पहुँचेगा तो उससे भगवान कृष्ण को भी कष्ट पहुँचेगा। इस प्रकार निम्बार्काचार्य ने सद्गुणों पर बल दिया और दुर्गुणों का परित्याग पर सद्गुणों का वरण करने का उपदेश दिया। निम्बार्काचार्य ने अनेक ग्रंथ भी लिखे हैं।

श्री रामकृष्ण मठ मिशन सेवाश्रम

प्रयाग के मुट्ठीगंज मुहल्ले में लाउदर रोड पर स्वामी विज्ञानानंद ने श्री रामकृष्ण मठ और मिशन सेवाश्रम की स्थापना की थी। रामकृष्ण मिशन एक समाजसेवी संस्थान है, जो बिना जाति–पात, छुआछूत के निःस्वार्थ भाव से दीन–दुखियों, गरीबों तथा रोगियों की सेवा में रत है। इस मिशन के अन्तर्गत अधिकांश संत ब्रह्मचारी तथा समाजसेवी होते हैं। स्वामी रामकृष्ण के शिष्यों में स्वामी विवेकानंद का नाम उल्लेखनीय है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने विश्व के सभी धर्मों को ईश्वर की प्राप्ति में सहायक बताया तथा उन्होंने सभी धर्मों को समभाव से देखने की शिक्षा दी थी। आपके अनुसार सभी धर्मों का गंतव्य एक है, किन्तु उस ईश्वर के समीप जाने के मार्ग भिन्न–भिन्न हैं।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने विश्व के सभी धर्मों का गहन अध्ययन तथा मंथन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विश्व के सभी धर्म सत्य तथा नित्य हैं। सभी धर्मों में ईश्वर के प्रति श्रद्धा की भावना होती है। अतः स्वामी जी के अनुसार सभी धर्मों का साध्य (ईश्वर) एक है, किन्तु उसको प्राप्त करने, उपासना करने अथवा आराधना करने के साधन (मार्ग) भिन्न–भिन्न हैं। बिना किसी पूर्वाग्रह के उन्होंने परम वैष्णव धर्म को माना तथा अपनाया। इसी उद्देश्य की पूर्ति व जीव–सेवा हेतु श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई। इस प्रकार श्री रामकृष्ण मिशन का प्रयास सराहनीय तथा स्तुत्य है। स्वामी विज्ञानानन्द ने प्रयाग में श्री रामकृष्ण मठ और मिशन की स्थापना कर एक होम्योपैथिक चिकित्सालय खोला, जहाँ पर गरीब–लाचार व बेसहारा रोगियों की सेवा निःशुल्क की जाती है तथा औषधि–वितरण होता है। वर्तमान समय में इस मठ तथा मिशन की लगभग एक सौ शाखाएँ देश के विभिन्न भागों में तथा ३० से अधिक विदेशों में कार्यरत हैं।

मठों में एक वर्ष की शिक्षा तथा साधना के पश्चात् संन्यास दिया जाता है। सभी वर्ग, जाति के लोग मठ व मिशन सेवाश्रम में प्रवेश लेकर इनके द्वारा उपलब्ध सुविधाओं का लाभ उठा कर अपना आध्यात्मिक विकास कर सकते हैं।

प्रयाग स्थित श्री रामकृष्ण मठ तथा मिशन (मुट्ठीगंज) में आध्यात्मिक विषयों एवं युगपुरुषों पर व्याख्यान–चर्चा तथा सत्संग होता है। इस मिशन में वाचनालय तथा पुस्तकालय की सुविधा उपलब्ध करायी गयी है, जिनमें धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति, विज्ञान आदि विषयों से संबंधित विशाल पुस्तकें संगृहीत हैं। वाचनालय में देश विदेश की महत्वपूर्ण दैनिक, मासिक, तथा पाक्षिक पत्रिकाएँ उपलब्ध करायी गयी हैं।

श्री रामकृष्ण मिशन मठ की ऊपरी मंजिल में एक मंदिर है, जिनमें नित्य प्रातः वेद मंत्रों का पाठ व पूजन–अर्चन होता है। यहाँ ध्यान योग की भी शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक मास की एकादशी के दिन रामनाम संकीर्तन होता है तथा पूर्णिमा को श्यामनाम का संकीर्तन होता है। श्रीराम, श्रीकृष्ण, महात्मा बुद्ध, जीसस क्राइस्ट, गुरुनानक आदि के आविर्भाव के अवसर पर यहाँ विशेष पूजन–अर्चन तथा आध्यात्मिक आयोजन होता है। नवरात्र तथा शिवरात्रि के पावन अवसर पर यहाँ विशेष पूजन का प्रबन्ध होता है। प्रायः शनिवार को श्रीमद्भगवतगीता तथा रविवार को श्री रामकृष्ण वचनामृत पर प्रवचन तथा सत्संग होता है।

श्री रामकृष्ण मिशन की "जीव–सेवा शिक्षा" के आधार पर ही श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना सर्वप्रथम १८८६ ई० के उत्तरी भाग में बैरनगर में की गई थी। बाद में मई १८८६ ई० में इसे वेलूरमठ में स्थानान्तरित करके इसे मिशन का मुख्यालय बनाया गया। इस प्रकार श्री रामकृष्ण मिशन तथा मिशन सेवाश्रम की स्थापना का उद्देश्य आत्मबोध तथा जनसेवा है।

श्री हाटकेश्वरनाथ मन्दिर

प्रयाग नगर के श्री कामता प्रसाद कक्कड़ रोड (जीरो रोड) पर श्री हाटकेश्वरनाथ मंदिर अवस्थित है। श्री हाटकेश्वर महादेव नागर जनों के इष्ट देवता हैं। लगभग २५,००० गुजराती नागर जन आसपास निवास कर रहे हैं। नागर जन सत्रहवीं शताब्दी में धार्मिक उत्पीड़न, आर्थिक परेशानियों तथा अन्य कारणों से अपना प्रदेश गुजरात छोड़कर देश के विभिन्न भागों में चले गये। वे जहाँ भी गये, अपने परम प्रिय इष्टदेव स्वामी श्री हाटकेश्वरनाथ की पूजा–अर्चना करते रहे तथा अपने सुख–दुख की घड़ी में उन्हीं को सहारा बनाकर आराधना करते रहे।

सन् १८८३–८४ ई० में प्रयाग में बसे कुछ प्रमुख नागर जनों ने एक संगोष्ठी की। संगोष्ठी में बस्तीराम झा, गोविन्द रामदेव तथा बद्रीनाथ देवर्षि जैसे प्रमुख लोग शामिल रहे। इसी संगोष्ठी के संस्थापक सदस्यों ने सर्वसम्मति से सन् १८६५ ई० में 'हाटकेश्वर नाथ' के नर्मदेश्वर लिंग की स्थापना चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को की। १५ दिसम्बर १९२७ ई० में श्री हाटकेश्वर नाथ ट्रस्ट का पंजीकरण कराया गया। इस ट्रस्ट के संस्थापकों में स्वर्गीय कन्हैयालाल दवे (न्यायाधीश), गंगा, रामज्ञानी, कृष्णाराम पांड्या, श्रीराम झा, लक्ष्मी नारायण नागर, गोपाल नागर आदि का नाम उल्लेखनीय है। श्री हाटकेश्वर नाथ जी के मंदिर प्रांगण में एक पुस्तकालय की स्थापना की गयी, जिसमें गुजराती भाषा तथा साहित्य की पुस्तकें उपलब्ध हैं। इस कार्य में सूरत, बम्बई तथा अन्य नगरों में बसे नागर बन्धुओं ने आर्थिक सहायता और पुस्तकें भेजकर पुस्तकालय को परिपूरित किया।

सन् १९३२ ई० में मंदिर परिसर के उत्तर भाग की जमीन स्थानीय नागर बन्धुओं ने चन्दा से खरीदी। सन् १९३७ ई० में न्यायाधीश कन्हैया लाल दवे ने अपनी पैतृक सम्पत्ति का उपयोग पुराने मंदिर के जीर्णोद्धार के लिये किया। इस मंदिर में पूजा–अर्चना हेतु एक पुजारी है। मंदिर में महाशिवरात्रि का पर्व तथा चैत्र शुक्ल चतुर्दशी का स्थापना पर्व काफी उत्साह व धूमधाम से मनाया जाता है। श्री हाटकेश्वर नाथ का मुख्य मंदिर गुजरात प्रान्त के वर्णनगर में स्थित है।

गुजराती नागर जन श्री हाटकेश्वर महादेव के साथ ही माँ अम्बा, जिन्हें वे माँ पार्वती की प्रतिमूर्ति मानते हैं, की पूजा करते हैं। उनकी मान्यता है कि शिव पार्वती की कृपा (जिन्हें वे श्री हाटकेश्वर और अम्बा जी कहते हैं) से ही भक्तों की मनोकामना पूर्ण होती है। इसके उपासकों का कहना है कि सच्चे मन से ईश्वर को जिस नाम से पुकारें, पवित्र फल की प्राप्ति होती है।

श्री हाटकेश्वर नाथ की इस प्रयाग स्थित सभा व मन्दिर द्वारा जन समुदाय के विकास, उनकी शिक्षा,

विशेषकर महिलाओं की शिक्षा अपने परम्परागत धार्मिक नियमों की रक्षा का कार्य सम्पादित करना इसके संस्थापक का प्रमुख उद्देश्य था।

तक्षकेश्वर मंदिर और कुंड

पद्मपुराण में तक्षकेश्वर और तक्षककुण्ड का वर्णन आया है। यह कुण्ड प्रयाग नगर के दरियाबाद मुहल्ले के पास यमुना नदी में है। पद्मपुराण के अनुसार–

सर्वायां शुक्ल पंचम्यां मार्ग श्रावणोः परम्।
यः स्नायात्तक्षकुण्डे, विष बाधा न तत्कुले।।

अर्थात्–प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष की पंचमियों, विशेष रूप से मार्गशीर्ष (अगहन) और श्रावण मास की पंचमी को तक्षक कुंड में स्नान करने से कुल में विषबाधा का भय नहीं रहता है। इसी प्रकार का माहात्म्य तक्षकेश्वर महादेव का भी है।

पौराणिक कथा के अनुसार अश्विनी कुमारों ने किष्किधा पर्वत पर पारदकर्म के लिये रसराज का निर्माण किया और उसे एक गुफा में रख दिया। रसराज के गुफा में रखे होने की जानकारी तक्षक को हो गयी तो उसने सारा रसराज पी लिया और वापस पाताल चला गया। अश्विनी कुमार जब रसराज लेने आये तो देखा कि पात्र खाली है। इस पर वे क्रोधित हो गये। वे रसराज के चोर की खोज करने लगे और कहा कि यदि वह मिल जाय तो उसका वध कर दिया जायेगा। तक्षक को जब इसकी जानकारी मिली तो वह पाताल से भागकर यमुना में वेणीमाधव क्षेत्र में आ गया। जब अश्विनी कुमार खोजते–खोजते थक गये तो गुरु बृहस्पति के पास गये और उनसे विचार करने को कहा। गुरु बृहस्पति ने बताया कि इस समय तक्षक वेणीमाधव की शरण में यमुना में छिपा है और उसे मारा नहीं जा सकता, आप दूसरा रसराज तैयार करें। यमुना के जिस कुण्ड में तक्षक नाग छिपा था, उसे तक्षक कुण्ड नाम दिया गया। चूँकि इस कुण्ड के निकट ही महादेव का लिंग स्थापित था, जिसकी पूजा तक्षक ने की थी, अंतः यह तक्षकेश्वरनाथ कहलाये।

तक्षकेश्वर मंदिर पहले बहुत उपेक्षित और अज्ञात स्थिति में था, किन्तु कालान्तर में चौधरी नौनिहाल सिंह के नाना ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया, तब से यह जगत तीर्थ हो चुका है। बाद में श्री रविशंकर मिश्र ने तक्षकेश्वर की पूजा–अर्चना में अपना विशेष समय दिया। अनेक अवसरों पर विविध कार्यक्रम आयोजित किये गये, जिससे तक्षकेश्वर मंदिर अब प्रसिद्ध हो गया है।

कालिय ह्रद

एक पौराणिक कथा के अनुसार कालिय नाग एक बार युद्ध में गरुड़ से हार गया। गरुड़ ने उसे बाँध दिया, लेकिन कालिय किसी प्रकार से वहाँ से भाग निकला और गरुड़ से बचने के प्रयास में वह यमुना ह्रद

में छिप गया। पता लगाने पर जब गरुड़ को ज्ञात हुआ कि वह वेणीमाधव की शरण में प्रयाग चला गया है और उसको वहाँ से प्राप्त करना कठिन है तो कालिय का पीछा छोड़ दिया। तभी से वह स्थान कालिय हद के नाम से प्रसिद्ध है। इस हद में स्नान करके कालिय नाग की पूजा करने से मनुष्य को सभी बाधाओं से मुक्ति मिलती है तथा वह बलवान होता है। कालिय हद में स्नान, दान, दर्पण और पितृतर्पण आदि शुभ कर्म करने पर लोक–परलोक के सुख की प्राप्ति होती है।

कालिय हद अब स्पष्ट रूप से अभिचिह्नित नहीं है। पुराणों के आधार पर कहा जा सकता है कि तक्षक कुण्ड के निकट यह स्थान है। इसे खोजने की आवश्यकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत संघ (इस्कान)

समय–समय पर ऐसे संत हुये हैं, जिन्होंने अपने–अपने ढंग से भगवान श्रीकृष्ण के नाम का प्रचार किया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत संघ (इस्कान) की भी स्थापना श्री कृष्ण भक्ति के लिए की गयी। सन् १८९६ में कलकत्ता में जन्मे भक्ति वेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद जी महाराज ने चैतन्य महाप्रभु की तरह कृष्णगुणगान में लीन रहकर 'इस्कान' के माध्यम से समस्त विश्व में श्रीकृष्ण के नाम का प्रचार किया।

"हरे राम–हरे कृष्ण" को बीजमंत्र मानकर दुनिया के तमाम देशों में इसका प्रचार करने के उद्देश्य से श्रील प्रभुपाद जी ने १९६६ में 'इस्कान' की स्थापना की तथा अनेक ग्रंथों की रचना की।

श्रीलप्रभुपाद जी का प्रयाग से प्रगाढ़ सम्बन्ध था। उन्होंने यहीं पर १९३३ में वैष्णव आचार्य श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती से दीक्षा ली। आचार्य ने उनकी प्रतिभा पहचानते हुए अपने विचार अंग्रेजी माध्यम से समस्त विश्व को अवगत कराने का आदेश दिया और श्रील प्रभुपाद जी ने १९४४ में "बैक टू गाडहेड" पत्रिका निकाली। सन् १९५९ में गृहस्थ जीवन का परित्याग कर प्रभुपाद जी ने संन्यास ग्रहण किया तथा गौड़ीय परम्परा के अनुरूप वृंदावनवास करके श्रीमद्भागवत् के १८ हजार श्लोकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। उन्होंने पूरे जीवनकाल में ८० से अधिक ग्रंथों का अनुवाद किया तथा कई मौलिक ग्रंथ लिखे। प्रभुपाद जी ने १०८ मंदिरों एवं अनेक गुरुकुलों की स्थापना की।

आज विश्व के तमाम देशों में भारी संख्या में लोग 'इस्कान' परिवार के अनुयायी बन चुके हैं। "हरे राम–हरे कृष्ण" की धूम सारी दुनिया में मची हुई है। श्रील प्रभुपाद की स्मृति में इस्कान का एक केन्द्र भरद्वाजपुरम (अल्लापुर) में चलाया जा रहा है। एक मंदिर की स्थापना भी बलुआघाट मोहल्ले में हो चुकी है।

हंसकूप या हंसतीर्थ

गंगा के पूर्वी तट पर प्रतिष्ठानपुरी (झूँसी) में हंसकूप या हंसतीर्थ स्थित है। इस पवित्र कूप का उल्लेख वाराह और मत्स्य पुराणों में मिलता है। मत्स्य पुराण के अध्याय १०६ में हंसकूप का वर्णन किया गया है, जिसे

हंसरूपी बावली में स्नान करने तथा इसका जल पीने से हंसगति, अर्थात्–मोक्ष प्राप्त होता है।

हंस कूप के निकट दक्षिण पूर्वी कोने पर हंस सम्प्रदाय के संतों का एक मठ है, जो श्वेत वस्त्र पहनते हैं तथा शिखासूत्रधारी होते हैं। हठयोगियों के लिये यह उपयुक्त स्थान है, जहाँ शरीर और मन को अनुशासित किया जाता है।

संवत् १९३६ में बिहार प्रान्त के भागलपुर जिले के शाहपुर–निवासी ठाकुर प्रसाद ने इसका जीर्णोद्धार कराया और बाद में साधु होने पर यहाँ रहे भी। हंसतीर्थ में रहकर यौगिक प्रक्रियाओं की साधना करने का विशेष महत्व है। वर्तमान समय में हंसकूप पर पुरातत्व विभाग की नज़र है।

समुद्रकूप

हंसकूप के दक्षिण की ओर निकट ही एक और कुआँ है, जिसका नाम समुद्र कूप है। लोगों का विश्वास है कि यह कूप गुप्त नरेश समुद्र गुप्त ने बनवाया था, इसलिये इसका नाम समुद्रकूप है। यद्यपि अधिकांश लोग यह मानते हैं कि इसका सम्बन्ध समुद्र से है। यह बहुत गहरा कुआँ है। मत्स्यपुराण में इसका वर्णन मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि इसका सम्बन्ध समुद्र से है, इसलिये कभी ऐसा होगा कि सागर का जल इसी के ऊपर से निकलकर पृथ्वी को जलमग्न कर देगा।

लगभग ६० वर्ष पूर्व सुदर्शन बाबा नाम के एक वैष्णव सन्त यहाँ आये थे और उन्होंने इसी के पास मंदिर तथा गुफाएँ बनवायीं। यहाँ बनी गुफाओं की सीढ़ियों से उतरकर गंगा–स्नान किया जा सकता है। समुद्रकूप के पास देवालय भी है। यहाँ कार्तिक के महीने में मेला लगता है तथा कूप के दर्शनार्थियों की भीड़ भी उमड़ती है।

गंगोली का शिवाला

शहरी चमक–दमक से दूर झूँसी के उत्तरी भाग में एकान्त में स्थित यह देव मंदिर गंगोली का शिवाला कहलाता है। सन् १८०० में निर्मित इस मंदिर की स्थिति प्रयाग के ईशान कोण पर है, जिसकी विशेष महत्ता समझी जाती है। पद्मपुराण के अनुसार प्रयाग के ईशान कोण में बहुत से देवताओं और आश्रमों की स्थिति है। इसे तपक्षेत्र भी कहा गया है।

कहते हैं–यह शिवाला आगरा निवासी गंगा प्रसाद तिवारी ने बनवाया था, जो झूँसी में कोई बड़ा व्यापार करते थे। मंदिर निर्माण के पश्चात् इसमें स्थित देवताओं की पूजा के लिये पुजारी रखा गया था। मंदिर में शिवलिंग के अलावा चारों ओर देवी देवताओं की बहुत सी प्रतिमाएँ हैं। यह शिवाला एकदम एकान्त में बना है। पुजारी यहाँ नित्य पूजा करने आता है।

परमानन्द आश्रम

तीर्थराज प्रयाग में गंगा के पावन पूर्वी तट पर अवस्थित प्रतिष्ठानपुरी (झूँसी) में श्री "परमानन्द आश्रम" अति प्राचीन है। यह प्रयाग नगर का तात्विक आश्रम आज भी अपनी गरिमा बनाए रखे हुये है और भक्तजनों का मार्गदर्शन तथा कल्याण कर रहा है। यह मूलरूप से एक संन्यासी आश्रम है, जिसकी स्थापना तत्ववेत्ता गंगेश्वरानन्द जी ने १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में की थी।

प्राचीनकाल में प्रयाग में तीन प्रसिद्ध महात्मा प्रतिष्ठानपुरी में थे। श्री परमानन्द आश्रम के मूल अधिष्ठाता श्री गंगेश्वरानन्द जी उनमें से एक थे।

इस आश्रम में स्वामी श्री गंगेश्वरानन्द महाराज की स्मृति में श्री गंगेश्वर संस्कृत वेद विद्यालय की स्थापना स्वामी नरोत्तमानन्द गिरि ने १९७८ ई० में की। इसमें विद्यार्थी वेद, भक्ति, ज्ञानकर्म विषयक कथा सत्संग, स्वाध्याय में संलग्न हैं। यह विद्यालय डा० सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। यहाँ विद्यार्थियों के आवास, भोजन तथा शिक्षक की निःशुल्क व्यवस्था की जाती है। स्वामी परमानन्द महाराज एक सिद्ध महात्मा थे।

श्री परमानन्द आश्रम के मूल प्रतिष्ठापक स्वामी श्री गंगेश्वरानन्द जी हैं, जबकि उनके परमप्रिय शिष्य स्वामी परमानन्द जी ने इस गद्दी का विकास किया था। इस गद्दी की स्थापना १८५० ई० के आसपास श्री परमानन्द जी ने की थी। वहाँ उनके गुरु जी कुटिया बना कर रहा करते थे।

परमानन्द आश्रम की श्री महन्त परम्परा को स्वामी नरोत्तमानन्द जी ने सँभाला, जिनके कार्यकाल में इस आश्रम का चतुर्दिक विकास हुआ। स्वामी जी ने श्री गंगेश्वरवेद विद्यालय, श्री संकष्टहर माधव मंदिर का निर्माण तथा उसमें शिवलिंग की प्राण प्रतिष्ठा की और साथ ही साथ शक्ति देवी माँ दुर्गा व संकष्टहर माधव के मंदिर की स्थापना श्वेत संगमरमरों से की। ये सभी आश्रमों की सुषमा को और भी बढ़ाते हैं।

आश्रम के प्रांगण में ही श्री नारायण की शंख, पद्म, गदा युक्त दिव्य प्रतिमा स्थापित है। साथ ही संकष्टहर मंदिर में श्री माधव के १२ रूपों में श्री लक्ष्मी नारायण की मूर्तियाँ स्थापित हैं। इन मूर्तियों की पूजा–अर्चना नित्यप्रति शास्त्रोक्त ढंग से की जाती है। मंदिर में शान्ति महसूस होती है। पार्श्व में ही प्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा संस्थापित संकीर्तन भवन में भी श्री संकष्टहर भगवान का एक मंदिर है, जिसमें श्री राधाकृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित हैं।

स्वामी नरोत्तमदास जी अनवरत २० वर्षों तक पूरे देश में भ्रमण करते–करते प्रयाग पहुँचे। यहाँ आपका मन रम गया तथा यहीं आपने १८ पुराणों का गहन अध्ययन–मनन किया। मत्स्य पुराण के पाठ के समय श्री वेणीमाधव के संकष्टहर रूप की स्थापना हेतु श्री परमानन्द आश्रम आपको उपयुक्त व श्रेष्ठ लगा और आप ही के सहयोग से लक्ष्मीनारायण की मूर्ति की स्थापना हुई।

श्री परमानन्द आश्रम में आज भी नित्यप्रति वेद, पुराण तथा शास्त्रों का स्वाध्याय व प्रवचन श्रद्धा व विश्वास के साथ होता रहता है। तीर्थराज प्रयाग का यह प्राचीन आश्रम आज भी लाखों श्रद्धालुओं, भक्तगणों तथा तीर्थयात्रियों का कल्याण व मार्गदर्शन कर रहा है।

प्रयाग योग-अनुसंधान संस्थान

योग विज्ञान के आधुनिक और प्रासंगिक रुप की शिक्षा बहुत कम योग संस्थानों में दी जाती है। नई झूँसी स्थित प्रयाग योग–अनुसंधान संस्थान यहाँ का एक मात्र संस्थान है, जिसमें योग के विविध विषयों की वर्तमान प्रासंगिकता की विशद् व्याख्या की जाती है। संस्थान के संस्थापक एवं निदेशक योगी सत्यम् आधुनिक विज्ञान के मर्मज्ञ और प्राचीन भारतीय ऋषियों के द्वारा बताये गये योग–शास्त्र के ज्ञाता हैं। योग की प्राचीनतम, क्लिष्ट और गुप्त विद्या को आधुनिकतम वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत करके सर्वसाधारण तक पहुँचाने में ये विशेष पारंगत हैं।

प्रयाग में इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार मिट्टी, पानी, धूप, हवा, सूरज व गरमी की सहायता से उपचार करते हुए भोजन के प्राकृतिक व नियन्त्रित नियमावली से आपने मरीजों का इलाज करना शुरू किया। आशातीत सफलता मिलने के बावजूद कालान्तर में उन्होंने महसूस किया कि मानव को जिस स्वास्थ्य की आवश्यकता है, वह इस विधि से नहीं प्राप्त हो सकता।

उन्होंने अनुभव किया कि मानव शरीर को संचालित करने में इन स्थूल तत्वों का अंश–मात्र ही सहयोग है तथा सूक्ष्म शक्तियों से निर्मित ईश्वर की यह सर्वश्रेष्ठ कृति मानव स्वयं को उसी सूक्ष्म व असीम शक्ति से युक्त होने पर ही पूर्ण स्वस्थ्य रख सकता है। हमारी संरचना स्थूल तत्वों से भी हुई है, इसलिये उनका मानना है कि एक सीमा तक तो अपने को स्वस्थ रखने के लिए स्थूल साधनों का सहारा ले सकते हैं; परन्तु स्थूलता का भी कारण सूक्ष्म जगत ही है, इसलिये पूर्ण स्वस्थ होने का एक मात्र तरीका सूक्ष्म शक्ति के असीम भण्डार से जुड़ना ही है और इस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक ही मार्ग, योग--मार्ग है।

गुरु–शिष्य की परम्परा को स्थापित करते हुए, उन्होंने एक ऐसे 'क्रिया योगी, जो 'उन्नीसवीं सदी में ही अपना शरीर छोड़ चुके थे, श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय को अपने को शिष्य के रूप में समर्पित किया। इसके बाद ईश्वर तादात्म्य की शाश्वत् अनुभूति होते ही उन्होंने योग की अनेक वैज्ञानिक विधाओं को जन्म दिया तथा प्राचीन क्रियाओं को अपने अनुसार परिमार्जित करके मानव के लिये सहज एवं पूर्ण उपयोगी बनाया।

योग की इन क्रियाओं को जन–जन तक पहुँचाने के लक्ष्य से उन्होंने १९८३ में एक रजिस्टर्ड सोसायटी 'प्रयाग स्वास्थ्य सेवा समिति' का गठन किया और इसके अन्तर्गत एक ऐसे संस्थान की कल्पना की, जो चिकित्सा की हर विधाओं, एलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेदिक, शल्य चिकित्सा व नेचुरोपैथी की सभी सुविधाओं से सुसज्जित होते हुए, योग चिकित्सा के समस्त आयामों से विभूषित हो। योगी जी ने १९९२ में संस्थान की भूमि पर मुख्य केन्द्र की नींव डाली।

इस कार्य हेतु बिना किसी धन व हिचकिचाहट के प्रयाग नगर में ही किराये का मकान लेकर अपना प्रयोग शुरू किया और जून १९८५ में प्रयाग योग अनुसंधान संस्थान की विधिवत् स्थापना की। इतने बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपार धन की आवश्यकता और धन आगमन का कोई स्रोत न होते हुए भी इस महान

योगी ने आजीवन किसी भी चल या अचल सम्पत्ति को व्यक्तिगत अपने नाम न रखने व अपरिग्रह व्रत, जैसे कठोर–संकल्प को धारण कर लिया। अपनी क्रियाविधि के शक्तिशाली प्रभाव के कारण वे शीघ्र ही शासन, प्रशासन प्राध्यापक, शिक्षक, इन्जीनियर, डाक्टर, व्यवसायी, विद्यार्थी, कलाकार व आम जनता सभी के, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य के रक्षक के रूप में स्थापित हो गये। जो भी उनके सम्पर्क में आता है, वह ऐसा महसूस करता है, जैसे कि जन्मों–जन्मों से जुड़ा हुआ रिश्ता पुनः इस जीवन में साकार हो उठा हो।

जीवन के हर क्षेत्र में योग की अनिवार्यता की इस आवश्यकता को शासन व प्रशासन ने भी महसूस किया और अल्प सेवाकाल में ही तत्कालीन जिलाधिकारी व शासन के सहयोग से झूँसी में गंगा तट पर करीब डेढ़ एकड़ के दो भूखण्ड उपलब्ध हो गये।

सभी की गृहस्थी को शान्ति, आनन्द व शक्ति के प्रकाश से भर देने वाले इस गृहस्थ योगी ने १९९२ में मात्र अल्प पैसों से संस्थान की जमीन पर मुख्य केन्द्र की नींव डाली। इस काम में भी स्थानीय लोगों के अनेक विवादों को झेलते हुए जल्दी ही वे लोकप्रिय हो गये। अब वहाँ पर एक साधना हाल, कुछ रहने के कमरे, शौचालय व स्नानागार के साथ तैयार हैं। दूसरा भूखण्ड गंगा के किनारे विशाल हंस वट वृक्ष से सुशोभित है। इस भूखण्ड पर देश–विदेश से आने वाले जिज्ञासुओं के ठहरने के लिये भवन, प्रिंटिंग प्रेस, सामूहिक किचेन व रिकार्डिंग स्टूडियो आदि के निर्माण की योजना है।

योगी जी की अनन्त योजनाओं में से जीवन के हर क्षेत्र–चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक कुछ भी हो, को योगमय करते हुए मानव मात्र को स्वानुभूति के पवित्र उद्देश्य तक पहुँचाना है। इसी उद्देश्य के लिए झूँसी स्थित अनुसन्धान संस्थान में सुबह–शाम योग की निःशुल्क कक्षाएँ चलायी जाती हैं तथा आवश्यकतानुसार मरीजों को भर्ती भी किया जाता है। इस छोटी सी अवधि में हजारों–हजारों लोग बिना किसी औषधि के मधुमेह, गठिया, दमा, मानसिक बीमारियों, हृदय रोग, त्वचा रोग, उच्च रक्त चाप, मूत्र रोग और यहाँ तक कि लाइलाज ब्लड–कैन्सर जैसे भयानक रोगों से सदा–सदा के लिए मुक्त होकर अध्यात्म साधना में रमने लगे हैं। संस्था की मुख्य क्रियाविधियाँ, जो अभी तक किसी संस्थान व पुस्तक में उपलब्ध नहीं हैं, अपने आप में बिल्कुल निराली है। ये क्रियाविधियाँ, जैसे–रिचार्जिंग, श्वास साधना, प्रवण मन्त्र साधना व सर्वश्रेष्ठ क्रियाविधि प्राणकर्म विशुद्ध वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत की गयी हैं।

संस्थान सभी धर्मों का समान आदर करते हुए अपनी प्रार्थनाओं में सभी की वंदना करता है तथा अमीर–गरीब, जाति–पाति के बन्धन से मुक्त सभी को समय–समय पर एक पंक्ति में बैठाकर विशाल भोज का आयोजन करता है। आम आदमी से वह बहुत ही करीब से जुड़ा हुआ है।

श्री योगानन्द आश्रम

तीर्थराज प्रयाग के पावन सलिला गंगा के पूर्वी तट पर पूर्वोत्तर रेलवे के पुल नम्बर ६६ के उत्तरी भाग के समीप (झूँसी) में श्री योगानन्द आश्रम अवस्थित है। प्रयाग के सिद्ध स्थलों में इस मठ का भी अपना एक

गौरवपूर्ण इतिहास है, जिसकी स्थापना स्वामी माधवानन्द जी ने १८५० ई० के लगभग की थी।

वर्तमान समय में अनेकानेक मठ आश्रम भवन तथा मंदिर बन गये हैं, परन्तु जिस समय स्वामी जी ने इस आश्रम की स्थापना की, उस समय यह निर्जन व एकांत स्थल था। प्रतिवर्ष कुम्भ, अर्ध कुम्भ तथा महाकुम्भ के अवसर पर देश-विदेश के कोने–कोने से श्रद्धालुओं तथा भक्तजनों की शरणस्थली के रूप में इस आश्रम का अपना अलग ही महत्व है।

इस आश्रम में स्वामी करपात्री जी और संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने अपने जीवन का आरंभिक दौर गुजारा था। देश के अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों, राजनीतिज्ञों, योगियों, संन्यासियों का सम्बन्ध इस आश्रम से था। नेहरू जी के परिवार को योग की शिक्षा इसी आश्रम के योगी-संन्यासी देते थे। इस प्रकार इस देश की महान विभूतियों से लेकर सामान्य जनों के लिए इस आश्रम का एक विशेष महत्व है।

जिस प्रकार तीर्थराज प्रयाग में गंगा, यमुना तथा अदृश्य सरस्वती का पावन संगम है, उसी प्रकार आदि शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित दशनामी संन्यासियों की त्रिधारा गुरु परम्परा, इस आश्रम को अभिसिंचित करती है।

इस आश्रम की आध्यात्मिक धारा के प्रथम प्रवाह का श्रेय इसके संस्थापक स्वामी माधवानन्द जी को जाता है। उन्हीं के शिष्य योगानन्द जी के कार्यकाल में इस आश्रम का चतुर्दिक विकास हुआ। इसी कारण इस आश्रम का नाम योगानन्द आश्रम पड़ा। स्वामी योगानन्द जी उत्तरकाशी स्थित श्री कोटेश्वर महादेव आश्रम के संस्थापक श्री गिरीशचन्द्र के शिष्य थे। माधवानन्द जी के विशेष आग्रह पर स्वामी गिरीश चन्द्र ने योगानन्द जी को उन्हें सौंपा था। इसी शृंखला में तीसरी आध्यात्मिक भक्तिधारा में भड़ौंच के श्री शिवानन्द जी का नाम आता है और स्वयं स्वामी योगानन्द महाराज जी ने शिवानन्द जी के शिष्य को, जिनका नाम श्री कृष्णानन्द था, अपने पास बुला लिया था। १९६८ ई० के करीब श्री कृष्णानन्द जी ब्रह्मलीन हुए थे। आज भी गुरु–शिष्य–परम्परा इस आश्रम का गौरव है तथा वर्तमान में भी अपनी प्राचीनता को धारण किये हुए है।

इस आश्रम में "श्री तीर्थराज संन्यासी संस्कृत पाठशाला" की स्थापना सन् १९१४ ई० में स्वामी योगानन्द महाराज ने की थी। श्री लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी इसके प्रथम प्रधानाध्यापक थे। आश्रम की तरफ से सभी विद्यार्थियों को निःशुल्क भोजन की व्यवस्था की जाती है। यह पाठशाला संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है।

यह आश्रम न केवल विद्यार्थियों के लिये, अपितु साधु–संन्यासियों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र है। इस आश्रम के उत्तर तरफ एक पक्का बड़ा आश्रम 'दंडी साधुओं' के लिए बना है, जिसे सन् १९३३ ई० में मैनपुरी के रहने वाले हीरालाल चौबे ने बनवाया था। चौबे जी उस समय रेलवे में स्टेशन मास्टर के पद पर कार्यरत थे तथा सेवा से अवकाश के पश्चात् यहीं वानप्रस्थ जीवन व्यतीत किया। वर्तमान समय में दंडी साधुओं का यह आश्रम अपने प्राचीन गौरव को बनाए हुए है।

श्री योगानन्द आश्रम में ही श्री माधवानन्दजी द्वारा प्रतिष्ठापित श्री माधवेश्वर महादेव का मंदिर है। आश्रम में कई देवी देवताओं की प्रतिमायें हैं, जिनमें श्री लक्ष्मीनारायण, श्री गणेशजी, श्री हनुमान जी, चंडिका देवी का नाम उल्लेखनीय है।

स्वामी ब्रह्मानंद परमार्थ आश्रम

समुद्र कूप के उत्तर में प्रदेश तट पर स्वामी ब्रह्मानंद परमार्थ आश्रम अवस्थित है। सन् १६८८ में निर्मित इस आश्रम के संस्थापक स्वामी हरि चैतन्य ब्रह्मचारी जी हैं। स्वामी जी का मुख्य आश्रम टीकर माफी, अमेठी, सुल्तानपुर में है, लेकिन उनकी सदिच्छा थी कि प्रयाग में भी आश्रम होना चाहिए और वह सदिच्छा इस आश्रम के साथ ही पूरी हो गयी।

प्रारम्भ में स्वामी हरिचैतन्य जी माघ मेले के अवसर पर प्रतिवर्ष प्रयाग आते थे। वे प्रयाग नगर के त्रिपौलिया मुहल्ले में श्री द्विजराज पाठक के यहाँ ठहरते थे। मेले के दौरान शिविर लगाने के लिए भारी मात्रा में सामान आता था, जिसे ले जाने और ले आने में बड़ी कठिनाई का अनुभव होता था। स्वामी जी ने विचार बनाया कि यदि यहाँ आश्रम हो जाये तो इससे उत्तम कुछ नहीं। फिर आश्रम के लिये उपयुक्त भूमि की तलाश शुरू हुई और प्रतिष्ठानपुरी (झूँसी) में तीन एकड़ भूमि मिल गयी, जहाँ आज आश्रम है।

आश्रम के निर्माण में श्री द्विजराज पाठक ने मदद की और श्री राजा बाबू के सहयोग से १७ कमरों का निर्माण कराया गया। इसके पश्चात् ऊपरी तल में बड़ा हाल बना।

झूँसी निवासी तीर्थ पुरोहित श्री केदार नाथ, श्रीनाथ, गंगानाथ आदि ने आश्रम को अपनी भूमि सहर्ष दान कर दी थी। इस स्थान के बारे में यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि पहले यहाँ गुफा थी, जिसमें आचारी जी नाम के एक तपस्वी संत रहते थे। सन् १६७० के पहले यहीं पर नाथ संप्रदाय के बाबा ज्ञानदेव जी रहते थे, जो नाथ बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे। नाथ बाबा का शरीर शांत हो जाने के बाद काफी समय तक यह स्थान खाली रहा, जिससे यह रमणीक आश्रम बन गया।

आश्रम बनने से पूर्व पुरानी झूँसी गाँव बहुत पिछड़ा था। शहर का नजदीकी गाँव होने के बावजूद यहाँ न तो बिजली थी, न जल की सुविधा थी और न ही सड़क। आश्रम बनते ही स्वामी हरि चैतन्य ब्रह्मचारी जी के सद्प्रयास से ये सारे कार्य धीरे–धीरे पूरे हो गये। इतना ही नहीं, पूरे गाँव में निःशुल्क विद्युत व्यवस्था की गयी। गाँव वाले स्वामी जी को विशेष आदर की दृष्टि से देखने गये। इस समय आश्रम में शंकर जी का एक मंदिर तथा गौशाला है। अनाथ बच्चों के अध्ययन के लिए ब्रह्मानंद विद्या निकेतन भी चल रहा है। इसी आश्रम के सामने सड़क के उस पार सालिक राम तिवारी का गंगोत्री आश्रम भी निर्माणाधीन है।

महर्षि सदाफल देव आश्रम

प्रयाग विविध प्रकार की स्थापनाओं का केन्द्र रहा है। संतजन यहाँ अपने आश्रम स्थापित कर स्वयं तो गौरवान्वित हुए ही, प्रयाग की धरती को भी गौरवान्वित किया। छतनाग में शंखमाधव मंदिर के पास गंगातट पर स्थित महर्षि सदाफल देव आश्रम एक ऐसा ही केन्द्र है, जहाँ विहंगम योग की गहन शिक्षा दी जाती है।

अखिल भारतीय विहंगम योग संस्थान के तत्वावधान में स्थापित इस आश्रम का निर्माण सन् १९९०

में प्रारंभ हुआ, जिसका बहुत–सा भाग तो बन चुका है, किन्तु पाँच तलों के महामंदिर का निर्माण अब भी जारी है।

विहंगम योग संस्थान के संस्थापक सदाफल देव जी थे, जो मूलतः उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद स्थित पकड़ी गाँव के निवासी थे। सदाफल देव जी का कुल ही योगियों का था। उन्होंने १७ वर्षों तक हिमालय में गहन तपस्या की, तत्पश्चात् पकड़ी बलिया में वृत्तिकूट आश्रम की स्थापना की और सारे देश का भ्रमण कर विहंगम योग का प्रचार किया। वे प्रयाग के निकट छतनाग में कई वर्षों तक रहे और उसी क्षेत्र में आश्रम स्थापित किया, जहाँ महर्षि सदाफल देव जी की तपोभूमि थी।

जिज्ञासु जनों के मन में स्वतः एक भावना आती है कि आखिर विहंगम योग क्या है। विहंगम योग के अभ्यंतर साधन की पाँच भूमियों का संकेत वेदों तथा सन्त–वाणियों में मिलता है। इन पाँच भूमियों में तीन का साधन तो प्रकृति–मण्डल के अन्तर्गत होता है, किन्तु दो का सम्बन्ध चेतना मण्डल से है। इसके लिये साधक अपनी साधना वहीं से प्रारंभ कर सकता है, जहाँ उसकी चेतना लगी है। यह आत्मचेतना मन के माध्यम से इन्द्रियों से युक्त होकर संसार में बिखरी रहती है, जिसे समेट कर केन्द्रित करना होता है। यह वही स्थान है, जहाँ मन के स्थिर हो जाने पर आत्मचेतना का वाह्य जगत में बिखराव रुक जाता है। यही विहंगम योग की प्रथम भूमि की साधना होती है। जब साधना करने वाला इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तब उसकी आन्तरिक यात्रा प्रारंभ होती है। उसे दूसरी भूमि की साधना कहा गया है। दूसरी भूमि की साधना करने पर मन शुद्ध होने लगता है और वह अन्दर के शब्द, प्रकाश तथा आनंद को ग्रहण करने लगता है। यहीं 'ॐ' का प्राकट्य होता है तथा चेतना अन्तर्मुखी हो जाती है। इसके अभ्यास से हठयोग, मंत्रयोग और राजयोग आदि की उपलब्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं।

महर्षि सदाफल देव जी ने सारे भारत में भ्रमण करके विहंगम योग का प्रचार किया। यद्यपि वे बहुत कम पढ़े लिखे थे, किन्तु आत्मज्ञान के बल पर उन्होंने ३५ से अधिक आध्यात्मिक ग्रंथों की रचना की। "स्वर्वेद" उनकी मौलिक कृति है। महर्षि सदाफल देव जी ने कबीर के बीजक का बहुत अच्छा भाष्य लिखा। उन्होंने 'अ' अक्षर को सार्वकालिक ध्वनि बताया और अपने आश्रमों की ध्वजाओं पर इसे अंकित कराया। वे 'ॐ' में 'अ' को भी निहित मानते थे।

विहंगम योग संस्थान के पाँच बड़े–बड़े आश्रम हैं। ये हैं–वृत्तिकूट आश्रम, पकड़ी (बलिया), दणुकवन आश्रम, बाँसदा (गुजरात), शून्य शिखर आश्रम, पौड़ी–गढ़वाल, मधुमती आश्रम, गया (बिहार) तथा महर्षि सदाफल देव आश्रम, छतनाग झूँसी, प्रयाग (उ.प्र.)।

महर्षि सदाफल देव के सुपुत्र आचार्य स्वतंत्रदेव जी की देखरेख में छतनाग पर बने आश्रम में प्रतिवर्ष अगहन (मार्गशीर्ष) शुक्लपंचमी को अखिल भारतीय विहंगम योग संत सम्मेलन होता है, जिसमें देश के विभिन्न भागों से लाखों की संख्या में श्रद्धालु नर–नारी एकत्र होकर आचार्य के उपदेश ग्रहण करते हैं तथा विहंगम योग–साधना सीखते हैं। सारे लोग बड़ी श्रद्धा से तीन दिन तक आश्रम में निवास करते हैं।

वर्तमान में आश्रम में आचार्य निवास, २६ कक्षों का संत निवास, गौशाला के अलावा प्रिंटिंग प्रेस भी है, जहाँ से "सहजयोग संदेश" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया गया है। आश्रम में विहंगम योग

साधना की जानकारी प्राप्त करने हेतु अब तक अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, नार्वे, थाइलैण्ड, ग्रीक, इटली आदि देशों के पर्यटक भी आ चुके हैं।

पाण्डुकेश्वर नाथ (पँड़िला महादेव)

प्रयाग से लगभग १५ किलोमीटर उत्तर दिशा की ओर फाफामऊ से वाराणसी की ओर जाने वाले राजमार्ग पर स्थित हवाई पट्टी के निकट से पड़िला महादेव जाने का मार्ग है। पुराणवर्णित यह पंचपाण्डव तीर्थ पंचक्रोशी परिक्रमा क्षेत्र के अन्तर्गत वहिर्वेदी का पावन स्थल है। इसी के निकट पांडवकूप भी है। इन दोनों का विशेष महत्व है और इनके दर्शनार्थियों की भारी भीड़ उमड़ती है।

पद्मपुराण के पातालखण्ड के अध्याय ८४ में तीर्थवर्णन के क्रम में पाण्डव तीर्थ का प्रसंग आता है–

तदुत्तरे परंतीर्थं पाण्डवैर्यदधिष्ठितं।
पंचानां सुखदं यस्मात्तस्मात्पंच पाण्डवं।।
स्नानात्वा पांडव कूपे ये संस्थिता पाण्डवैः सह।
गोविन्दंस्मरणं भक्त्या कुर्वन्त्येतेच्युतप्रियाः।।
स्नानदानादिकं यत्र यत्किंचिदपि कुर्वते।
पूजनं पाण्डवानांच तत्तेषामक्षयं भवेत्।।

'तदुत्तरे' शब्द का संबोधन संगम के लिये आया है। अर्थात्–संगम के उत्तर क्षेत्र में एक श्रेष्ठ तीर्थ है, जहाँ पंच पाण्डवों ने अपना सुखद आश्रम स्थापित किया था। इसी के पास स्थित पाण्डव कूप में स्नान करके भक्तिपूर्वक जो गोविन्द का स्मरण करता है तथा कुछ दान करता है, उसे अक्षय फल की प्राप्ति होती है।

इस तीर्थ में पाण्डुकेश्वरनाथ का मंदिर है। ऐसा कहा जाता है कि इस मंदिर के भीतर शिवलिंग की स्थापना पाण्डवों ने की थी। मंदिर के दक्षिण की ओर एक कूप है, जिसका जल स्वादिष्ट है। मंदिर प्रांगण में ही पार्वती मंदिर, हनुमान मंदिर तथा भैरव और व्यास की मूर्तियाँ भी हैं। कहते हैं–यह मनोहर माधव का स्थान है। जब पाण्डवों ने इसे अपना निवास स्थान बनाया और पूजा अर्चना करने लगे तो तो इसका नाम पाण्डुकेश्वर नाथ या पँड़िला महादेव पड गया।

इसी मंदिर के पास बैजू का भी मंदिर है, जिसके बारे में क्षेत्रीय लोगों की एक उक्ति प्रचलित है–'पहिले बैजू, पीछे नाथ'। तात्पर्य यह है कि सर्वप्रथम बैजू बाबा की पूजा होनी चाहिये, तब पँड़िला महादेव की। एक दंत–कथा के अनुसार बैजू नाम का एक व्यक्ति था जो प्रतिदिन भोजन से पूर्व महादेव को पाँच डंडे मारा करता था। यह क्रम वह लगातार कई वर्षों तक करता रहा, किन्तु एक दिन वह डंडा मारना भूल गया और भोजन करने लगा। उसे अचानक याद आया कि अभी उसने डंडा नहीं मारा तो भोजन छोड़कर वह महादेव को डंडा मारने चला गया। जैसे ही वह मंदिर पहुँचा, भगवान शिव प्रकट हो गये और बोले–'बैजू, तुम आज जो चाहो वरदान माँग लो।' इस पर बैजू ने कहा–'आप यही वरदान दीजिये कि जो आपकी पूजा करने

आयें, वे पहले मुझे जल चढ़ायें, तब आपको।' शिवजी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये और तब से यहाँ पहले बैजू को जल चढ़ाने की परम्परा कायम हो गयी।

मंदिर बहुत प्राचीन है। इसकी व्यवस्था और शिवजी के पूजन हेतु आनापुर राजघराना जिम्मेदारी का निर्वहन कर रहा था। कालान्तर में राज व्यवस्था समाप्त होने पर श्रीनाथ व्यास जी सारा काम देखते रहे हैं।

मंदिर में सावन के महीने में दर्शनार्थियों की भारी भीड़ उमड़ती है। महाशिवरात्रि को जल चढ़ाने वालों का इतना रेला रहता है कि यहाँ कुछ सुनायी नहीं पड़ता। सामान्य दिनों में प्रत्येक प्रदोष, सोमवार पूर्णिमा और अमावस्या को यहाँ मेला लगता है। यहाँ जाने के लिये वर्तमान समय में पर्याप्त साधन उपलब्ध है।

शृंगवेरपुर

प्रयाग नगर से ३५ किलोमीटर पूर्व की ओर गंगातट पर शृंगवेरपुर स्थित है। इस स्थान का पौराणिक महत्व है। महर्षि कश्यप के पुत्र ऋषि विभाण्डक के पुत्र के रूप में जन्मे शृंगी ऋषि के नाम पर इस स्थान का नाम शृंगवेरपुर पड़ा। शृंगी ऋषि महान तेजस्वी और तपस्वी महात्मा थे। वाल्मीकि कृत रामायण में एक कथा आती है कि अयोध्या के महाराजा दशरथ के एक पुत्री थी, जिसका नाम शांता था। अंग देश के राजा रोमपाद और राजा दशरथ एक बार किसी तीर्थ स्थान पर गये थे। चूँकि राजा रोमपाद के कोई सन्तान नहीं थी, जिससे वे अत्यंत दुखी थे। अपने दुःख का कारण जब उन्होंने महाराजा दशरथ और रानी कौशल्या से बताया तो दोनों ने उन्हें अपनी पुत्री शांता दानस्वरूप दे दी। राजा रोमपाद ने उस दत्तक पुत्री को भली भाँति पाला। एक बार किसी असावधानी से अनावृष्टि हो गयी। राजा ने विद्वानों को बुलाकर पूछा कि इसका क्या उपाय है ? विद्वानों ने बताया कि यदि ऋषि शृंगी यहाँ पर आ जायँ तो वर्षा हो सकती है। राजा रोमपाद ने यह उपाय करने की आज्ञा दी, तथा इसका समाधान कैसे हो, यह प्रयत्न किया जाने लगा, क्योंकि विभाण्डक के भय से वहाँ कोई मंत्री या अन्य राज्यकर्मी जाने को तैयार न थे। इसलिए वहाँ रूपवती गणिकायें भेजी गयीं। वे कई दिनों तक आश्रम के आसपास रुककर शृंगी के दर्शन करने की चेष्टा करने लगीं। एक दिन शृंगी ने उन्हें देख लिया और उनको अपने आश्रम में बुला लिया, लेकिन वे ऋषि के भय से वहाँ से जाना चाहती थीं। कुछ मिष्ठान्न खिलाकर शृंगी को अपने साथ ले गयीं। कुछ दिन के बाद उन्होंने अपने स्नेह में शृंगी को जकड़ लिया और अपने साथ अंग देश ले गयीं। ऋषि कुमार शृंगी के अंग देश पहुँचते ही वर्षा हुयी। राजा रोमपाद इतना तेजस्वी ऋषि कुमार देखकर उन पर मोहित हो गये और इसी बीच ऋषि विभाण्डक भी अपने पुत्र की खोज करते हुये वहाँ पहुँचे। राजा रोमपाद ने ऋषि प्रवर का स्वागत किया और अपना प्रस्ताव बताते हुये अपनी पुत्री शांता का विवाह शृंगी के साथ कर दिया तथा शृंगी के साथ अपने आश्रम आ गये।

शृंगी बहुत ही प्रतापी थे। उनकी तपस्या की ख्याति दूर–दूर तक फैली थी। राजा दशरथ को कोई संतान नहीं थी। कुलगुरु ने शृंगी ऋषि के द्वारा पुत्रकाम यज्ञ कराया, तब जाकर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न पैदा हुये। *रामचरित मानस* में गोस्वामी जी ने लिखा है–

सिंगी रिसिहिं बसिस्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा।।

शृंगवेरपुर का महत्व तब और बढ़ गया, जब श्री राम वनगमन के समय लक्ष्मण और सीता के सहित यहाँ आये–

सीता लखन सहित दोउ भाई। सिंगवेरपुर पहुँचे जाई।।

इसके बाद यहीं पर निषादराज गुह से उनकी भेंट हुई और गंगापार करने जाने के लिये उससे नाव माँगी तो निषादराज ने कहा कि वह बिना चरण धोये अपनी नाव पर उन्हें नहीं बैठने देगा। उसे शंका थी कि कहीं उसकी नाव भी स्त्री न बन जाये, क्योंकि अहल्या, जो शापवश पत्थर बन गयी थी, राम के चरण स्पर्श से पुनः स्त्री बन गयी थी। *रामचरित मानस* में शृंगवेरपुर का प्रसंग आता है–

माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना।।
चरण कमल रज कहुँ सब कहई। मानुस करनि मूरि कछु अहई।।
तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई।।
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू।।

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोंहि राम राउर आनि दशरथ सपथ सब साँची कहौं।
बरु तीर मारहिं लखन पै जब लगि न पाँय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं।।

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन चितइ जानकी लखन तन।।

कृपा सिंधु बोले मुसकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई।।

इस प्रकार केवट ने श्रीराम के चरण धोये, फिर पार उतारा। इसके अतिरिक्त श्रीराम के प्रायः सभी परिजनों व अयोध्यावासियों के शृंगवेरपुर आने की कथा पायी जाती है। अयोध्या से लौटते समय श्रीराम के निर्देश पर जानकी जी ने यहीं पर गंगा की पूजा की थी और प्रसन्न होकर गंगा ने उन्हें अखंड सौभाग्यशाली होने का आशीष दिया था–

तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी।
दीन्ह असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा।।

इस कारण यह स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। शृंगवेरपुर में गंगा के पाँच घाट हैं। गऊघाट, मौनी घाट, शृंगवेरपुर घाट, रामचौरा घाट और कुरई घाट। यहाँ पर लगभग सभी संत महात्मा पधार चुके हैं। महाभारत के वन पर्व में वर्णन है कि शृंगवेरपुर में गंगा स्नान करने वाला ब्रह्मचारी वाजपेय यज्ञ के समान पुण्य का भागी होता है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र का पर्याप्त विकास हो चुका है। इसके घाट पक्के कराये जा रहे हैं।

ईश्वर प्रेम आश्रम

नैनी के लेबर कालोनी क्षेत्र में सुबह–शाम भगवत् भजन की सुमधुर ध्वनियाँ सुनायी पड़ती है। ये सुमधुर ध्वनियाँ ईश्वर प्रेम आश्रम में ईश्वर–प्रेम में रचे–बसे श्रद्धालुओं की होती हैं। ईश्वर प्रेम मिशन द्वारा संचालित ईश्वर प्रेम आश्रम की स्थापना लगभग ३५ वर्ष पूर्व संत स्वरूप श्री जयशंकर वाजपेयी जी ने की, जो अब संत ईश्वर प्रेम के नाम से सुविख्यात हैं।

प्रेम, विश्वास और सेवा के तीन मूल सिद्धान्तों को लेकर स्थापित इस आश्रम के संस्थापक संत ईश्वरप्रेम जी ने उक्त तीन बातों की प्रेरणा भगवान भोलानाथ जी से प्राप्त की, जो 'डिवाइन लव सोसाइटी' के संस्थापक थे।

इसी बीच सन् १९५० में भगवान भोलानाथ प्रयाग आये, जो सिविल लाइंस में सरदार हरिभजन सिंह अरोरा के यहाँ ठहरे हुये थे और नित्य प्रति प्रवचन करते थे। महालेखाकार कार्यालय में जब श्री जयशंकर वाजपेयी जी को पता चला तो आध्यात्मिक कार्यों में अभिरुचि होने के कारण जिज्ञासा वश अपने को रोक न पाये तथा भगवान भोलानाथ जी से मिलने गये। प्रथम दर्शन में ही श्री वाजपेयी जी पर भोलानाथ जी का इतना प्रभाव पड़ा कि वे उनके शिष्य बन गये। फिर उन्होंने प्रेम, विश्वास और सेवा का जो मंत्र श्री भोलानाथ जी से प्राप्त किया, वह आगे चलकर एक सिद्धि के रूप में मुखर हुआ। सरकारी सेवा के दौरान ही श्री वाजपेयी जी के हृदय में संन्यास भाव रच–बस गया और वे संत ईश्वर प्रेम के नाम से पहँचाने जाने लगे।

संत ईश्वर प्रेम ने नैनी में एक आश्रम स्थापित किया। उनके संकल्प और संन्यास का प्रभाव उनकी धर्मपत्नी पर पड़ा तथा वे भी उसी भाव में आ गयीं। संत जी ने देश में भ्रमण करके ईश्वर के प्रति प्रेम, विश्वास और सेवा की धारा का प्रवाह जब अपने स्तर से प्रारंभ किया तो हजारों की संख्या में उनके अनुयायी हो गये। आश्रम स्थापित करने की बात जब उनके कुछ मित्रों ने भगवान भोलानाथ जी को बतायी तो वे मौन रहे। इसी समय संत ईश्वर प्रेम जी जब अपने गुरु के दर्शन हेतु पहुँचे तो लोगों ने उनसे प्रश्न किया कि आपने बिना गुरु की आज्ञा लिये आश्रम कैसे बना लिया, जबकि स्वयं गुरुदेव ने नहीं बनाया। भगवान भोलानाथ जी के सुपुत्र संत प्रियनाथ जी ने भी उनसे यही बात पूछी। संत ईश्वर प्रेम जी ने बिना विचलित हुये बड़ी शालीनता से उत्तर दिया कि मैंने आश्रम नहीं बनाया है। अपने गुरुदेव की स्मृति के रूप में एक स्मारक बनाया है। मेरी धारणा थी कि गुरु जी की स्मृति में कुछ किया जाना चाहिये। जितनी क्षमता थी, मैंने उतना किया। बाद में भगवान भोलानाथ जी ने भी उन्हें इस कार्य के लिये आशीर्वाद दिया।

ईश्वर प्रेम मिशन का लक्ष्य पूरे भारत वर्ष में धर्म का प्रचार करना है। इस कार्य में आश्रमों और केन्द्रों की स्थापना भी की गयी है, जिनमें जनसेवी श्रद्धालु भक्त तथा धर्मप्राण महिलायें ईश्वर प्रेम का प्रचार कर रही हैं। अभी आश्रम के केन्द्र बम्बई, कलकत्ता, इंदौर आदि महानगरों में हैं, जिनमें सन्तों के आध्यात्मिक प्रवचन, भजन, कीर्तन, साधना शिविर, गोष्ठियाँ आदि कार्यक्रम चलते रहते हैं।

श्री सच्चा आश्रम, अरैल

श्री सच्चा आश्रम की स्थापना सन् १६५३ में त्रिवेणी संगम के निकट की गयी। एक बार किसी कार्यवश संत श्री सच्चा बाबा अरैल आये थे और तभी उन्होंने एक कोठी देखी। यह कोठी रीवा जिले के नई गढ़ी के गोपालशरण सिंह की थी। बाबा ने मन में ही सोच लिया कि यह कोठी आश्रम बनाने के योग्य है और अंततः उनकी कल्पना साकार हुई। गंगा–यमुना के संगम के निकट यह स्थान अत्यंत रमणीय लगता है।

गोरक्षा के लिये पहले से ही कृतसंकल्प सच्चा बाबा ने आश्रम में पहले एक गाय पाली। धीरे–धीरे कई गायें हो गयीं, जिनकी सेवा बाबा स्वयं किया करते थे। उन्होंने गोरक्षा का जो आन्दोलन चलाया, वह अपने आप में अद्वितीय था। मधुमेह के रोगी होने के बाद भी उन्होंने कई बार अनशन किया। उनके मन में विचार आया कि संस्कृत शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु विद्यालय की स्थापना की जानी चाहिये और १६६० में वह भी कर दिखाया। इस कार्य में माँ शांति, स्वामी नवल जी, स्वामी गोपाल जी आदि ने भी सहयोग दिया।

श्री सच्चा बाबा द्वारा स्थापित संत संघ एक प्राचीन आध्यात्मिक संस्था है, जिसका मुख्य उद्देश्य समष्टिगत कल्याणकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना तथा स्वयं समेत सांसारिक मनुष्यों को ईश्वरोन्मुख बनाना है। संत संघ की ओर से महायज्ञों का आयोजन किया जा चुका है। संत संघ के प्रधान केन्द्र अरैल में पन्द्रह वर्षों तक अखण्ड हरिनाम कीर्तन भी चलता रहा है। भारतीय संस्कृति के उत्थान में संत संघ की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सर्वधर्म समभाव में विश्वास रखने वाले इस आध्यात्मिक संगठन के तत्वावधान में प्रायः सर्वधर्म सम्मेलन, विश्व आस्तिक सम्मेलन जैसे कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं, जिनमें देश विदेश के विभिन्न धर्मों के मनीषी अपने व्याख्यान देते हैं और ईश्वरीय सत्ता में एकता का अहसास दिलाते हैं।

संत संघ के अन्तर्गत स्थापित सच्चा आश्रम के जनसेवी संत बड़े समर्पित भाव से सेवा कार्यों में लगे रहते हैं। सच्चा आश्रम के अन्य केन्द्र वाराणसी, नांगल बाँध (पंजाब), हरिद्वार, चित्रकूट, मधुबनी (बिहार), प्रतापगढ़, बलुआघाट (इलाहाबाद), बद्रीनाथधाम, सकलडीहा (वाराणसी), विंढमगंज (सोनभद्र), मोतिया तालाब विन्ध्याचल, सीतापुर आदि स्थानों पर है। फ्रांस के दुलुस शहर में भी एक केंद्र है, जहाँ भारतीय संस्कृति का प्रचार किया जाता है।

अरैल स्थित केन्द्र में दातव्य औषधालय व गौशाला चलाए जा रहे हैं। इसके अलावा प्रायः सभी केन्द्रों में संस्कृत विद्यालय चलाये जाते हैं। इनमें छात्रों के आवास एवं भोजन की निःशुल्क व्यवस्था है। अरैल में सच्चा अध्यात्म प्रशिक्षण महाविद्यालय भी चल रहा है, जिसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने मान्यता प्रदान कर दी है।

साधुसेवी आचार्य वल्लभ

कृष्णभक्ति आन्दोलन के प्रमुख कर्णधार आचार्य वल्लभ प्रयाग के अरैल ग्राम में बहुत समय तक रहे और यहीं पर उन्होंने साधु–सन्तों की खूब सेवा की। आचार्य ने कृष्णभक्ति को अपना प्रमुख लक्ष्य बना रखा

था और कृष्ण के सुंदर रूप का गुणगान करने के साथ–साथ उनके तात्विक स्वरूप की भी व्याख्या उन्होंने की है।

एक ब्रह्मचारी के रूप में आचार्य ने पूरे भारत के तीर्थों में घूम–घूम कर कृष्ण के उस रूप को जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसके कारण कृष्ण भगवान कहलाये थे। आचार्य वल्लभ आंध्र प्रदेश में चम्पारण्य में जन्मे थे। इनकी माता का नाम यल्लमागारू और पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था। वल्लभ ने बाल्यावस्था में ही प्रमुख धर्मग्रंथों और कई विद्याओं में दक्षता हासिल कर ली थी। आचार्य के समकालीन विद्वान इनसे शास्त्रार्थ करने में हिचकते थे, इस प्रकार वल्लभ को पर्याप्त ख्याति मिली। फिर वे कृष्ण भक्ति आन्दोलन को पूरे भारत वर्ष में फैलाने के लिये घर से निकल पड़े। उनके साथ भारी संख्या में अनुयायी भी थे।

वल्लभाचार्य विद्यानगर से कन्याकुमारी होकर पंढरपुर आये, वहाँ से नासिक, ओंकारेश्वर होते हुये उज्जयिनी पहुँचे। तत्पश्चात् सिद्धवट, ग्वालियर, धौलपुर, दहिता आदि स्थानों में तमाम विद्वानों से शास्त्रार्थ किया और राजसभाओं में अपने उपदेश दिये, जिससे तत्कालीन राजाओं ने इनको बहुत सम्मान दिया।

श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त और उद्भट विद्वान होने के कारण राजसभाओं से मिले बहुमूल्य उपहार उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किये। आचार्य वल्लभ कृष्ण भक्ति के सभी प्रमुख स्थानों में गये, जहाँ जाँत–पाँत की सीमा तोड़कर इन्होंने प्रत्येक वर्ग के लोगों को गले लगाया और अपना शिष्य बनाया। वे द्वारिकापुरी और ब्रज की यात्रा करते हुये प्रयाग आये। इस बीच उन्होंने अपना विवाह भी कर लिया था। आचार्य सपत्नीक यमुना तट पर अरैल गाँव में रहने लगे।

आचार्य वल्लभ की विद्वत्ता और भक्ति देखकर कई धनी व्यक्ति इनके शिष्य बन गये। वे अपना बहुत–सा धन आचार्य को दिया करते थे, जिससे वे साधु सन्तों और अतिथियों की सेवा करते थे। वे सदैव कृष्ण के परम प्रिय स्वरूप में लीन रहते थे। शास्त्रार्थ तथा अपने तर्कों से पंडितों को परास्त करने पर इनको बहुत प्रसिद्धि मिली। दूर–दूर से संत और विद्वान इनके दर्शन को आया करते थे।

आचार्य वल्लभ ने पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन किया। वर्तमान में इनके अनुयायी वल्लभ संप्रदाय के माध्यम से कृष्ण भक्ति का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। आचार्य वल्लभ जिस समय कृष्णभक्ति का प्रचार करते हुये अरैल में निवास कर रहे थे, उसी समय चैतन्य महाप्रभु प्रयाग आये और दशाश्वमेध घाट पर रहने लगे। यह जानकर कि चैतन्य महाप्रभु प्रयाग में हैं, आचार्य वल्लभ उनसे मिलने को व्याकुल हो उठे और यमुना पार कर दशाश्वमेध घाट पहुँचे। चूँकि आचार्य वल्लभ और चैतन्य के बीच परिचय नहीं था, अतः आचार्य उन्हें प्रणाम कर एक कोने में बैठ गये। जब चैतन्य को पता चला कि ये वल्लभाचार्य हैं तो भाव विह्वल होकर उनसे लिपट गये और आचार्य की प्रशंसा करके फूले नहीं समाये।

आचार्य ने उन्हें अरैल आने का निमंत्रण दिया। उनके आमंत्रण पर चैतन्य महाप्रभु नौका में बैठकर अरैल जा रहे थे कि कृष्ण भाव आने पर यमुना के श्यामजल में कूद पड़े। नाविकों ने हाहाकार मचाया तथा उन्हें किसी तरह निकाल लिया गया। अरैल स्थित आचार्य वल्लभ के आश्रम पहुँचने पर उनका खूब सत्कार किया गया। गृहस्थ संत की भाँति आचार्य ने उनकी सेवा की और पैर दबाने लगे तो चैतन्य आश्चर्यचकित

होकर अपने पैर पीछे हटा लिये। वे बोले–'आचार्य आप मुझसे बड़े हैं। आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?' इस पर आचार्य ने उत्तर दिया–'अतिथि देवता होता है, उसकी सेवा करने में कोई संकोच नहीं करना चाहिये। फिर आप तो ज्ञानी और संत हैं। आपकी सेवा में भला मुझे कैसा संकोच?' चैतन्य ने उन्हें पैर नहीं दबाने दिया। चैतन्य महाप्रभु जितने समय प्रयाग में रहे, आचार्य और उनका मिलन निरन्तर होता रहा।

तत्वज्ञान प्रसार मंडल

आत्मतत्व की खोज की प्रवृत्ति मनुष्य में सदा से रही है, किन्तु कोई विरला गुरु ही होता है, जो उसकी पहचान करा सके। संत कबीर ने कहा था–"कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूढ़ै बन माहिं"। वही स्थिति मनुष्य की भी है। जिस शांति, ज्ञान, तत्व की खोज में वह तरह–तरह के प्रशिक्षण लेता है, मार्ग खोजता है, आश्रमों में जाता है, वह उसके अंदर ही विद्यमान है, उसके हृदय में स्थित है। तत्वज्ञान प्रसार मंडल के संस्थापक श्री संतजी महाराज का ऐसा ही उद्देश्य है कि मनुष्य अपने हृदय में स्थित उस ज्ञानतत्व को जाने और अनुभव करे। इसी के तहत वे जिज्ञासु प्रेमियों को आत्मतत्व का ज्ञान कराते हैं।

तत्व ज्ञान प्रसार मंडल का मुख्यालय श्री संत योगाश्रम के नाम से मेहरौली, नई दिल्ली में है। भारत समेत विश्व के विभिन्न देशों में इसके लगभग १५०० केन्द्र स्थापित हैं, जिनके माध्यम से जिज्ञासुओं की ज्ञान–पिपासा शांत की जाती है। महाराज जी अपने संदेश में कहते हैं– "जो कुछ भी मैं आपसे कह रहा हूँ, वह एक मनुष्य के नाते कह रहा हूँ। आप भी मनुष्य हैं, मैं भी मनुष्य हूँ। जिस ज्ञान को मैं बाँटता हूँ, वह अगर चाहिये तो उसके लिये जिज्ञासु बनिए।"

प्रयाग में प्रत्येक माघ मेले और कुंभ मेलों में तत्वज्ञान प्रसार मंडल का शिविर लगाया जाता है, जिसमें महाराज जी के वीडियो प्रवचन सुनाये जाते हैं। तत्व ज्ञान प्रसार मंडल का केन्द्र यहाँ राजापुर मुहल्ले में स्थापित है, जिसमें साप्ताहिक कार्यक्रम चलाया जाता है।

जनसेवी सन्त मलूकदास

प्रयाग में लगभग ५५ किलोमीटर उत्तर–पश्चिम दिशा में गंगातट पर स्थित कड़ा ग्राम में जनसेवी संत मलूकदास का जन्म हुआ था। इनके जन्म संवत्सर के बारे में बहुत विवाद रहा है। विक्रम संवत् १६३१ में वैशाख कृष्ण पंचमी को इनका जन्म हुआ–ऐसी सर्वानुमति सी बन गयी है। बाल्यावस्था से ही मलूकदास की सेवा–भावना मुखर होने लगी थी। वे गरीबों और असहायों की सेवा के लिये प्यार से अनाज की चोरी कर लेते और उसे भूखे लोगों को दे आते थे।

इनमें कवित्व भाव था; साथ ही, सेवा–भावना भी कूट–कूट कर भरी हुई थी। इनकी कविताओं में मनुष्य जीवन के लिए उपदेश मिलते हैं। इनका एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है–

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

मलूकदास ने हिन्दी भाषा में अपनी रचनायें की, जिन पर अनेक आधुनिक विद्वानों ने शोध कार्य किया है।

जीवन के अंतिम वर्षों में इन्होंने जगन्नाथ पुरी की यात्रा की। गंगा तट पर रहकर इन्होंने सदैव सेवाभावना को प्राथमिकता दी। वर्तमान समय में कड़ा में इनका एक आश्रम है, जहाँ कुछ संस्थाएँ एकता और सेवाभावना को लेकर संत मलूक द्वारा किये गये कार्यों की याद में गोष्ठियाँ परिचर्चाएँ कराती रहती हैं।

प्रयाग में स्वामी दयानंद का शास्त्रार्थ

वैदिक संहिता के प्रखरवेत्ता एवं आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती देश के ऐसे उद्‌भट् विद्वानों में थे, जिन्होंने जगह–जगह शास्त्रार्थ किया और अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। ऐसे काल में, जब सनातन धर्मावलम्बी मूर्तिपूजा के कट्टर समर्थक थे, स्वामी दयानंद द्वारा इनका विरोध किया जाना अपने आप में क्रांति का प्रतीक था।

स्वामी दयानंद के जीवन सम्बन्धी पुस्तकों से प्राप्त विवरण के अनुसार वे प्रथम बार सन् १८५६ ई० में प्रयाग आये थे। कुछ काल तक प्रवास के उपरान्त वे पुनः वापस चले गये। इस समय किसी से शास्त्रार्थ करने का विवरण नहीं मिलता। दूसरी बार सन् १८६८ में शिवराजपुर होते हुये प्रयाग आये और कुछ दिनों बाद वापस चले गये। किन्तु जब तीसरी बार सन् १८७० में प्रयाग पहुँचे तो यह माघ का महीना था और मेले का अवसर था। इस बार वे नागवासुकी मंदिर में रुके। चूँकि इस समय तक स्वामी दयानंद की कीर्ति इतनी फैल चुकी थी कि बड़ी संख्या में लोगों ने मंदिर जाकर उनके दर्शन किये तथा प्रवचन सुना। कहते हैं कि स्वामी जी माघ की कड़ी ठंडक में भी केवल धोती पहनकर सोते थे। ऊपर का आधा शरीर खुला रहता था। किसी आगंतुक ने एक दिन उनसे पूछा कि क्या उन्हें ठंडक नहीं लगती? स्वामी जी ने उससे उल्टे प्रश्न पूछ लिया–'तुम्हारा मुँह खुला रहता है तो तुम्हें ठंडक नहीं लगती?' इस पर प्रश्नकर्ता अवाक् रह गया। स्वामी जी ने शालीनता से उत्तर दिया कि उनका शरीर सदैव खुला रहता है, इसीलिये उन्हें ठंडक नहीं लगती।

इसी माघ मेले में ब्रह्मसमाज के तत्कालीन प्रधान नेता श्री देवेन्द्र नाथ ठाकुर भी आये थे। वे स्वामी जी से मिलने गये। स्वामी जी ने उन्हें सप्रेम बैठाया और विभिन्न धार्मिक विषयों पर चर्चा की। उस समय कुछ सनातनधर्मी धर्म–परिवर्तन करने के पक्ष में थे, किन्तु स्वामी दयानंद के उपदेश का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने धर्म–परिवर्तन का विचार ही छोड़ दिया।

माधव चन्द्र चक्रवर्ती नामक एक नास्तिक व्यक्ति ने माघमेले के समय स्वामी जी से १०१ प्रश्न पूछे,

जिनका स्वामी जी ने ऐसा तर्कपूर्ण उत्तर दिया कि वे आस्तिक बन गये।

स्वामी दयानंद सन् १८७४ में तीन बार प्रयाग आये। तीसरी बार म्योर सेन्ट्रल कालेज (वर्तमान इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के विज्ञान संकाय में शास्त्रार्थ हुआ, जिस पर स्वामी जी ने पंडितों को निरुत्तर कर दिया।

स्वामी दयानंद सरस्वती पर्दाप्रथा के प्रबल विरोधी थे और छुआछूत में बिल्कुल विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रंथ प्रयाग में ही लिखा था। इस प्रकार स्वामी जी का प्रयाग से विशेष सम्बन्ध रहा है।

जैन परंपरा में प्रयाग

प्राचीन श्रमण (जैन) परंपरा में प्रयाग का महत्व उसी तरह है, जिस तरह सनातन परंपरा में। प्रयाग की पवित्रता के पीछे उत्कृष्ट पूजा और तपस्या का उल्लेख जैन ग्रंथों में मिलता है। श्रमण–परंपरा के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने जब अयोध्या का राज्य सँभाला तो उन्होंने जनता को कर्म में रत होने के लिये प्रेरित किया। स्वयं उन्होंने आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा से कर्मयुग का शुभारंभ किया। उन्होंने अपने राज्य की जनता को छः कर्मों का ज्ञान दिया, जिनमें असि और मसि प्रमुख हैं। असि का अर्थ है–अस्त्र–शस्त्र चलाना और मसि का अर्थ है–लिपिबद्ध करना या लिखना–पढ़ना। इसके अतिरिक्त कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य–अन्य चार कर्म बताये थे।

भगवान ऋषभदेव ने अपने राज्य का विभाजन करके सभी पुत्रों को बाँट दिया तथा तपस्या के लिये चले आये। उनके राज्य में ५२ भाग हुये थे, जिनमें से एक कोशल भी था। ऋषभदेव तपस्या हेतु कोशल राज्य के अंतिम छोर पर गंगा–यमुना के संगम के निकट पहुँचे। कोशल राज्य वृषभसेन को मिला था। संगम के निकट पुरिमताल नामक नगर था, जो वर्तमान झूँसी के आसपास का स्थान कहा जा सकता है। यहाँ एक घना जंगल था, जिसे सिद्धार्थवन कहा जाता था। ऋषभदेव इसी सिद्धार्थवन में एक वट वृक्ष के नीचे नग्नावस्था में पूर्वमुखी होकर तपस्यारत हो गये। चैत्र कृष्ण नवमी को उन्होंने अपने हाथों से केश लुंचन (बाल नोचना) किया। उसी दिन संध्या को उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में उन्होंने दीक्षा ली और पुनः तपस्यालीन हो गये। दीक्षा कार्यक्रम में उनका पौत्र और सम्राट भरत का पुत्र मारीच भी उपस्थित था। जैन ग्रंथों में कहा गया है कि ऋषभदेव के सर्वपरिग्रह त्यागकर दीक्षा लेने से इस क्षेत्र का नाम 'प्रयाग' हो गया। हरिवंश पुराण के अनुसार प्रजा ने जिस स्थान पर भगवान की पूजा की, उसे पूजास्थान होने का गौरव मिला और 'प्रयाग' कहलाया।

एवमुक्त्वा प्रजा यत्र प्रजापतिमपूजयत।
प्रदेशः स प्रयागाख्यो यतः पूजार्थयोगतः।।

भगवान ऋषभदेव के कारण ही पुरिमताल नामक नगर प्रयाग के नाम से विख्यात हो गया। बाद में ऋषभदेव का तीसरा पुत्र वृषभसेन अनेक राजाओं के साथ उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ वे तपस्यालीन थे। उसने ऋषभदेव से दीक्षा ली और प्रथम गणधर बना। प्रथम तीर्थंकर का उपदेश यहीं पर हुआ और भगवान

ऋषभदेव ने धर्मचक्र का प्रवर्तन भी प्रयाग से ही किया। इसके पश्चात् उन्होंने कैलाश पर्वत पर जाकर मोक्ष प्राप्त किया। पुरिमताल निवासियों को जब यह संदेश प्राप्त हुआ तो उन्होंने मौन साधु का मोक्ष कल्याणक उत्सव मनाकर अमावस्या को प्रातःकाल संगम में स्नान किया और तभी से संगम तट पर मौनी अमावस्या का पर्व मनाया जाने लगा। भगवान ऋषभदेव ने अक्षयवट के नीचे बैठकर कैवल्य ज्ञानलक्ष्मी की प्राप्ति की थी।

बहुत समय पश्चात् महावीर के जीवन काल में भारत वर्ष में १६ गणराज्य थे, जिनमें से एक वत्स देश भी था। वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी। यहाँ भी श्वेताम्बर और दिगम्बर जैनों के मंदिर हैं, जिनमें प्राचीन प्रतिमाएँ हैं।

पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर

प्रयाग नगर में चाहचन्द (जीरोरोड) में एक पुराना जैन मंदिर है। इस मंदिर का निर्माण नौवीं शताब्दी का माना जाता है। समय-समय पर मंदिर का जीर्णोद्धार होने के कारण इसकी प्राचीनता भले न झलके, किन्तु दिगम्बर जैनों की इसमें अगाध निष्ठा है। किलों की खुदाई करते समय लगभग २०० वर्षों पूर्व कुछ जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ निकली थीं। जैन समुदाय ने तत्कालीन सरकार से अनुरोध कर ये मूर्तियाँ पंचायती दिगम्बर जैन मंदिर एवं बड़ा मंदिर में स्थापित कर दीं। ये मूर्तियाँ श्रद्धेय तो हैं ही, पुरातात्विक दृष्टिकोण से मूल्यवान भी है।

श्री बड़ा मंदिर

चाहचन्द मुहल्ले में ही श्री बड़ा मंदिर है, जिसमें प्राचीन प्रतिमाएँ स्थापित हैं। मंदिर में दायीं ओर की वेदी में कई कलात्मक प्रतिमाएँ हैं और बायीं ओर भगवान आदिनाथ की खड्गासन प्रतिमा है। इसके दोनों ओर चँवरवाहक खड़े हैं। नीचे और आसपास दक्षिणी की प्रतिमाएँ हैं। मंदिर परिसर में २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बनायी गयी हैं। इनमें २० पद्मासन तथा ४ खड्गासन हैं। दो आकाशचारी देव हाथों में मालाएँ लिये हैं, छत्र पर एक देव दुंदुभी बजाता दृष्टिगोचर होता है। यहीं पर भगवान पद्मप्रभु की एक खड्गासन प्रतिमा है तथा एक जटाधारी भगवान आदिनाथ एवं भगवान आदिनाथ की कृष्णवर्ण प्रतिमा है।

इस मुहल्ले में कुल मिलाकर चार मंदिर और दो चैत्यालय हैं। यहीं पर एक जैन विद्यालय और धर्मशाला भी है।

प्रभासगिरि (पभोसा)

प्रयाग नगर से लगभग ५५ किलोमीटर दूर पश्चिम में यमुना तट पर प्रभासगिरि अवस्थित है। सम्पूर्ण समतल द्वाबा क्षेत्र में यह एक मात्र प्रस्तर शिखर है। इसी शिखर पर छठवें जैन तीर्थंकर भगवान पद्मप्रभु ने

चैत्रपूर्णिमा को कैवल्य (ज्ञान) प्राप्त कर इस क्षेत्र को पवित्रतम बना दिया।

लगभग सौ सीढ़ियाँ चढ़ने के उपरान्त शिखर पर पद्मप्रभु का यह तपस्या स्थल मिलता है, जहाँ अब विशाल एवं भव्य मंदिर बन गया है। यहाँ नित्यप्रति भगवान की पूजा–अर्चना होती है। इस पद्मासन प्रतिमा के प्रति जैन धर्मावलंबियों में अगाध निष्ठा है। वे इस प्रतिमा के कई वर्ण देखते हैं। हल्के बादामी रंग के पत्थर की ढाई फीट ऊँची यह प्रतिमा ईसा–पूर्व द्वितीय शताब्दी की मानी जाती है।

मंदिर के बगल से शिखर पर ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं, जहाँ पहुँचने पर 'श्रीचरण' चिह्न अंकित हैं। इसके एक ओर खंडित प्रतिमा है। थोड़ा–सा नीचे उतरने पर पूर्व की ओर प्राचीन गुफा है, जिसमें कभी जैन मुनि तपस्या करते थे।

नीचे एक दुर्गम गुफा है। यहीं पर पीपल का पेड़ है। गुफा में जाने के लिये पीपल के पेड़ में रस्सी बाँधकर कठिनाई से पहुँचा जा सकता है। इसके आसपास के विशाल पत्थरों पर उत्कीर्ण सुंदर मूर्तियाँ दिखायी पड़ती हैं।

शिखर के नीचे एक सुंदर धर्मशाला है, जिसे जैन समुदाय ने आपसी सहयोग से बनवाया है। यहाँ एक डाक्टर बैठते हैं, जो पभोसा गाँव समेत आसपास के ग्रामवासियों को निःशुल्क दवाएँ देते हैं। नीचे एक ओर विशाल प्रतिमा है। यहाँ पहुँचने के लिये एक अच्छी सड़क बन चुकी है। समय–समय पर धार्मिक कार्यक्रम चलते रहते हैं। यहाँ निःशुल्क नेत्र शिविर भी लगते हैं, जहाँ लोगों के नेत्रों का आपरेशन कर उन्हें नेत्रज्योति प्रदान की जाती है।

❀

ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थल

प्रतिष्ठानपुरी (झूँसी)

प्रयागराज के पूर्व की ओर गंगा के उस पार तट से सटा हुआ जो छोटा–सा नगर है, उसका अस्तित्व अति प्राचीन है। चन्द्रवंशीय राजाओं के शासनकाल में यह नगर प्रतिष्ठानपुरी के नाम से जाना जाता है। पुराणों से प्राप्त कथाओं के अनुसार इला के पुत्र राजा पुरुरवा ने यहाँ राज्य किया। राजा पुरुरवा कोशल प्रदेश के सूर्यवंशीय महाराजा इक्ष्वाकु के समकालीन कहे गये हैं।

विभिन्न पुराणों में वर्णित इस नगर के सम्बन्ध में एक दंत कथा प्रसिद्ध है: यहाँ पर हरदेव नामक राजा राज्य करता था, जिसके शासनकाल की यह विशेषता थी कि खाजा और भाजी–दोनों टका सेर मिलते थे। इसीलिये तब से एक कहावत चल पड़ी–"अंधेरनगरी, चौपट राजा; टका सेर भाजी, टका सेर खाजा।" यहाँ हर चीज़ के टका सेर बिकने की बात कही गयी है। इसी उक्ति पर हिन्दी के कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक नाटक भी लिखा है।

इस अंधेरनगरी के बारे में कहा जाता है कि गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्र नाथ ने किसी बात पर रुष्ट होकर शाप दे दिया था, जिससे झूँसी उलट गयी। कुछ लोग इसके बारे में अन्य बात कहते हैं। वे यह मानते हैं कि फकीर सैयद अली मुर्तुजा के क्रुद्ध होने पर यह नगरी पलट गयी थी। जो भी हो, पुष्ट प्रमाण तो नहीं है, फिर भी क्षेत्रीय जन ऐसी कथाओं पर विश्वास रखते हैं।

कालान्तर के इतिहास के बारे में कुछ प्रमाण पाये गये, जिनमें प्रतिष्ठानपुर में राजा त्रिलोचन पाल के शासन करने का जिक्र है। इस राज्य का शासनकाल विक्रमसंवत् १०८४ के आसपास का है, क्योंकि सन् १८३० ईसवी में खुदाई के समय यहाँ कुछ ताम्रपत्र पाये गये, जो पश्चिम बंगाल के एशियाटिक सोसायटी के पास सुरक्षित भी हैं। संतों के तुषाग्नि तापने के कारण भी इसे झूँसी कहा जाता है (तुषा का तात्पर्य धान की भूसी से है)। आधुनिक समय में इसका पर्याप्त विस्तार हुआ है। यहाँ पर हंसकूप और समुद्रकूप का अस्तित्व प्राचीन है। वर्तमान में कई संतों के आश्रम यहाँ बने हुये हैं, जिनमें ब्रह्मलीन प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी का संकीर्तन भवन, योगानंद आश्रम, श्री हरिचैतन्य ब्रह्मचारी जी का आश्रम, प्रयाग योग अनुसंधान संस्थान, सद्गृहस्थ संत श्री परमानंद जी द्वारा स्थापित गंगा, यमुना, सरस्वती धाम तथा कई अन्य प्रमुख हैं। यहीं पर यमुना इन्क्लेव में गोविन्द वल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान की विशाल इमारत है तथा भूचुम्बकत्व केन्द्र एवं मेहता गणितीय अनुसंधान केन्द्र शोध के केन्द्र बनते जा रहे हैं। यहाँ से करीब दो किलोमीटर आगे छतनाग में बिड़ला कानन हाउस एवं उसी से सम्बद्ध एक विद्यालय है। विद्यालय में शिक्षा का समुचित प्रबंध है। विद्यालय से ही लगा हुआ एक स्वास्थ्य केन्द्र है, जहाँ बिड़ला परिवार की ओर से स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहय्या करायी गयी हैं। झूँसी से करीब १० किलोमीटर दक्षिण में गंगा तट पर बसे कंकरा गाँव के पास महर्षि दुर्वासा का आश्रम है। यह अत्यंत रमणीक है।

अलर्कपुरी (अरैल)

पुराणों में महादेव सोमेश्वरनाथ का माहात्म्य बताये जाने से अलर्कपुरी या अरैल के अस्तित्व की प्राचीनता का तो पता चलता है, किन्तु वर्तमान समय में इस स्थान की जो स्थिति है, उससे यह तो नहीं लगता है कि यहाँ पर कोई बड़ा नगर रहा होगा। प्रागैतिहासिक काल में यहाँ पर राजा अलर्क के शासन का वर्णन मिलता है और इसलिये इस कस्बे का नाम अलर्कपुरी पड़ा, जो आधुनिक काल में अरैल कहा जाने लगा। यह राजा बहुत न्यायप्रिय था। अलर्कपुरी की स्थापना इला द्वारा की गयी थी, जिसे पुराणों में 'महापुरी' कहा गया है। रामायण और महाभारत काल में इसके नगर होने का प्रमाण मिलता है। पाण्डवों ने अपने अज्ञातवास के कुछ वर्ष यहीं पर व्यतीत किये थे। बौद्धकाल में महापुरी या वत्सपटम् की चर्चा आयी है, जिसका संबोधन संभवतः अरैल के लिये था।

संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान कात्यायन का जन्म यहीं पर हुआ था तथा वल्लभाचार्य ने यहाँ अपना आश्रम बनाकर संत–सेवा की थी। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि परमानंद ने यहीं रहकर परमानंद सागर की रचना की थी। चैतन्य महाप्रभु यमुना पार करके यहाँ आचार्य वल्लभ से मिलने आये थे।

मुसलमान शासकों के समय भी अरैल का विशेष महत्व रहा, खासकर सामरिक दृष्टिकोण से। सम्राट अकबर ने इसे जलालाबाद नाम दिया था, किन्तु वह चल नहीं पाया। इतिहास बताता है कि चुनार में शेरशाह सूरी से परास्त होने पर हुमायूँ ने अरैल में शरण ली थी, जो बाद में बघेल राजा वीरभान के सहयोग से कड़ा की तरफ भाग गया था।

वर्तमान समय में यहाँ कई मंदिर है। गंगा और यमुना दोनों नदियों के किनारे बसा यह स्थान आजकल विस्तृत होता जा रहा है। सुप्रसिद्ध संत सच्चा बाबा का आश्रम तथा संस्कृत महाविद्यालय भी यहाँ पर हैं। इनके अलावा, महर्षि महेश योगी द्वारा स्थापित महर्षि वेद विद्यालय एक विशाल भूखण्ड में बना है। यहाँ संस्कृत के विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। यहीं पर स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती चैरिटेबुल ट्रस्ट का एक मंदिर निर्माणाधीन है।

कौशाम्बी

कौशाम्बी प्रयाग नगर से लगभग ६० किलोमीटर दूर पश्चिम में यमुना के किनारे स्थित है। प्रारंभ में कौशाम्बी की स्थिति के बारे में बहुत विवाद था, किन्तु प्रसिद्ध पुरातत्वशास्त्री जनरल कनिंघम, ने बड़े श्रम के बाद सिद्ध किया कि यही स्थान कौशाम्बी है। शतपथ ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण ग्रंथों में इस स्थान को विख्यात विद्यापीठ कहा गया है। पाणिनि के सूत्र और महाभाष्य में तो 'कौशाम्बी' नाम आया है, परन्तु कथा सरित्सागर में इस स्थान को 'महापुरी' कहा गया है। 'मत्स्य' और हरिवंश पुराण में भी कौशाम्बी का वर्णन मिलता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार कुशांब नामक राजा द्वारा बसाये जाने के कारण इसका नाम कौशाम्बी पड़ा। नेमचन्द चन्द्रवंशीय राजा था, जो महाराजा पुरुरवा की उसी पीढ़ी में हुआ था। इस नगर को

राजा नेमचन्द्र के शासनकाल में अधिक ख्याति मिली जो अर्जुन के पश्चात् आठवाँ वंशज था। इस वंश की २२ पीढ़ियों के यहाँ शासन करने की चर्चा आयी है। इस वंश का अंतिम राजा क्षेमक था।

प्राचीन समय में इसका नाम 'वत्सदेश' था, जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी। उस समय मध्यप्रदेश के दक्षिणी भाग में तीन प्रमुख राज्य थे–वत्स, चेदि और अवंती। इनमें यमुना के तट पर स्थित राज्य वत्स था। महात्मा बुद्ध के समय वत्स में महाराज उदयन का शासन था। यह पुरुरवा का वंशज था। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार उदयन ने अवंती के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता का अपहरण कर उससे विवाह कर लिया था। इसके पश्चात् उदयन के एक मंत्री यौगन्धरायण ने मगध सम्राट की पुत्री का भी विवाह अपने राजा से करा दिया। उदयन के बहुपत्नीक राजा होने की कथायें मिलती हैं। अंगराज दृढ़वर्मा की पुत्री, सिंहल नरेश विक्रम बाहु की पुत्री सागरिका, मागन्दीया आदि महाराज उदयन की पत्नियाँ थीं। वत्सराज उदयन बहुत बुद्धिमान और कूटनीतिज्ञ थे। उन्होंने तत्कालीन शक्तिशाली नरेशों से अपने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर राज्य की सुरक्षा के लिये एक प्रकार से मित्र बना लिये थे।

उदयन के पश्चात् वत्स का उत्तराधिकारी कौन बना, इसके सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। कुछ पुराण वहीनर को उनको उत्तराधिकारी कहते हैं, जबकि बौद्ध ग्रंथों में बोधि का नाम मिलता है। वास्तव में उदयन वत्स के एक मात्र शक्तिशाली, वैभवशाली और महान शासन थे। उस समय तीर्थराज प्रयाग वत्स देश का सांस्कृतिक स्थल था। यह धार्मिक होने के साथ–साथ शिक्षा का भी केन्द्र था। उदयन के पश्चात् वत्स देश की प्रभुता की अवनति होती गयी। वाल्मीकीय रामायण में वत्सदेश का उल्लेख मिलता है। इससे इसकी प्राचीनता साफ झलकती है। बौद्धकाल में इस देश के गौरवशाली होने के साक्ष्य मिलते हैं। कहते हैं, गौतमबुद्ध ने अपने त्यागी जीवन का छठाँ और नवाँ वर्ष यहीं व्यतीत किया था। कुछ समय तक वत्स मगध नरेशों के अधीन रहा। सम्राट अशोक ने इसकी राजधानी कौशाम्बी को अपना केन्द्र बनाकर पश्चिमी राज्यों की देखरेख यहीं से की। अशोक का स्तम्भ अब भी यहाँ विद्यमान है। बहुत समय के पश्चात् यह राज्य कन्नौज नरेशों के अधीन हो गया। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग प्रयाग आया तो उसने वत्स देश का भ्रमण किया। उसने अपने वर्णन में लिखा है कि इस देश का घेरा छः हजार ली है। राजधानी का विस्तार ३० ली के क्षेत्र में है। इसकी भूमि उपज के लिये प्रसिद्ध है। धान व गन्ना खूब पैदा होते हैं। जलवायु अत्यंत उष्ण है। लोग कड़े स्वभाव वाले और उद्दंड हैं, परन्तु धार्मिक और पढ़े लिखे हैं। इस नगर में बौद्धों के १० संघाराम हैं, जो अब उजाड़ पड़े हैं, परन्तु ३०० के लगभग हीनयान सम्प्रदाय के पुजारी हैं। ब्राह्मणों के ५० देवमंदिर है। उनके अनुयायियों की संख्या भी अधिक है। नगर के एक पुराने महल में एक बड़ा विहार है, जिसकी ऊँचाई ६० फुट है, इसमें महात्मा बुद्ध की एक मूर्ति चंदन की स्थापित है, जिसके ऊपर पत्थर का एक बड़ा गुंबद है। यह मूर्ति राजा उदयन के मुद्गलयन पुत्र के द्वारा बुद्ध के जीवन काल में ठीक उन्हीं के अनुरूप बनवाई गई थी। इस विहार से १०० कदम पूर्व चार पुराने बुद्धों के चलने और बैठने के चिह्न हैं। उसके पास ही एक कूप और स्नानागार है, जिसको बुद्ध भगवान काम में लाया करते थे। कुँओं में अब तक जल है, परंतु स्नान भवन बहुत दिन हुए उजड़ गया है। नगर के दक्षिण और पूर्व में पास ही एक और संघाराम है। यह वह स्थान है, जहाँ गोशिरा का एक विचित्र उद्यान था। यहाँ अशोक का बनवाया हुआ एक २०० फुट ऊँचा स्तूप है, जहाँ भगवान बुद्ध ने कई

वर्ष रहकर धर्मोपदेश दिया था। इस स्तूप के बगल में वह जगह है, जहाँ बुद्ध चले–फिरे, बैठे थे। यहाँ एक स्तूप और है, जिसमें महात्मा बुद्ध के केश और नख गड़े हुए हैं। संघाराम के दक्षिण और पूर्व एक दो खण्ड के भवन के ऊपर पुरानी ईंटों की छत है। इस पर 'विद्यामात्रसिद्धि' नामक बोधिसत्व रहते थे। यहीं उन्होंने स्वनाम–शास्त्री रचना की थी और हीनयान संप्रदाय के सिद्धान्तों का खंडन किया था। इस संघाराम के पूर्व एक आम के बाग में एक पुरानी दीवार की नींव है। यह वह स्थान है, जहाँ असंग बोधिसत्व ने शास्त्र की रचना की थी।

पुरातत्व विभाग की खुदाई के पश्चात् मिले अवशेष इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इन अवशेषों से कौशाम्बी की प्राचीनता का पता चला है।

कड़ा

प्रयाग नगर से लगभग ५० किलोमीटर उत्तर–पश्चिम के कोने में गंगा तट पर कड़ा कस्बा स्थित है। किसी समय यह अच्छा–खासा नगर और सामरिक महत्व का स्थान था। यहाँ पर कालेश्वर महादेव का मंदिर है, जिसके कारण इसका पुराना नाम कालनगर था। कालान्तर में इसे कर्कोटिक नगर भी कहा गया।

गाँव से कुछ दूरी पर गंगा किनारे एक किले का भी अवशेष है, जिसे जयचंद का किला कहते हैं। किले की भूमि से ऊँचाई लगभग ६० फीट, उत्तर दक्षिण की लम्बाई ६०० फीट और चौड़ाई ५५० फीट है। इसकी दीवारें ईंट की बनी हैं। यहाँ मिले कुछ अभिलेखों से पता चलता है कि यह स्थान कभी कौशाम्बी के अन्तर्गत था। १२वीं शताब्दी में आक्रांता शहाबुद्दीन गोरी ने राजा जयचंद को हराकर इस किले में अपना अधिकार जमा लिया। बाद में कड़ा मुसलमानी शासकों की सूबेदारी में रहा और प्रयाग यहीं से शासित होता रहा।

कुतुबुद्दीन ऐबक ने कड़ा क्षेत्र अपने गुरु कुतुबुद्दीन मदनी को दे दिया। इसकी कब्र यहाँ पर बनी हुई है। बाद में १२५३ में उलग खाँ यहाँ का सूबेदार बना। गयासुद्दीन बलबन के शासनकाल के बाद उसके पौत्र कैकुबाद ने यहाँ की सूबेदारी की। सन् १२८६ में जलालुद्दीन खिलजी के शासनकाल में उसका भतीजा अलाउद्दीन खिलजी कड़े का सूबेदार बनकर आया। मुगलकाल में हुमायूँ, फिर आजम का पुत्र इस्लाम, इसके बाद अकबर के सिपहसालार आसफ खाँ को कड़ा की जागीरदारी मिली। अकबर ने सन् १५६६ में कड़ा की सूबेदारी खत्म करके प्रयाग से उस पर शासन चलाया। इसे उपप्रांत (सरकार जिला) बना दिया। इसी के पास स्थित दारानगर दाराशिकोह के नाम पर बसाया गया।

कड़ा में प्रसिद्ध शीतलाधाम और मलूकदास की गद्दी भी है। यह स्थान अब कौशाम्बी जिले में है।

किला

प्रयाग का यह किला लगभग ४०० वर्ष पुराना है, जिसका निर्माण मुगल सम्राट अकबर ने कराया था। अबुल फजल के अकबरनामा से प्राप्त विवरण के अनुसार संगम पर बने इस किले को चार खण्डों में निर्मित

किया गया था। पहला खण्ड सम्राट के निवास के लिये, दूसरा खण्ड बेगमों और शहजादों के लिये, तीसरा खण्ड सम्राट के परिजनों के लिये तथा चौथा खण्ड सिपाहियों और सेवकों के लिये बना था।

किले के भीतरी भागों के प्रामाणिक विवरण के अनुसार किले का क्षेत्रफल ६८३ बीघा है। इसकी लम्बाई ३८ जरीब और चौड़ाई २६ जरीब है। घेरा कुल मिलाकर १२८ जरीब है। (एक अकबरी जरीब का मतलब वर्तमान समय का ६० गज होता है।) इसके अंदर २३ महल, ३ शयनागार, २५ दरवाजे, २३ बुर्ज, २७७ भवन, ७६ कोठरियाँ, २ खासोआम, ७७ तहखाने, एक दालान, २० तबेले, १ बावली, ५ कुँयें तथा एक यमुना की नहर थी। किले का निर्माण शहजादा सलीम, टोडरमल, भारतदीवान और प्रयागदास की देखरेख में किया गया था। किला ४५ वर्ष, ५ माह, १० दिन में पूर्णरूपेण बनकर तैयार हुआ था, जिसमें ६ करोड़ ७७ लाख २०२१४ रूपये खर्च हुये थे। एक यूरोपियन यात्री ने लिखा है कि इसके निर्माण में पहले २० हजार आदमी लगे थे, किन्तु बाद में लगभग ५ हजार लोग काम करने लगे थे।

बाद में जब किला अंग्रेजों के अधीन हो गया तो उन्होंने अपने तरीके से इसमें काट छाँट करायी और शस्त्रागार बना दिया। इसके भीतर रंगमहल, रानीमहल, सुरंग, फाँसीघर, हाथी दरवाजा आदि मौजूद हैं। शस्त्रागार तथा आधुनिक कार्यशाला होने के कारण इसमें तमाम नये निर्माण व परिवर्तन किये जा चुके हैं। अब तो यह भारतीय सेना के अधीन है, जहाँ हज़ारों कर्मचारी काम करते हैं। किला आम जनता के लिये नहीं खोला जाता है। किले के भीतर ही अशोक की लाट खड़ी है तथा यमुना की ओर अक्षयवट है।

रंगमहल

रंगमहल का नाम आते ही घुंघरुओं की झनझनाहट व साजों से सुर निकलने का आभास स्वतः होने लगता है। किले के भीतरी हिस्से में स्थित अकबर का रंगमहल भी कुछ ऐसा ही था, जब फुरसत के क्षणों में बादशाह नित्यप्रति संगीत का आनंद लेता था। दो तलों की यह इमारत बड़ी शानदार है, जो पत्थरों की बनी हुई है। यह चौकोर इमारत है, जिसके चारों ओर बने दालान में खंभे हैं। भीतर सुंदर बैठक, जहाँ बादशाह नृत्य और संगीत का आनंद लेता था। इसके दूसरे तल पर सुंदर झरोखे बने हुये हैं, जहाँ बैठकर नीचे का नृत्य देखा जा सकता है। समझा जाता है कि यहाँ पर बादशाह की बेगमें बैठती रही होंगी।

इसके ऊपरी तल पर जाने के लिये छोटी-छोटी सीढ़ियाँ बनी हैं, जिनसे गुजरते समय दिन में प्रत्येक सीढ़ी पर सूरज की रोशनी रहती है। चाँदनी रात में भी यही स्थिति रहती है। सेना के अधिकारी किसी कार्यक्रम के सिलसिले में पत्रकारों की एक टोली को वहाँ घुमाने ले गये थे। उस टोली में मैं भी था और सीढ़ियों पर रोशनी का वह आलम मैंने भी देखा था। हम लोगों ने रंगमहल की छत से गंगा-यमुना के संगम का दृश्य देखा : बहुत ही सुंदर लगा।

रानीमहल

रंगमहल से थोड़ी दूरी पर रानी महल स्थित है। कहते हैं कि महारानी जोधाबाई इसी महल में रहती

थीं और रात्रि में संगम की लहरों के दृश्य का आनंद लेती थीं। बाहरी बनावट बहुत अच्छी है। महल के दरवाजे ऊँचे–ऊँचे तथा झरोखे सुंदर हैं।

अशोक स्तम्भ

सम्राट अशोक के शासनकाल में कीर्तिस्तम्भ में कीर्तिमान के रूप में पत्थर की बड़ी–बड़ी लाटें बनायी गयी थीं, जो कौशाम्बी में थीं। इन लाटों के पास सम्राट अशोक की आज्ञाएँ भी खुदी थीं। ये लाटें अशोक स्तम्भ हैं। कौशाम्बी से एक स्तम्भ किले में लाया गया था। इस स्तम्भ का वजन ४१३ मन बताया जाता है। लम्बाई लगभग ३५ फीट है। इसके निचले हिस्से का व्यास तीन फीट है। ऊपर जाते–जाते यह पतला हो जाता है तथा व्यास दो फीट बचता है।

यह स्तम्भ मुगल शासक जहाँगीर के समय किले में स्थापित किया गया था। इसमें जहाँगीर द्वारा खुदवाये गये अभिलेख हैं, यद्यपि ये अस्पष्ट हैं। यह स्तम्भ किले के मध्य भाग में है।

भीटा

नगर से लगभग १८ किलोमीटर दूर घूरपुर के निकट भीटा के लिये एक सड़क जाती है। भीटा एक गाँव है, जिसके पास ही ऊँचे–ऊँचे टीले हैं। इन टीलों का विस्तार लगभग ३०० बीघे होगा।

सर्वप्रथम जब जनरल कनिंघम ने अपना खुदाई कार्य सन् १८७२ में शुरू कराया तो यहाँ कुछ अभिलेख मिले। गढ़ के ध्वंसावशेष मिलने पर जनरल कनिंघम ने अध्ययन किया। उनका अनुमान था कि इस स्थान का पुराना नाम 'बीथाव्यपटन' रहा होगा। जब जान मार्शल ने खुदवाया तो उन्हें पता चला कि यह 'विधिग्राम' था, क्योंकि एक मुहर में ऐसा उल्लेख मिला।

इस नगर के अवशेष उत्तर में यमुना–किनारे स्थित मंदिर से लेकर दक्षिण में डेढ़ मील तक पाये गये। 'सुजान देव' या 'सुजावन देव' मंदिर की ऊँचाई पहले साठ फुट थी। कालान्तर में शाहजहाँ के सूबेदार शाइस्ता खाँ ने इसे अपने अधिकार में ले लिया। कुछ समय पश्चात् हिन्दुओं ने उसमें मूर्ति स्थापित कर दी, जहाँ कार्तिक की यम द्वितीया को बड़ा मेला लगता है। क्षेत्रीय लोग यमुना में स्नान करते हैं और मंदिर में देवता के दर्शन करके अपने को धन्य समझते हैं।

यहाँ भीटा के गढ़ की खुदाई करने पर बड़ी प्राचीन इमारतों के अवशेष मिले। मौर्यकाल, गुप्तकाल, कुषाण तथा शुंग वंश के समय के भी अभिलेख व सामग्री प्राप्त हुई है। पुरातात्विक मानते हैं कि यह नगर ईसापूर्व सातवीं शताब्दी में अस्तित्व में रहा होगा।

भीटा से कुछ दूरी पर पंचपहाड़ से बुद्ध की एक प्रतिमा तथा गुप्त संवत् १८६ (सन् ५०६ ई०) का एक अभिलेख मिला। इससे लगता है कि यहाँ बौद्धों का भी प्रभाव रहा होगा। बीकर गाँव के निकट से कुमार गुप्त महेन्द्र के नाम से १३ पंक्तियों का एक अभिलेख प्राप्त हुआ। ग्राम मनकुवार के पूर्व एक पहाड़ी से 'सीता रसोई'

नामक गुफा से नवीं शताब्दी का लेख मिला। इसी प्रकार मुहरें, सिक्के, आदि भी मिले, जिनमें अयोध्या नरेश, कुशाणवंशीय नरेश, कलिंग, आंध्र तथा कौशाम्बी के राजाओं की मुहरें लगी हुई हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि यहाँ के राजा का सम्बन्ध क्षेत्र व्यापक था।

जलालपुर

फूलपुर रेलवे स्टेशन के ८ किलोमीटर दक्षिण पूर्व स्थित एक गाँव को जलालपुर के नाम से जाना जाता है। इस गाँव के पूर्व की ओर कुछ टीले हैं, जो लगभग ६० बीघा क्षेत्र में थे। इन टीलों के पास झील का पानी रहता है। टीलों के आसपास ईंटों के टुकड़े तथा दीवारों के चिह्न दिखाई पड़ते हैं।

जनश्रुति के अनुसार पुराने समय में यहाँ एक राजा थे, जिनका नाम बेन था। वे जनता को बड़ा सुख देते थे। भूमि के लगान के नाम पर एक कौड़ी लेते थे। कुछ समय पश्चात् उनकी रानी ने कहा कि यदि लगान एक कौड़ी और बढ़ा दी जाय तो राज्य की आमद बढ़ जायेगी। राजा बेन ने रानी का सुझाव मानकर वैसा ही किया। एक बिल्ली वहाँ से निकलकर भागी और आदमी की आवाज में उसने कहा कि राजा ने जो अन्याय किया है, उससे दैवी आपदा आने वाली है और यह राज्य नष्ट हो जायेगा। हुआ भी वही। पूरा नगर डीह हो गया। अभी इसके पुरातात्विक प्रमाण बहुत नहीं मिले हैं।

खैरागढ़

मेजारोड से दक्षिण कोंहड़ार की ओर जाने वाली सड़क पर लगभग तीन किलोमीटर चलने पर टोंस नदी के किनारे खैरागढ़ मिलता है। यह प्राचीन किला है, जो अब भग्न अवस्था में है। इसका क्षेत्रफल लगभग ४८ बीघा है। किले का पश्चिमी भाग टोंस में कट कर बह गया है।

इस किले का निर्माण किसने कराया, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। कहा जाता है कि भरों ने इसे बनवाया था। बाद में राजा माण्डा ने इसे अपने अधिकार में ले लिया। अब तो इसके ध्वंसावशेष ही बचे हैं।

इसी के निकट एक गाँव खारा है। मुसलमानों के शासनकाल में इस किले को खारागढ़ कहा जाता था, लेकिन कालान्तर में खैरागढ़ नाम दिया गया। यहाँ कुछ सिक्के वगैरह मिले थे, लेकिन इनसे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल पाया।

गींज की पहाड़ी

प्रयाग से २८ किलोमीटर दूर बारा तहसील से ५ किलोमीटर आगे गींज की पहाड़ी स्थित है। यह पहाड़ी लगभग २०० फीट ऊँची है। इसके चारों ओर ढाल है तथा पास में एक तालाब का अस्तित्व है। यह

स्थान गुफा–सा दिखता है, जिसमें एक अभिलेख मिला था। अभिलेख में महाराजा भीमसेन का नाम खुदा हुआ था। उसमें संवत् ५२ का जिक्र भी था, परन्तु इसके अतिरिक्त कोई अन्य विवरण नहीं मिला। अब यहाँ चारों ओर मिट्टी–पत्थर की खुदाई की जा रही है। पहाड़ी के ज्यादातर भाग से पत्थर निकाल लिया गया है।

गढ़वा : गुप्तकाल की धरोहर

प्रयाग–चित्रकूट मार्ग पर प्रयाग नगर से चालीस किलोमीटर दूर स्थित शिवराजपुर कस्बे के उत्तर छः किलोमीटर पर प्राचीन इमारतों के भग्नावशेष मिलते हैं। यही स्थान गढ़वा के नाम से जाना जाता है। लम्बी, किन्तु भग्नदीवारों की बड़ी–बड़ी शिलायें और अधमुँदी बावली से इस स्थान की प्राचीनता का आभास स्वतः होने लगता है।

गढ़वा के जो प्राचीन चिह्न मिलते हैं, उनके मुताबिक यहाँ ऊँचाई पर स्थित एक पंचकोणीय किला था। इसमें प्रवेश के लिये १२ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती थीं। लगभग ढाई बीघे में बने इस किले से पानी निकलने की नालियाँ बनीं थीं तथा आसपास की गहराई में हमेशा पानी भरा रहता था।

जंगल में बने इस भग्न किले की खोज सर्वप्रथम काशी के राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने सन् १८७२ में की। बाद में जनरल कनिंघम ने कई बार वहाँ जाकर पुराने पत्थरों और शिलालेखों को एकत्र किया, जिनमें कई गुप्तकालीन अभिलेख प्राप्त हुए। पहला अभिलेख राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को मिला, जो चंद्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त का था। इसमें दान का उल्लेख है। जनरल कनिंघम को दूसरा अभिलेख सन् १८७३ में मिला था, जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय का है। इसमें गुप्त संवत् ८६ (सन् ४०६ ई०) लिखा है। इसमें ब्राह्मणों को दस दीनार (दस स्वर्णमुद्राएँ) दान देने तथा मगध की राजधानी पाटलिपुत्र का उल्लेख है। तीसरे और चौथे अभिलेख में जनरल कनिंघम ने दीनारों के अलावा यमुना तट पर कुछ भूमि के दान का भी उल्लेख पाया। सन् १८७७ में कनिंघम ने पाँचवाँ अभिलेख खोजा, जिसमें अनंत स्वामी (विष्णु) को गंध और धूप के लिये बारह दीनार दान करने का विवरण लिखा है। इसमें राजा का नाम तो भग्न था, परन्तु गुप्त संवत् १४८ और माघ की २१वीं तिथि लिखी थी। उक्त अभिलेख संग्रहालयों में रख दिये गये हैं।

यह स्थान बाद में सन् १७५० के आसपास बारा के बघेल राजा विक्रमादित्य के अधिकार में आ गया, जहाँ कुछ देवताओं की मूर्तियाँ रखी थीं। अब भी यह स्थान निर्जन ही है। आसपास गिट्टी–पत्थर निकालने से खदानें हो गयी हैं तथा बरसात में पानी भरा रहता है, फिर भी इसके भग्नावशेष मौजूद हैं। पुरातात्विक दृष्टिकोण से यह महत्वपूर्ण स्थान है।

साथर का टीला

फूलपुर तहसील से लगभग १२ किलोमीटर पूर्व सराय ममरेज के पास एक टीला है, जो काफी विस्तृत है। इसके निकट ही एक झील है, जो बरसात में बड़ी हो जाती है तथा टीले को तीन तरफ से घेरती है। टीले

के आसपास जो अवशेष प्राप्त होते हैं, उन्हें देखने से पता चलता है कि इस स्थान पर कभी कोई किला रहा होगा, जिसे 'भरों का कोट' कहा जाता है।

इस किले के सम्बन्ध में अभी तक विशेष तथ्य नहीं मिल पाये, परन्तु जो कुछ सिक्के आदि मिले, उनमें मुबारकशाह का नाम खुदा हुआ था। मुबारकशाह जौनपुर का सुल्तान था तथा उसका कार्यकाल १३६६ ई० से १४०१ तक था।

वैसे, यही अंतिम सत्य नहीं है क्योंकि पहले ही यह उपयुक्त स्थान रहा होगा, तभी मुबारकशाह ने यहाँ अधिकार जमाया। अर्थात्–इससे पूर्व भी यह स्थान आबाद रहा होगा।

लच्छागिरि (लाक्षागृह)

प्रयाग नगर से लगभग ३० किलोमीटर दूर हंडिया तहसील में गंगातट पर स्थित गाँव लच्छागिरि को लाक्षागृह भी कहा गया है। यह अति प्राचीन स्थान है। क्षेत्रीय जनश्रुति के अनुसार यह वही स्थान है, जहाँ पर दुर्योधन ने पाण्डवों को सपरिवार जलाने के लिये षड्यंत्र के तहत लाख का महल बनवाया था, जो देखने में असली प्रतीत होता था। इसी स्थान के आसपास वारणावत नगर होने की चर्चा की जाती है, परन्तु ऐसा कोई पुरावशेष नहीं प्राप्त होता, जिससे वारणावत का यहाँ होना प्रमाणित किया जा सके।

लाक्षांगृह प्रमाणित होने के कुछ तर्कपूर्ण प्रमाण दिये जा सकते हैं। महाभारत के अनुसार लाक्षागृह के भेद का पता चल जाने पर पाण्डव उससे निकलकर वारणावत से गंगा के किनारे–किनारे कुछ दूर तक चले थे और विदुर द्वारा भेजी गयी नौकाओं पर सवार होकर गंगा पार कर गये। यह उचित प्रतीत होता है, क्योंकि अब भी लच्छागिरि गंगा के तट पर है। मेरठ जिले के जिस बरनावा को वारणावत कहा जाता है, उसके सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि बरनावा हिंडन नदी के तट पर है और गंगा वहाँ से चालीस किलोमीटर दूर है। पाण्डव दक्षिण दिशा की ओर भागे थे। लच्छागिरि में गंगा पूर्व–पश्चिम को बहती हैं। अतः यदि पाण्डव आगे गये होंगे तो निश्चित रूप से यहाँ से दक्षिण गये होंगे। यह तर्क संगत है तथा बरनावा के सम्बन्ध में ऐसा कोई तर्क नहीं दिया जा सकता। अतः बरनावा की अपेक्षा लच्छागिरि को लाक्षागृह की संज्ञा देना ज्यादा उचित प्रतीत होता है।

वर्तमान में लच्छागिरि एक साधारण गाँव है। यहाँ पर सोमवती अमावस्या को मेला लगा करता है। उस समय इस स्थान पर गंगा–स्नान का विशेष महत्व होता है।

खुसरोबाग

जैसा कि नाम से ही जाहिर होता है कि खुसरोबाग खुसरो के नाम से बनाया गया होगा। इलाहाबाद नगर के चौक क्षेत्र के पश्चिम में ग्रैन्ड ट्रंक सड़क पर लगभग ५०० मीटर आगे जाने पर सड़क की उत्तरी पटरी

की ओर गुंबददार एक विशाल फाटक दिखायी पड़ता है। यही खुसरोबाग या 'खुसरूबाग' का मुख्यद्वार है। यहीं पर एक सराय थी, जो खुल्दाबाद के नाम से प्रसिद्ध है। सराय १७ बीघे में फैली थी, जहाँ मुसाफिरों के ठहरने के लिये कोठरियाँ भी बनी हुई थीं। यहाँ चारों ओर ऊँचे–ऊँचे फाटक हैं। इन पर सुंदर छतरियाँ बनी हुयी हैं। अब इस सराय का स्वरुप बदल गया है। यहाँ बड़ी सब्जीमंडी हो गयी है, जिसे खुल्दाबाद सब्जीमंडी के नाम से जाना जाता है।

खुसरो बाग का क्षेत्रफल ६४ एकड़ है। यह पत्थर की ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है। इसके दक्षिण की ओर साठ फीट ऊँचा द्वार है। इसी द्वार पर एक पत्थर पर फारसी में वाक्य अंकित है, जिसका भावार्थ है–"सम्राट जहाँगीर की आज्ञा से आका चित्रकार के विशेष प्रबन्ध से यह विशाल भवन बनकर तैयार हुआ है।" इसके नीचे हिजरी सन् के १०१ के अंक तो स्पष्ट हैं, लेकिन आगे एक निशान झलकता है जिसे इतिहासकारों ने शून्य ही माना है। १०१० हिजरी सन् है। इसके मुताबिक तो सन् १६०१ ईसवी होता है और इस समय अकबर का शासन था। १६०५ ईसवी में सलीम जहाँगीर गद्दीनशीन हुआ, इससे जाहिर होता है कि यह अंक कुछ और होगा। बाग के उत्तर में भी एक फाटक है, जो सादे ढंग से बना हुआ है।

बाग के पास जो बावली है, वह अब जलसंस्थान के अधीन है। इसका कुछ हिस्सा पाट दिया गया है। बाग के बीच में दो फव्वारे वाले स्थान बने हैं। सबसे पूर्वी भवन में जो एक खंड है, उसमें खुसरो की कब्र है। इस कब्र पर कुछ नहीं लिखा। यहाँ दीवारों पर फारसी में शेर लिखे हैं।

खुसरो के बारे में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उसका जन्म १५८७ में हुआ तथा युवावस्था में ही वह अपने पिता के खिलाफ बगावत कर बैठा। सन् १६०६ में उसने लाहौर को घेर लिया, लेकिन जहाँगीर ने उसे बंदी बनाकर बुरहानपुर में कैद रखा। उसे मारने के बजाय अंधा कर दिया गया था, बाद में खुसरो के भाई खुर्रम ने उसकी हत्या करा दी तथा लाश वहीं गड़वा दी, जिसे जहाँगीर उखड़वाकर यहाँ लाया और गड़वाकर इस स्थान का नाम खुसरोबाग रखा। यहीं पर एक और इमारत है, जिसे खुसरो की बहन ने अपनी कब्र के लिये बनवाया था, परन्तु बाद में इसकी लाश सिकन्दरा में गाड़ी गयी। यह खाली दो मंजिली इमारत भर है, जिसमें ऐसे तमाम वाक्य लिखे हैं, जो ईश्वर की भक्ति का इजहार करते हैं। खुसरो की मां शाह बेगम की कब्र यहीं पर बनी हुई है। यहाँ का अमरूद विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

चन्द्रशेखर आजाद पार्क

एक सौ तैंतीस एकड़ भूभाग में फैले इस पार्क की स्थापना सन् १८७० मे की गयी थी। नगर के मध्य भाग में स्थित इस पार्क के दक्षिण में महात्मा गांधी मार्ग, उत्तर में महर्षि दयानंद मार्ग, पूर्व में पन्नालाल मार्ग और पश्चिम में कमला नेहरू मार्ग है। सन् १८७० में जब अंग्रेज सम्राट जार्ज पंचम के चाचा अल्फ्रेड ड्यूक आफ एडिनबरा भारत आये तो इस राज्य के तत्कालीन लेफ्टिनेन्ट गर्वनर म्योर ने उन्हें यहाँ बुलाया तथा इस पार्क की आधारशिला रखवायी।

इस पार्क के अंदर फूलों के सुंदर बाग तथा आम, अमरूद, आँवला एवं अन्य फलों के बगीचे हैं। इसके बीच में एक गोल चबूतरा बना है, जिसे बैण्ड स्टैण्ड कहा जाता है। यह बैण्ड स्टैण्ड नगर के एक रईस बाबू नीलकमल मित्र ने सरकार को दान देकर बनवाया था। अंग्रेजों के शासनकाल में नगर के तमाम रईस यहाँ एकत्र होते थे और बैण्ड बाजे के साथ मार्चपास्ट करते थे।

आजादी की लड़ाई के समय क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद कहीं से आकर यहाँ छिपे थे और किसी की मुखबिरी पर अंग्रेजी सिपाहियों ने उन्हें घेर लिया था। उन्होंने अपनी पिस्तौल से गोलियाँ चलाकर बहुत सारे सिपाहियों को मार डाला था, एस० पी० को घायल कर दिया था, बाद में स्वयं अपनी ही पिस्तौल से खुद को गोली मार ली थी। इस अमर शहीद के नाम पर इस पार्क का नाम बदल कर चन्द्रशेखर आजाद पार्क कर दिया गया। चंद्रशेखर आजाद की ऐतिहासिक पिस्तौल अब इसी पार्क में बने इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित है। पार्क के पूर्वी हिस्से में जिस पेड़ की आड़ लेकर चंद्रशेखर आजाद ने गोली चलायी थी, वह पेड़ तो अब नहीं रहा, परन्तु उसी स्थान पर उनकी एक प्रतिमा स्थापित कर दी गयी, जहाँ हर वर्ष उनके पुण्य दिवस पर श्रद्धांजलि कार्यक्रम होता है। इसके आसपास के क्षेत्र का सुंदरीकरण किया गया है।

इस पार्क के भीतर अब कई निर्माण हो चुके हैं, जिनमें इलाहाबाद संग्रहालय, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, मदन मोहन मालवीय स्टेडियम, ज्ञानवृक्ष आश्रम, राजकीय उद्यान कार्यालय, मोतीलाल नेहरू उद्यान, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग संगीत समिति, व्यापार कर कार्यालय का एक प्रभाग आदि प्रमुख हैं।

बैण्ड स्टैण्ड के आसपास पुरानी तोपें लाकर सजा दी गयी हैं और सुंदर फलों का पार्क बनाया गया है। यहीं पर महारानी विक्टोरिया की प्रतिमा स्थापित की गयी थी। यह प्रतिमा २४ मार्च, १९०६ में तत्कालीन लेफ्टिनेंट गर्वनर जेम्स लाटूस द्वारा अनावृत्त की गयी थी, किन्तु कालान्तर में आजादी मिलने पर यह हटाकर इलाहाबाद संग्रहालय में रख दी गयी। यहीं पर जार्ज पंचम की भी प्रतिमा थी, जिसे हटा दिया गया।

अब इस पार्क के रखरखाव और व्यवस्था की ज़िम्मेदारी राजकीय उद्यान विभाग के पास है। इसे कंपनी बाग भी कहा जाता है। यहाँ प्रतिवर्ष पुष्पों और शाक–भाजी की प्रदर्शनी होती है। इसी मौके पर शहर के कुछ लोग अपने कुत्तों की भी प्रदर्शनी लगाते हैं। यह उद्यान बहुत सुंदर बना दिया गया है। जहाँ शहर के निवासी मनोरंजन के लिये सुबह शाम घूमने भी आते हैं। इसकी साज–सज्जा और रौनक बढ़ती जा रही है।

मेयो मेमोरियल हाल

सन् १८७६ ई० में अर्ल आफ मेयो की स्मृति में बनायी गयी यह इमारत आते–जाते नागरिकों का ध्यान अपनी ओर जरूर आकृष्ट करती है। अर्ल आफ मेयो अंग्रेजों के शासनकाल में भारत के गर्वनर जनरल थे, जिनकी अंडमान द्वीप (काला पानी) में सीमा के एक कैदी ने सन् १८७२ में हत्या कर दी थी।

इस इमारत की आधारशिला तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने रखी थी। मेयो मेमोरियल हाल

में एक मीनार है, जिसकी ऊँचाई १८० फीट है। मीनार के नीचे संगमरमर की एक वक्ष प्रतिमा है तथा नकली कब्र भी है।

यहाँ प्रायः खेल प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। बच्चे खेल का नियमित अभ्यास करने भी यहाँ आते हैं। सन् १९७५ में इसे स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स में बदला गया, जिसका नाम मेयोहाल स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स रखा गया है। इसी के बगल में एक स्थान है, जिसका नाम अंजुमन रूह-ए-अदब है। यहाँ रंगमंचीय कार्यक्रम होते हैं। हाल ही में शासन ने इसका नाम बदलकर प्रसिद्ध अभिनेता अमिताभ बच्चन के नाम से कर दिया है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रयाग प्राचीन काल से ही शिक्षा का केन्द्र रहा है। भरद्वाज मुनि जैसे मनीषी यहाँ रहा करते थे और समाज में ज्ञान की धारा बहाते थे। इधर ऐतिहासिक काल में भी शिक्षा के यहाँ तमाम साधन थे। प्रायः लोग शिक्षा ग्रहण करने काशी जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों ने शिक्षा के नये-नये प्रारूप अपनाये और इसी क्रम में वर्ष १८७२ में म्योर सेन्ट्रल कॉलेज की स्थापना की गयी। पहले यह कॉलेज लाउदर रोड कैस्टल में था, जिसे बाद में राजा दरभंगा ने खरीद लिया। फिर यह कॉलेज अन्यत्र स्थापित किया गया। यह स्थान वही है, जहाँ आज म्योर सेन्ट्रल कॉलेज (विज्ञान संकाय) स्थित है। यह कॉलेज राज्य सरकार के वित्तीय पोषण से संचालित होने लगा।

यह कॉलेज पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था। बाद में १६ नवंबर, सन् १८८७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। तत्कालीन अंग्रेज लेफ्टिनेन्ट गर्वनर सर अल्फ्रेड लायल शिक्षा प्रेमी और विद्वान थे, इस कारण उन्हें इस विश्वविद्यालय का प्रथम चांसलर नियुक्त किया गया।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय पहले केवल परीक्षक विश्वविद्यालय था, जहाँ से इस प्रान्त के अतिरिक्त मध्यप्रदेश, राजस्थान और मध्यभारत की तमाम शिक्षण संस्थाएँ सम्बद्ध कर दी गयी थीं। सन् १९२२ में सरकार के नये अधिनियम के तहत यह पूरी तरह शिक्षण विश्वविद्यालय बना दिया गया और इससे अन्य कॉलेजों का सम्बद्धीकरण समाप्त हो गया। इस विश्वविद्यालय के प्रथम भारतीय वाइस चांसलर सर गंगानाथ झा बनाये गये और शिक्षण के क्षेत्र में इसकी इतनी ख्याति हुई कि दूर दराज प्रान्तों के भी छात्र यहाँ शिक्षा ग्रहण करने लगे। शिक्षा, विज्ञान, कला, प्रशासन, साहित्य, राजनीति आदि क्षेत्रों में इस विश्वविद्यालय से निकले छात्रों ने अपना नाम रोशन किया, जिससे इसे "पूरब का ऑक्सफोर्ड" कहा जाने लगा। इस विश्वविद्यालय के सर अमरनाथ झा, सर सुन्दर लाल, डा० ताराचन्द, फिराक गोरखपुरी, हरिवंशराय बच्चन, डा० ईश्वरी प्रसाद, प्रो० नीलरत्न धर, प्रो० मेघनाद साहा, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, ए.सी. बक्शी, डा० बेनी प्रसाद जैसे मूर्धन्य विद्वानों ने भारत में ही नहीं, अपितु विश्वस्तर पर विविध क्षेत्रों में अपना नाम स्थापित किया। इस विश्वविद्यालय को आई०ए०एस० पैदा करने वाला विश्वविद्यालय कहा जाता था।

यद्यपि बदलते सामाजिक परिवेश में इस विश्वविद्यालय की अब वह स्थिति नहीं रही, लेकिन इसका

स्तर अन्य विश्वविद्यालयों की अपेक्षा अब भी अच्छा है। विश्वविद्यालय की इमारतें पत्थरों की बनी हैं। इनकी मीनारें आकर्षण का केन्द्र हैं। सन् १९१२ में बने सीनेट हाल में घड़ी लगी है तथा जिसकी मीनार १०० फीट ऊँची है। म्योर सेन्ट्रल कालेज का 'विजयानगरम्' हाल और सातखण्डी मीनार आते–जाते लोगों की निगाहें बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं।

विश्वविद्यालय के चार संकाय हैं। कला संकाय (सीनेट हाउस परिसर), विज्ञान संकाय (विजयानगरम् परिसर), वाणिज्य संकाय और विधि संकाय। इसके अतिरिक्त कई शोध संस्थान, मेडिकल कालेज, इंजीनियरिंग कालेज, चौधरी महादेव प्रसाद महाविद्यालय, इलाहाबाद डिग्री कालेज, जगततारन गर्ल्स डिग्री कालेज, एस. एस० खन्ना गर्ल्स डिग्री कालेज, राजर्षि टंडन महिला महाविद्यालय आदि कालेज इससे सम्बद्ध हैं।

गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ

भारतीय प्राच्य विद्या संस्कृति और संस्कृत से सम्बद्ध समस्त विधाओं में मौलिक शोध करने तथा शोध योजनाओं को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना की गयी थी। महामहोपाध्याय गंगानाथ झा ने संस्कृति और संस्कृतानुरागियों के लिये इतना शोधकार्य किया था कि वे संस्कृत के युगपुरुष बन गये थे। इसीलिये उनके नाम से विद्यापीठ का नामकरण किया गया। भवन के अभाव में सर्वप्रथम १७ नवम्बर, १९४३ को श्री मदन मोहन मालवीय के करकमलों द्वारा हिन्दू छात्रावास के एक कक्ष में इस शोध संस्थान की स्थापना की गयी। शोध योजना को कार्यरूप देने के लिये दरभंगा नरेश कामेश्वर सिंह द्वारा आर्थिक सहायता दी गयी थी। फिर ५० अन्य विद्वानों ने दान एकत्र करके इसके कार्य को आगे बढ़ाया। वर्ष १९४५ में सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत संस्थान का पंजीकरण कराने के बाद महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र के प्रयास से चन्द्रशेखर आजाद पार्क में ३ फरवरी को तत्कालीन राज्यपाल सर मारिस हैलेट के मुख्य आतिथ्य में वर्तमान भवन का शिलान्यास हुआ। १९४९ में भवन निर्मित हो जाने पर हिन्दू छात्रावास से इस संस्थान का स्थानान्तरण निजी भवन में हुआ। संस्थान के प्रथम अध्यक्ष डा० सर तेजबहादुर सप्रू थे। उनके बाद डा० भगवानदास, डा० एस० राधाकृष्णन, न्यायमूर्ति कमलाकान्त वर्मा, डा० गोपीनाथ कविराज आदि ने अध्यक्ष पद सँभाला।

डा० आदित्यनाथ झा के विशेष प्रयास से इस संस्थान को केन्द्र सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने अपने अधीन कर लिया। तब से यह संस्थान राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान से सम्बद्ध होकर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के रूप में कार्य कर रहा है। विद्यापीठ में उत्कृष्ट पुस्तकालय भी है।

वर्तमान समय में विद्यापीठ द्वारा कई महत्वपूर्ण शोध परियोजनायें चलायी जा रही हैं। इसके समृद्ध पुस्तकालय में संस्कृत भाषा के प्रायः सभी ग्रंथों समेत भारी संख्या में जर्नल एवं अन्य ग्रंथ उपलब्ध हैं। इस समय यह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का संस्कृत विद्यापीठ बन चुका है।

इलाहाबाद संग्रहालय

पुरातात्विक वस्तुओं के संग्रह से संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान होता है। प्रयाग स्थित संग्रहालय इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बनाया गया, जिसकी स्थापना सन् १९३१ में तत्कालीन क्वीन्स रोड स्थित इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड कार्यालय के एक कक्ष में हुई थी, जिसमें प्राणिशास्त्रीय नमूनों का संग्रह था। समय-समय पर हुई ऐतिहासिक स्थलों की खुदाई से निकली वस्तुओं के भंडार बढ़ने से इस कक्ष में स्थानाभाव हो गया। फलतः एक बड़े संग्रहालय की आवश्यकता समझी गयी। श्री जवाहर लाल नेहरू की रुचि पर तत्कालीन कमिश्नर डा० पन्नालाल के प्रयास से तत्कालीन अल्फ्रेड पार्क (अब चन्द्रशेखर आजाद पार्क) में एक एकड़ भूमि संग्रहालय के लिये मिल गयी। दिसम्बर १९४७ में जब श्री नेहरू प्रधानमंत्री के रूप में प्रयाग आये तो उन्होंने नये संग्रहालय भवन की आधार-शिला रखी।

नये संग्रहालय भवन का निर्माण १९५२ में पूरा हुआ और इसके तत्कालीन प्रशासक श्री अंबादत्त पंत के प्रयास से संग्रहालय के लान के लिये चार एकड़ भूमि मिल गयी, जिसमें सुंदर लान बना दिया गया। इसके बाद संग्रहालय के विभिन्न कक्षों में उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री व्यवस्थित कर दी गयी। श्री सतीश चन्द्र काला, जो संग्रहालय में पंत जी के ही साथ थे, जब दिल्ली गये तो श्री जवाहर लाल नेहरू ने अपने आवास से बहुत सी सामग्री दी और कहा कि इसे हिफाजत से रखना।

सन् १९५४ के कुंभ मेले के अवसर पर संग्रहालय की दीर्घाएँ दर्शकों के लिये खोल दी गयीं। संग्रहालय के सर्वांगीण विकास हेतु प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डे की अध्यक्षता में सन् १९८६ में इलाहाबाद संग्रहालय समिति का गठन किया गया, जिसे स्वायत्तशासी संस्था के रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

संग्रहालय में विविध प्रकार के संकलन हैं। इनमें प्रागैतिहासिक काल के उपकरण, सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेष, प्रस्तर मूर्तियाँ, सिक्के, मुद्राएँ, ताम्रपत्र, मृद्भाण्ड, अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र, पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ, श्री जवाहर लाल नेहरू के परिवार की निजी प्रयोग की वस्तुएँ, स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित सामग्री, प्रेमचंद, निराला, पंत आदि साहित्यकारों की रचनाओं की पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं। संग्रहालय में छः हजार से अधिक कलाकृतियों का संग्रह है। ये मृण्मूर्तियां कौशाम्बी, मथुरा, अहिच्छत्र राजघाट, चन्द्रकेतुगढ़, झूँसी आदि स्थानों से लायी गयी हैं। ढेर सारी मूर्तियाँ जमसोत, खोह आदि से भी लायी गयी हैं। इनके अलावा राजस्थानी शैली में चित्रित रागमाला लघुचित्र, रूसी कलाकार निकोलस रोरिक एवं जर्मन भिक्षु अनगारिक गोविन्द के चित्रों का संग्रह, आधुनिक बंगाल शैली के चित्र, अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की ऐतिहासिक पिस्तौल, बौद्ध थंका चित्रों का संकलन भी संग्रहालय में रखा गया है।

यहाँ पर एक समृद्ध पुस्तकालय भी है, जिसमें पुरातात्विक विषयों की विभिन्न शाखाओं की पुस्तकें, धर्म, दर्शन, संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य की पुस्तकें, इन्साइक्लोपीडिया (विश्व कोष) तथा बहुत सी शोध पत्रिकाएँ भी हैं।

संग्रहालय में छायाचित्र अनुभाग, रसायन प्रयोगशाला, अनुकृति अनुभाग तो है ही, पुस्तकों का प्रकाशन

भी यहाँ से किया जाता है। विगत कुछ वर्षों से संग्रहालय की शैक्षिक गतिविधियाँ भी बढ़ी हैं। यहाँ समय–समय पर परिचर्चाएँ गोष्ठियाँ, व्याख्यान, कार्यशालाएँ, पुरातात्विक पाठ्यक्रम आदि चलाये जाते हैं, जिनसे लोगों का ज्ञानार्जन हो रहा है।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

प्रयाग में समय–समय पर कुछ ऐसे कार्य हुए हैं, जिनसे समाज को नयी दिशा मिली है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी की स्थापना भी कुछ ऐसा ही प्रयास था। हिन्दुस्तानी एकेडेमी का उद्घाटन २६ मार्च, १६२७ को तत्कालीन प्रान्तीय गवर्नर सर विलियम मैरिस द्वारा किया गया। हिन्दी और उर्दू की श्रीवृद्धि तथा दोनों भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्य का अनुवाद प्रस्तुत करने के लिये एक संस्था की आवश्यकता महसूस की जाती रही है। इसके लिए सर्वप्रथम श्री यज्ञ नारायण उपाध्याय ने वर्ष १६२५ में वाराणसी में सम्पन्न हुई प्रान्तीय धारा सभा में एक प्रस्ताव रखा, जिसे सभी ने मंजूरी दे दी और इसी के बाद तत्कालीन शिक्षामंत्री राय राजेश्वर बली ने सभा को बताया कि शासन स्वयं इस दिशा में सोच रहा है। अप्रैल १६२६ में हाफिज हिदायत हुसैन ने प्रान्तीय धारा सभा में एक और प्रस्ताव रखते हुए संस्था का नाम हिन्दुस्तानी एकेडेमी दिया।

प्रारम्भ से लेकर सन् १६५७ तक हिन्दुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिन्दी और उर्दू साहित्य की रक्षा तथा उन्नति करना रहा है, किन्तु १६५७–५८ में इसके विधान में नये कार्यक्रम जोड़कर क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया। इन नये कार्यक्रमों के तहत कृतियों का प्रकाशन, संदर्भग्रंथों का प्रकाशन, विभिन्न बोलियों के साहित्य का परीक्षण एवं संवर्धन आदि शामिल थे।

डा० सर तेज बहादुर सप्रू इसके पहले अध्यक्ष थे। इसके बाद, राय राजेश्वर बली, न्यायमूर्ति कमलाकान्त वर्मा, बालकृष्ण राव, सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी, डा० राम कुमार वर्मा, डा० जगदीश गुप्त, डा० रामकमल राय तथा श्री हरिमोहन मालवीय अध्यक्ष हुए हैं।

एकेडेमी में प्रायः सम्मेलन, गोष्ठियाँ, परिचर्चाएँ, व्याख्यानमालाएँ और अन्य कार्यक्रम होते रहते हैं। यहाँ पं० बालकृष्ण भट्ट की मूर्ति स्थापित है। यहाँ एक पुस्तकालय भी है, जिसमें भाषाशास्त्र, कोष तथा उत्तर मध्ययुगीन साहित्य से संबंधित ग्रंथ हैं।

सुर साधना केन्द्र : प्रयाग संगीत समिति

भारतीय शास्त्रीय संगीत का भविष्य उज्जवल बनाने तथा संगीत कला को और निखारने के उद्देश्य से सन् १६२६ ई० में प्रयाग संगीत समिति की स्थापना हुई। इसकी स्थापना के पीछे बी० ए० कुशालकर जी की प्रेरणा और नगर के संगीत प्रेमियों की तपस्या रही है। संगीत समिति के प्रथम भवन का निर्माण १६३६ में साउथ मलाका मुहल्ले में और दूसरा १६५५ में कंपनी बाग (तत्कालीन अल्फ्रेड पार्क) में हुआ।

प्रयाग संगीत समिति के संस्थापकों में सर तेज बहादुर सप्रू, सी०वी०आई० चिंतामणि तथा मेजर वैजनाथ सहाय के अलावा और भी संगीतप्रेमी थे, जिन्होंने गायन, वादन और नृत्य तीनों विधाओं पर शोधपरक कार्य के साथ–साथ संगीत के नये–नये विषयों का ज्ञान जिज्ञासुओं को दिलाने का उद्देश्य रखा था। उसका परिणाम यह रहा कि इस संस्थान ने राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकार पैदा किये।

समिति के ही अन्तर्गत १६२६ में विष्णु दिगंबर एकेडेमी आफ म्यूजिक की स्थापना हुई। समिति का पूर्ण पाठ्यक्रम आठ वर्षों का है, जिनमें जूनियर डिप्लोमा, सीनियर डिप्लोमा, संगीत प्रभाकर और संगीत प्रवीण की उपाधियाँ प्रदान की जाती है। संगीत प्रवीण या उसके समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण करके जो छात्र शोध कार्य करना चाहते हैं, उन्हें विद्वत्तापूर्ण निबंध प्रस्तुत करने पड़ते हैं। उत्तीर्ण होने पर संगीताचार्य की उपाधि दी जाती है।

वर्तमान समय में समिति के लगभग १४०० मान्यता प्राप्त परीक्षा केन्द्र हैं, जो सम्पूर्ण भारत में हैं। समिति का एक मुक्तांगन कंपनी बाग वाली शाखा में एक एकड़ भूमि पर बना हुआ है। यह अत्यंत आकर्षक ढंग से बना है। यहाँ पहुँचकर प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों का भान होता है। समिति का एक पुस्तकालय है, जिसमें गायन, वादन, नृत्य और नाटक की शोधपूर्ण उत्कृष्ट पुस्तकें हैं।

सुमित्रानंदन पंत बाल उद्यान (हाथी पार्क)

बच्चों के मनोरंजन के लिये वर्ष १६६५ में स्थापित इस पार्क को नगर महापालिका के इंजीनियरों ने बनाया था। जापानी पद्धति पर आधारित इस पार्क की डिजाइनिंग विकलांग केन्द्र के निदेशक डॉ० ज.ब. बनर्जी ने की थी।

पार्क में सुंदर छोटी झील, उस पर खिले कुमुदिनी के फूल बच्चों का ही नहीं बड़े लोगों का भी ध्यान खींचते हैं। इस पार्क का सबसे प्रमुख आकर्षण पत्थर का विशालकाय हाथी है, जिसमें बच्चे पीछे से घुसकर आगे आते हैं और ऊँचाई से फिसलने का मजा लेते हैं।

ढाई एकड़ क्षेत्र में बने इस पार्क में पहले तो कई बड़े जानवर भी थे, लेकिन अब नहीं हैं। यहाँ झूले और आकर्षक लान हैं। कई सजावटी पेड़ पार्क की शोभा बढ़ाते हैं।

पहले इस पार्क का नाम हाथी पार्क था। लेकिन कालान्तर में प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत के देहावसान के बाद उनकी स्मृति में इसका नाम सुमित्रानंदन पंत बाल उद्यान कर दिया गया। वर्तमान में इसका रखरखाव इलाहाबाद विकास प्राधिकरण करता है।

भरद्वाजपार्क

भरद्वाज आश्रम के ठीक बगल में स्थापित यह पार्क बहुत पुराना है, किन्तु इसका विकास वर्ष १६८६ में इलाहाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा कराया गया। पौने तीन एकड़ क्षेत्र में बने इस पार्क का सुंदर लान और

रंग बिरंगे मौसमी फूल सैलानियों के लिये आकर्षण का केन्द्र होते हैं। चार खण्डों में विभाजित इस पार्क में सुंदर हरे–भरे लान तो हैं ही, गंगा–अवतरण का दृश्य भी मनोहारी है। कल–कल बहता कृत्रिम झरना और उस पर रंग–बिरंगी रोशनी की चमक जल में बिखरे मोतियों–जैसी छटा बिखरेती है।

पार्क में बच्चों के मनोरंजन के लिये कई तरह के झूले लगे हुए हैं और फिसलने के लिये ढलान भी बने हैं। नगर निगम को मिले अनुदान से विकसित इस पार्क को विकास प्राधिकरण ने वर्ष १९८९ में आम जनता को समर्पित किया था। वर्तमान में सायंकाल यहाँ घूमने वालों की भारी भीड़ होती है।

स्वराज भवन

स्वराज भवन आजादी के दीवानों का वह मुकाम है, जहाँ बैठकर अँग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन चलाने के लिये कई महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये थे। महात्मा गाँधी ने यहाँ बैठकर देश के कांग्रेसियों और आजादी के दीवानों का मार्ग निर्देशन किया है। यह वही स्थान है, जहाँ जंग–ए–आजादी के लिये नेहरू, आचार्य कृपलानी, सैयद मोहम्मद सादिक अली आदि नेताओं ने गंभीर विचार विमर्श किया था।

यह भवन मोतीलाल नेहरू ने सन् १९०० में मुरादाबाद के राजा कुँवर परमानन्द से खरीदा था। उन्होंने इस भवन का नाम आनंद भवन रखा। अपने बेटे जवाहरलाल के लिये उन्होंने उस जमाने की सभी आधुनिक सुविधाएँ इसमें जुटायी थीं। सन् १९१६ में उन्होंने यह भवन काँग्रेस को अपने कार्यों के संचालन के लिये सौंप दिया। यहीं पर नीतिनिर्धारण करके आजादी के लिये आंदोलन चलाया जाने लगा। यही वह स्थान है, जहाँ से एक विज्ञापन निकाला गया कि एक समाचार पत्र के लिये एक सम्पादक चाहिये, जिसे वेतन तो नहीं दिया जायेगा, लेकिन काम करने पर जेल जाना पड़ सकता है। इसके लिये भी उस समय दर्जनों सम्पादक आते गये, जिन्हें जेल की हवा खानी पड़ी।

सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान इस भवन के टेलीग्राफ तार काट दिये गये, ताकि सत्याग्रही अपना कोई संदेश कहीं भेज न सकें। इसी भवन में प्रियदर्शिनी इंदिरा का जन्म हुआ था। ऐतिहासिक महत्व के इस भवन को श्री मोतीलाल नेहरू ने वर्ष १९३० में राष्ट्रीय कार्यों के लिये देने का वायदा किया और २४ नवम्बर, १९३१ को श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने पिता का वायदा पूरा कर दिया। इसका नाम स्वराज भवन रख दिया गया। बहुत कम लोगों की मालूम होगा कि इस भवन के पानी, बिजली तथा नगर निगम के कर की रसीद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के नाम से अब भी आती है। पैसा स्वराज भवन ट्रस्ट जमा करता है। स्वराज भवन ट्रस्ट की वर्तमान अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गाँधी हैं।

स्वराज भवन संग्रहालय

पूर्व प्रधानमंत्री स्व० राजीव गांधी ने स्वराज के महत्व को समझते हुये यहाँ संग्रहालय की स्थापना का मन बनाया तथा १२ नवम्बर, १९८९ को उसकी आधारशिला भी रख दी। इस अवसर पर आयोजित समारोह

की अध्यक्षता तत्कालीन मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी ने की थी। यह संग्रहालय वर्ष १६६४ में बनकर तैयार हुआ, जो स्व० राजीव गांधी के जन्म दिवस पर २० अगस्त को आम जनता के लिये खोल दिया गया।

अत्याधुनिक उच्च तकनीक से बने इस संग्रहालय को सात भागों में विभाजित किया गया है, जिसमें श्रव्य–दृश्य माध्यम से स्वराजभवन स्वयं नेहरू परिवार तथा आजादी की लड़ाई की दास्तान बताता है। स्वचालित तकनीक से दिखाये जाने वाले इस कार्यक्रम को लगभग ४६ मिनट में देखा जा सकता है। यह स्वराज भवन के सात बड़े कक्षों में स्थापित है, जिसमें अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओं का प्रयोग होता है। दर्शक अपनी इच्छा से जो भाषा पसंद करें, उसमें सारी कहानी सुन सकते हैं। यह अत्याधुनिक तकनीक है।

इसी भवन के बगल में जवाहर बाल भवन है। यहाँ बच्चों के लिये ज्ञानवर्धक कार्यक्रम चलाये जाते हैं, ताकि उनका भविष्य उज्जवल हो सके। यहीं परिसर में ही एक नेशनल चिल्ड्रेन इंस्टीट्यूट भी है, जहाँ पर अनाथ बच्चों का पालन पोषण होता है।

आनंद भवन

श्री मोतीलाल नेहरू ने जब महसूस किया कि उनके आवासीय भवन में कार्यालय चलने से परिवारजनों को परेशानी हो रही है तो उन्होंने सन् १६२७ में एक नया भवन बनवाया, जिसका नाम आनंदभवन रखा गया। इसमें भी कांग्रेस कमेटी ने एक कक्ष ले लिया, ताकि बैठकें की जा सकें। यहाँ एक अच्छा–सा पुस्तकालय भी था। श्री जवाहरलाल नेहरू ने स्वाधीनता का अपना ऐतिहासिक घोषणापत्र यहीं बैठकर लिखा था, जिसे उन्होंने लाहौर में अध्यक्षीय भाषण में सुनाया था। इसी के बाद नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू हुआ।

आनंद भवन में ही वह स्थान है, जहाँ पर सन् १६४२ में "अंग्रेजो, भारत छोड़ो" प्रस्ताव बनाया गया और बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में रखे जाने पर अंग्रेजों के लिये मौत की घंटी साबित हुआ। यहीं पर स्वरूपरानी नेहरू, कमला नेहरू, इंदिरा गांधी के अपने–अपने कक्ष हैं। यह भवन अब जवाहर लाल नेहरू स्मारक निधि के अधीन है, जिसे सन् १६७० में श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने पिता की स्मृति में दान कर दिया था। इसमें नेहरू परिवार की वे सारी वस्तुएँ संगृहीत हैं, जिन्हें वे अपने निवासकाल में प्रयोग करते थे। यह भवन नगर के कर्नलगंज मुहल्ले से लगा हुआ है।

जवाहर प्लैनेटेरियम

आनंद भवन परिसर के दक्षिणी भाग में एक मंदिरनुमा भवन जवाहर प्लैनेटेरियम या जवाहर तारामंडल कहलाता है। इस भवन के अंदर गुंबदनुमा पर्दे पर कृत्रिम रूप से आकाश दिखाकर समस्त तारे दिन में दिखाये जाते हैं। इससे विभिन्न तारों की स्थिति उनका संचालन तथा भूत–भविष्य में उनके प्रभाव आदि को प्रदर्शित किया जाता है।

यह प्लैनेटेरियम खगोलशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये खास उपयोगी है। इसके अंदर एक साथ ८० लोग बैठकर तारामंडल का रहस्यमय आनंद ले सकते हैं। ग्रहों, उपग्रहों की रफ्तार तथा सूर्यमंडल का विवरण भी इसमें स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इलाहाबाद के गिरजाघर

इलाहाबाद के गिरजाघरों का इतिहास १६वीं शताब्दी से शुरू होता है, जब यहाँ अंग्रेजों का शासन था। अंग्रेज चूँकि ईसाई धर्म के अनुयायी थे, इसलिए उन्होंने प्रार्थना सभाओं एवं धर्म के प्रचार के लिए गिरजाघरों की स्थापना की।

होली ट्रिनिटी गिरजाघार

नगर के चर्च लेन क्षेत्र में स्थित होली ट्रिनिटी गिरजाघर सबसे पुराना है। यह गिरजाघर सन् १८३६ में बनकर तैयार हुआ। इसकी डिजाइन लंदन के एक पुराने गिरजाघर पर आधारित है। गिरजाघर का निर्माण स्वैच्छिक दानदाताओं के सहयोग से हुआ। विलियम मांकटन नामक दानदाता ने इसमें सर्वाधिक सहयोग किया था। गिरजाघर ४ अप्रैल, १६४१ को रविवार के दिन पहले पहल सेवा के लिए खोला गया। इसमें ५०० लोगों के बैठने की व्यवस्था है। यह गिरजाघर प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों का है।

आल सेन्ट्स कैथेड्रल (पत्थर गिरजाघर)

महात्मागांधी मार्ग के चौराहे पर स्थित यह गिरजाघर नगर के सभी गिरजों से बड़ा और आकर्षक है। पत्थर की शिलाओं से बना होने के कारण इसे पत्थर गिरजाघर कहा जाता है। लखनऊ डायसिस के प्रथम बिशप श्री क्लिफर्ड की स्मृति में बनाये गये इस गिरजाघर की भवन निर्माण योजना सीधे ब्रिटेन से लायी गयी, जिसकी डिजाइनिंग श्री विलियम इमर्सन ने की थी। गिरजाघर की आधारशिला तत्कालीन गवर्नर सर विलियम म्योर की पत्नी एलिजाबेथ इंठलीम्योर ने सन् १८६७ में रखी थी।

गिरजे के निर्माण हेतु सफेद और लाल रंग के पत्थर सूरजपुर से लाये गये थे। गिरजाघर एक बड़े भूभाग पर स्थापित है, जिसमें चार मीनारें हैं। इसके अंदर एक हजार लोग बैठकर प्रार्थना कर सकते हैं। नगर में भ्रमण के उद्देश्य से आने वाले लोग यह गिरजाघर देखने अवश्य जाते हैं। प्रत्येक रविवार को प्रातःकाल ईसाई समुदाय के लोग यहाँ प्रार्थना सभा में नियमित रूप से जाते हैं।

सेंट पीटर्स गिरजाघर

नगर के म्योराबाद मुहल्ले में अवस्थित पीटर्स गिरंजाघर म्योराबाद चर्च के नाम से जाना जाता है,

जिसकी आधारशिला १७ मई, १८७२ को तत्कालीन गवर्नर सर विलियम म्योर एवं उनकी पत्नी ने रखी थी। सुन्दर मैदान में स्थित गिरजाघर का वाह्यस्वरूप एक बंगला जैसा लगता है। यहाँ भी प्रत्येक रविवार को प्रार्थना सभा होती है।

सेन्ट जोसफ गिरजाघर

सेन्ट जोसफ कालेज के परिसर में अवस्थित गिरजाघर की स्थापना ३ सितम्बर, १८७१ को हुई थी। इटैलिया फर्म 'मेसर्स फ्रिजोनी एण्ड कम्पनी' द्वारा निर्मित इस गिरजाघर की आधारशिला डा० तोसी ने रखी थी। सम्पूर्ण निर्माण के पश्चात् गिरजाघर ११ फरवरी, १८७६ को सेन्ट जोसफ के नाम पर समर्पित कर दिया गया। सन् १६०५ में इसके टावर में घड़ी लगा दी गयी।

यह गिरजाघर रोमन कैथोलिक ईसाइयों का है। फादर धीरानंद भट्ट बताते हैं कि गिरजे में कई धार्मिक आयोजन हो चुके हैं। इसका शताब्दी समारोह १६७६ में मनाया गया, जिसमें भारी संख्या में ईसाई समुदाय के लोग शामिल हुए थे। गिरजाघर अत्यंत आकर्षक लगाता है।

उक्त गिरजाघरों के अलावा सेन्ट थामस आर्थोडाक्स सीरियन गिरजाघर पुराना कैन्ट, सेन्ट पाल्स गिरजाघर कमलानेहरू मार्ग, ओल्ड यूनियन चर्च एल्गिन रोड, चौक में कोतवाली के समीप गिरजाघर भी हैं, जिनमें ईसाई समुदाय के लोग प्रत्येक रविवार को प्रार्थना करने जाते हैं।

गुरुद्वारे

प्रयाग की सांस्कृतिक परम्परा में मंदिरों, मस्जिदों एवं गिरजाघरों की तरह गुरुद्वारों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अब से करीब सवा तीन सौ साल पहले जब सिखों के गुरु तेग बहादुर जी प्रयाग आये तो वे गंगा तट पर ठहरे। उस समय गंगा तट कल्याणी देवी के निकट था। गंगा में स्नान करने के पश्चात् गुरु माता ने उनसे एक तेजस्वी पुत्र का आशीर्वाद मांगा। गुरु तेगबहादुर प्रसन्न हो गये और उन्हें आशीर्वाद दे दिया। परिणाम स्वरूप पटना साहिब में गुरु गोविन्द सिंह जी का जन्म हुआ।

गुरु तेगबहादुर के तेज, तप और ज्ञानपूर्ण उपदेश से प्रयाग में भी उनके बहुत से अनुयायी हो गये। अनुयायियों ने उस पवित्र स्थल पर, जहाँ गुरु तेगबहादुर ठहरे थे, एक छोटा सा गुरुद्वारा बना दिया। यह गुरुद्वारा कल्याणी देवी में स्थित है, जिसे पक्की संगत के नाम से भी पुकारा जाता है। यही प्रयाग का सबसे प्राचीन गुरुद्वारा है, जो सिख भाइयों के अथक प्रयासों से भव्य रूप ले चुका है। इस गुरुद्वारे में प्रातःकाल से लेकर देर रात तक सिख धर्मावलंबियों समेत अन्य धर्मों के लोग भी मत्था टेकने जाते हैं।

इलाहाबाद शहर और इसके समीप कुछ और गुरुद्वारे हैं, जो भारत और पाकिस्तान के बँटवारे के समय

बनाये गये। जब भारत को आजादी मिली और पाकिस्तान अलग हो गया तो भारी संख्या में पाकिस्तानी क्षेत्र से सिखों का पलायन हुआ। जो सिख प्रयाग आकर बसे, उन्होंने अपने लिए उपयुक्त स्थानों पर गुरुद्वारों का निर्माण कराया।

शहर के खुल्दाबाद मुहल्ले में स्थित गुरुद्वारा एक बड़े भूभाग पर स्थित है। इसके अंदर गुरुग्रंथ साहिब दरबार है, जहाँ ग्रंथी और रागी निवास करते हैं। इस गुरुद्वारे के भीतर आवासीय व्यवस्था भी है। सिख समुदाय के वैवाहिक तथा अन्य सामूहिक अवसरों पर गुरुसिंह सभा आवासीय खण्ड को जरूरतमंद व्यक्ति को उपलब्ध कराती है। इस गुरुद्वारे की ओर से अन्य गुरुद्वारों के लिए सभी अन्य आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं। विभिन्न सिख पर्वों पर इस गुरुद्वारे से शोभायात्राएँ निकाली जाती हैं।

इसके अलावा मीरापुर, सदियापुर और मनौरी में भी गुरुद्वारे हैं। मीरापुर का गुरुद्वारा भी आजादी के आस–पास का बना हुआ है और सदियापुर का गुरुद्वारा भी। सदियापुर का गुरुद्वारा केवट समुदाय के लोगों ने बनाया था। दरअसल आजादी के समय जब भारत पाकिस्तान का बँटवारा हुआ था तो बड़े पैमाने पर हिंसा हुई थी। यमुना किनारे रहने वाले सदियापुर के कुछ केवटों ने सिख धर्म अपना लिया और आत्मरक्षा के लिए संघर्ष किया। वहीं गुरुद्वारे की स्थापना कर दी।

मनौरी के इलाहाबाद कानपुर रोड पर बना गुरुद्वारा भी अत्यंत भव्य है। यहाँ चौबीस घंटे लंगर की व्यवस्था रहती है। इनके अलावा कैन्ट क्षेत्र में भी गुरुद्वारे बने हुए हैं। इन सभी गुरुद्वारों को नगर के हर वर्गों के लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

हिन्दी भारत की प्रमुख भाषा है। भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये भारत के विभिन्न क्षेत्रों के निवासी हिन्दी का सर्वाधिक प्रयोग करते हैं। इस भाषा का उत्थान करने और जनसाधारण तक पहुँचाने के लिये हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सन् १९१० में स्थापित इस संस्था ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार और उसकी श्रीवृद्धि के लिये उल्लेखनीय कार्य किया है। अंग्रेजों के शासनकाल में जब संपूर्ण भारत पर अंग्रेजी का कोहरा छाया हुआ था तो उसे चीरने के लिये श्री मदन मोहन मालवीय–जैसे स्वतंत्रता सेनानियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

वस्तुतः हिन्दी साहित्य सम्मेलन श्री मदन मोहन मालवीय जी की कल्पना थी, जिसे साकार रूप देने में राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन ने अमूल्य योगदान किया। टंडन जी जानसेनगंज मुहल्ले में एक किराये के मकान में रहते थे। श्री वियोगी हरि ने एक जगह लिखा है कि उसी किनारे के मकान के एक कमरे में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का काम होता था, इसीलिये उसे सम्मेलन वाला कमरा कहते थे। एक मई, १९१० को नागरी प्रचारिणी सभा का सम्मेलन हुआ, जिसमें निश्चय किया गया कि एक हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी किया जाय

और उसी निर्णय के अनुसार १० अक्टूबर, १६१० को श्री मदन मोहन मालवीय के सभापतित्व में काशी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन किया गया, जिसमें कुल ५०० सौ प्रतिनिधि शामिल थे। इसके बाद वर्ष १६११ में प्रयाग में दूसरा सम्मेलन हुआ, जिसका सभापतित्व पुरुषोत्तम दास टंडन ने किया और इसी सम्मेलन में एक संस्था जैसे विधिवत कार्य करने के लिये नियमावली तैयार की गयी। तब से यह संस्थान निरन्तर कार्य करता चला आ रहा है। वर्ष १६६२ में भारत सरकार ने इसे राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित करते हुये अधिग्रहण कर शासी निकाय का गठन किया, किन्तु मामला सर्वोच्च न्यायालय में चला गया फिर निर्णय आ जाने पर शासी निकाय वाली व्यवस्था समाप्त हो गयी। सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में महात्मा गांधी ने इसके सभापतित्व का दायित्व निभाया था।

सम्मेलन को देश के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों का सान्निध्य एवं निर्देशन मिला है। आज भारत के प्रायः सभी राज्यों में इसकी शाखाएँ हैं। सम्मेलन विविध विषयों पर परीक्षाएँ सम्पन्न कराता है तथा उपाधियाँ प्रदान करता है। इसके अनेक गौरवशाली प्रकाशन हैं। सम्मेलन का पुस्तकालय और संग्रहालय समृद्ध है। इसके पूर्व प्रधानमंत्री डा० प्रभात शास्त्री के विशेष प्रयास से सम्मेलन परिसर में 'राजर्षि टंडन मण्डपम्' नामक विशाल प्रेक्षागृह स्थापित किया गया, जो प्रयाग का अद्वितीय प्रेक्षागृह है।

मदन मोहन मालवीय उद्यान (मिन्टो पार्क)

यमुना नदी के तट पर कीडगंज मुहल्ले से लगा हुआ यह पार्क वर्ष १६१० में बना था, जिसका शिलान्यास भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो ने किया था। इसीलिये इसका नाम मिन्टोपार्क रखा गया। यह पार्क इसलिये भी यहाँ बनाया गया, क्योंकि १८५७ की गदर के बाद माहौल शांत होने पर इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया इलाहाबाद आयी थीं और उन्होंने इसी स्थान पर अपना घोषणा–पत्र पढ़ा था। इस घोषणा–पत्र में भारतीयों के हित में अनेक वाक्य कहे गये थे। काफी समय के बाद श्री मदन मोहन मालवीय ने कुछ वाक्य एक पत्थर पर अंकित कराकर यहाँ लगवाये थे।

इस पार्क में सुंदर–सा बगीचा है। पार्क साढ़े तेरह एकड़ भूभाग पर फैला हुआ है। अब मिन्टोपार्क का नाम बदलकर मदनमोहन मालवीय पार्क कर दिया गया है। वर्तमान में यह नगर के सुंदर पार्कों में से एक है। यहाँ एक विशाल अशोक स्तम्भ खड़ा है तथा चारों ओर अशोक के वृक्ष लगे हैं। यहाँ नगर के लोग सुबह–शाम घूमने भी आते हैं।

घण्टाघर

किसी भी शहर में बने घण्टाघर उसके मुख्यभाग के प्रतीक माने जाते हैं। इलाहाबाद शहर के चौक क्षेत्र में बनाया गया घंटाघर पुराने शहर के मुख्य भाग में स्थित है। शहर के राय बहादुर लाला राम चरनदास

तथा उनके भतीजे लाला विशेशरदास ने अपने–अपने पिता लाला मनोहरदास और उनके पुत्र लाला मुन्नीलाल की स्मृति में सन् १९१३ में यह घण्टाघर बनवाया था। घण्टाघर की मीनार पर चारों दिशाओं में घड़ियाँ लगी हैं।

अब भी यह घंटाघर उसी तरह है तथा इसके सामने समाजवादी नेता कल्याण चन्द्र मोहिले उर्फ छुन्ननगुरु की मूर्ति लगी हुई है। इसके आसपास दुकानें हैं तथा तीन तरफ से सड़कें निकली हुई हैं।

ऐतिहासिक नीम का पेड़

पेड़ तो पेड़ है, लेकिन जब किसी पेड़ के साथ धर्म या इतिहास जुड़ जाये तो उसका महत्व बढ़ जाता है। संगम तट के निकट किले में अक्षयवट का धार्मिक महत्व है। विश्वविद्यालय के अंदर बरगद का पेड़ इसकी प्राचीनता का प्रतीक बन चुका है। उसी प्रकार चौक स्थित नीम का पेड़ अँग्रेजों के दास्तान–ए–जुल्म का गवाह है। न जाने आजादी के कितने दीवानों को इसने अपनी शाखाओं में लटकाकर उनके प्राणान्त किये होंगे।

वर्तमान लोकनाथ चौराहे से कोतवाली की ओर बढ़ने पर पंसारियों के सामने यह नीम का पेड़ आज भी खड़ा है। वैसे तो इसमें कम ही शाखाएँ बची हैं। जब यह पेड़ अपनी जवानी पर था तो इसमें कई शाखाएँ थीं। देश की आज़ादी के लिये अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ बगावत करने वालों को इस पेड़ पर लटकाकर सार्वजनिक फाँसी दी जाती थी, ताकि कोई दुबारा बगावत के लिये हिम्मत न जुटा सके। इसके बावजूद उस दौरान भी नौजवानों में जोश था। देश के प्रति समर्पण भावना थी। परिणाम यह हुआ कि एक साथ आठ–आठ लोगों को इस पेड़ में फाँसी दी गयी, पर आजादी के दीवानों का जोश कभी कम नहीं हुआ।

प्राचीन मस्जिदें और कब्रें

यद्यपि नगर के विभिन्न इलाकों मे बहुत सी मस्जिदें हैं, परन्तु कुछ मस्जिदें इतनी पुरानी हैं कि ऐतिहासिक महत्व भी है। सबसे पुरानी मस्जिद बहादुरगंज मुहल्ले में दायराशाह मुहिबउल्लाह की है, जो सन् १६५२ ई० में बनी थी। इसके बाद १६७७ ई० में दायराशाह अजमल, १६९६ में दायराशाह हुज्जतउल्लाह और सन् १७८४ ई० में खुल्दाबाद की मस्जिदें बनायी गयीं। रेलवे स्टेशन के पास सिविल लाइंस में कदम रसूल की मस्जिद है, जो सन् १७७२ में बनी थी। इस मस्जिद के एक छोटे कमरे में पैरों के दो निशान बने हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि ये मुहम्मद साहब के पैरों के निशान हैं।

इस्लाम धर्मानुयायियों से सम्बन्धित सबसे पुरानी कब्र बहादुरगंज में शाह मुहिबउल्लाह की है, जो सन् १६४८ ईस्वी की बनी हुई है। दायराशाह अजमल में शाह मुहम्मद अफजल की कब्र भी पुरानी है। यह १७१२ में बनी। कीडगंज में भी एक पुराना कब्रिस्तान है। इसमें सबसे पुरानी कब्र लेफ्टिनेन्ट कर्नल ए. डब्लू. हियरसी की है, जो १७६८ की बनी है। ले० कर्नल हियरसी किले के सबसे पहले कमांडेंट थे।

नगर निगम

नगर निगम का गठन अंग्रेजों के शासन काल में सन् १६१० में म्युनिसिपल बोर्ड के रूप में हुआ था। कालान्तर में इसका नाम नगर पालिका, फिर नगर महापालिका और अब नगर निगम हो गया है। पहले म्यूनिसिपल बोर्ड का चेयरमैन अंग्रेज कलेक्टर होता था। जब म्यूनिसिपल बोर्ड बना तो कार्यालय के लिए भवन की तलाश हुई। तत्कालीन १, क्वीन्स रोड (अब सरोजनी नायडू मार्ग) पर एक होटल था, जिसे मिसेज लारी नामक अंग्रेज महिला चलाती थीं, को कार्यालय बनाया गया। उल्लेखनीय है कि वर्ष १८६२ में इस भवन का मूल्य चार हजार रुपये आँका गया था। भवन मिल जाने के बाद कार्यालय शुरू हुआ। इसके चेयरमैन द्वारा बोर्ड के संचालन की बात आयी तो १० अक्टूबर, १६१६ को लाला शिवचरण लाल बी० ए०, एल० एल० बी० प्रथम निर्वाचित चेयर मैन बने। दूसरे चेयरमैन राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन हुए, जिन्होंने तीन जनवरी १६२१ को अपनी कुर्सी सँभाली। तीसरे चेयरमैन श्री कामता प्रसाद कक्कड़ २३ मार्च, १६२२ को निर्वाचित किये गये। तत्पश्चात् श्री जवाहर लाल नेहरू ने चौथे चेयरमैन के रूप में म्यूनिसिपल बोर्ड का कामकाज संभाला। इसके बाद कई चेयरमैन हुये। वर्ष १६६० में नगर पालिका का नाम नगर महापालिका किया गया और विश्वम्भर नाथ पाण्डेय प्रथम नगर प्रमुख बने। उनके पश्चात् १० नगर प्रमुख बने। सन् ७४ को श्री रामजी द्विवेदी के नगर प्रमुख पद से हटने के बाद वर्ष १६८६ तक यह पद रिक्त रहा। इस बीच प्रशासनिक अधिकारी नगर प्रशासन के रूप में नगर की व्यवस्था संभालते रहे। १५ वर्षों के पश्चात् नगर महापालिका का चुनाव हुआ, जिसमें ८० सभासद चुने गये। तत्पश्चात् २८ अगस्त, १६८६ को श्री श्यामाचरण गुप्त नगर प्रमुख निर्वाचित हुए। उन्होंने चार वर्ष तक नगरवासियों की सेवा की। उन्होंने अपने कार्यालय में नगर के सुधार हेतु अनेक कार्य कराये।

श्री श्यामाचरण गुप्त के त्यागपत्र के बाद रिक्त हुये इस पद के लिए ३० सितम्बर, १६६३ को रविभूषण वधावन निर्वाचित हुये। उन्होंने अपने कार्यकाल में कई उल्लेखनीय कार्य किये तथा नगर में कई स्थानों पर महापुरुषों की मूर्तियाँ स्थापित करायीं। उनके कार्यकाल में नगर में व्यापक पैमाने पर विकास कार्य हुए। इसके बाद २७ नवम्बर, १६६५ को डा० रीता बहुगुणा जोशी सीधे जनता द्वारा नगर प्रमुख निर्वाचित हुईं। नगर के अब तक के इतिहास में वे प्रथम महिला नगर प्रमुख हैं।

इलाहाबाद नगर पालिका/इलाहाबाद नगर महापालिका/इलाहाबाद नगर-निगम के गौरवपूर्ण इतिहास के निर्माता अध्यक्ष एवं नगर प्रमुखगण

इलाहाबाद नगर पालिका के अध्यक्ष/चेयरमैन	अवधि
१. श्री शिवचरण लाल	१०.१०.१९१६ से १६.१२.१९२० तक
२. श्री पुरुषोत्तम दास टंडन	०३.०१.१९२१ से १०.०३.१९२२ तक
३. श्री कामता प्रसाद कक्कड़	२३.०३.१९२२ से २६.०३.१९२३ तक
४. श्री जवाहर लाल नेहरू	०३.०४.१९२३ से २८.०२.१९२५ तक
५. श्री कपिल देव मालवीय	१६.०३.१९२५ से १४.१२.१९२५ तक
६. श्री कामता प्रसाद कक्कड़	१५.१२.१९२५ से ११.१०.१९३६ तक
७. श्री कैलाश नाथ काटजू	११.०१.१९३६ से २५.०८.१९३७ तक
८. श्री रणेन्द्र नाथ बसु	२६.०८.१९३७ से २३.१०.१९४४ तक
९. श्री कामता प्रसाद कक्कड़	०३.०१.१९४५ से २३.०६.१९४८ तक
१०.श्री विश्वम्भर नाथ पाण्डेय	१३.०८.१९४८ से ३१.०१.१९६० तक

इलाहाबाद नगर महापालिका के नगर प्रमुख	अवधि
१. श्री विश्वम्भर नाथ पाण्डेय	०१.०२.१९६० से ३१.०१.१९६१ तक
२. श्री बालकृष्ण राव	०१.०२.१९६१ से ३१.०३.१९६२ तक
३. श्री एम० जुल्फिकार उल्ला	०१.०४.१९६२ से ३०.०४.१९६३ तक
४. श्री बेनी प्रसाद अग्रवाल	०१.०५.१९६३ से ३०.०४.१९६४ तक
५. श्री बैजनाथ कपूर	०१.०५.१९६४ से ३०.०४.१९६५ तक
६. श्री श्याम नाथ कक्कड़	०१.०५.१९६५ से ३०.०४.१९६६ तक
७. श्री श्याम नाथ कक्कड़	१५.०६.१९७० से ०२.०४.१९७१ तक
८. श्री एम० समी उल्ला	०३.०४.१९७१ से १६.०६.१९७१ तक
९. श्री श्याम सुन्दर शर्मा	२०.०६.१९७१ से १७.०६.१९७२ तक
१०.श्री सत्य प्रकाश मालवीय	१८.०६.१९७२ से १७.०६.१९७३ तक
११.श्री रामजी द्विवेदी	१८.०६.१९७३ से १७.०६.१९७४ तक
१२.श्री श्यामाचरण गुप्त	२८.०८.१९८६ से १७.०७.१९९३ तक
१३.श्री रवि भूषण वधावन	३०.०६.१९९३ से ३०.०५.१९९४ तक

इलाहाबाद नगर-निगम के नगर प्रमुख	अवधि
१. श्री रवि भूषण वधावन	३१.०५.१९९४ से ३०.११.१९९५ तक
२. डा० रीता बहुगुणा जोशी	३०.११.१९९५ से अब तक

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने भारत के उत्तर पश्चिमी राज्यों के वादों के निबटाने हेतु वर्ष १८६६ में एक उच्च न्यायालय की संस्तुति की, जिसकी स्थापना सर्वप्रथम आगरा में की गयी, किन्तु इलाहाबाद राजधानी–स्थल होने के कारण उपयुक्त जगह थी और वर्ष १८६९ में उच्च न्यायालय आगरा से इलाहाबाद स्थानान्तरित कर दिया गया। यह अंग्रेजी शासनकाल के सचिवालय भवन में स्थापित किया गया। आजकल इसमें शिक्षा निदेशालय माध्यमिक शिक्षा परिषद और राजस्व परिषद के कार्यालय चल रहे हैं।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय का इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण है। यह उच्च न्यायालय देश के प्रमुख उच्च न्यायालयों में से एक है, जिसने अपने निणयों से इतिहास रचा है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय की वर्तमान इमारत का शिलान्यास सन् १९११ में तत्कालीन मुख्य न्यायाधीन सर जान स्टेनली ने किया था। सन् १९१६ में वर्तमान इमारत में न्याय सम्बन्धी कार्यों का शुभारम्भ हुआ। इस उच्च न्यायालय के पहले भारतीय न्यायाधीश श्री महमूद थे। इनका कार्यकाल सन् १८८७ से १८९३ तक रहा। सर प्रमोद चरण बनर्जी सन् १८९३ से १९२३ तक रहे। अवध चीफ कोर्ट के विलय के साथ ही इसकी शाखा १९४८ में लखनऊ में स्थापित की गयी। सन् १९४९ में श्री बी० मलिक इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश बने और सन् १९५५ तक इसी पद पर आसीन रहे।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं में से कई ने न्याय के क्षेत्र में ऐसे गरिमापूर्ण कार्य किये कि देश भर में उनको ख्याति मिली।

उत्तरमध्यक्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र

भारत आदिकाल से ही विविध संस्कृतियों का पोषक और उन्नायक रहा है। लोक जीवन की सांस्कृतिक विविधताओं के पोषण, संवर्धन एवं संरक्षण हेतु भारत सरकार के मानव संसाधन–विकास मंत्रालय के संस्कृति विभाग द्वारा वर्ष १९८६ में देश के विभिन्न भागों में सात सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित किये गये, जिनमें से एक उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र भी है। इसकी स्थापना प्रयाग (इलाहाबाद) में हुई।

प्रयाग गंगा–यमुना और सरस्वती का संगम होने के कारण विविध संस्कृतियों, लोकाचारों एवं

ज्ञान–विज्ञान का संगम है। इसी उद्देश्य से इस सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना की गयी। इसके लिये तत्कालीन सांसद श्री अमिताभ बच्चन का प्रयास सराहनीय कहा जायेगा।

सांस्कृतिक केन्द्र अपनी स्थापना के समय से ही विभिन्न लोक संस्कृतियों को भावात्मक रूप से जोड़ने के लिये प्रयासरत है। इस केन्द्र से देश के छः राज्य सम्बद्ध हैं, जिनमें उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, दिल्ली और हरियाणा के नाम है। इन राज्यों की लोकरीतियों, गीतों, नृत्यों, कलाओं और संस्कृतियों से जनसाधारण को परिचित कराने तथा इन सभी विधाओं के संरक्षण हेतु साहित्य वीडियो, आडियो कैसेट आदि बनाने का कार्य सांस्कृतिक केन्द्र कर रहा है।

साहित्यिक विधाओं पर विचारमंथन कराने के साथ–साथ ललित कलाओं की समकालीन भावनात्मक स्थिति से जनसामान्य को परिचित कराने हेतु विभिन्न स्थानों पर कार्यक्रम, प्रतियोगितायें एवं प्रदर्शनियाँ भी केन्द्र द्वारा आयोजित की जाती हैं।

इनके अलावा विभिन्न राज्यों के सांस्कृतिक कार्यक्रम भी अन्तर्क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्रों के सौजन्य से कराये जाते हैं। उत्तर प्रदेश में ग्रीष्मकाल में पर्वतीय पर्व तथा प्रत्येक माघ मेले, अर्द्धकुम्भ और कुंभ मेलों में संगम तट पर 'चलो मन गंगा यमुना के तीर' के नाम से उच्च कोटि के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं, जिनमें देश के कोने–कोने से कलाकार तो बुलाये ही जाते हैं, स्थानीय कलाकारों को भी महत्व दिया जाता है। अब तक सांस्कृतिक केन्द्र के मंच से देश के चोटी के कलाकार, कवि, शायर, चित्रकार, रंगकर्मी अपनी कला का प्रदर्शन कर चुके हैं।

उत्तर प्रदेश सांस्कृतिक केन्द्र ने कई सांस्कृतिक प्रकाशन भी किये, जिनमें 'संस्कृति दर्शन' एवं 'सुंदरम्' पत्रिकाएँ शामिल हैं। कुछ अच्छी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। इन पुस्तकों में अमीर हसन लिखित 'उत्तर प्रदेश की जनजातियाँ', शकुन्तलावापना लिखित 'राजस्थान के लोकनृत्य' एवं डा० ब्रजबल्लभ मिश्र लिखित 'भरत और उनका नाट्यशास्त्र' प्रमुख हैं।

नेहरू पार्क

प्रयाग श्री जवाहर लाल नेहरू का जन्म–स्थल रहा है। प्रकृति प्रेमी श्री नेहरू जैसे महान नेता के नाम पर यहाँ कोई स्मारक हो, यह ललक प्रयागवासियों में रही है। इसका परिणाम उन्हें १४ नवम्बर, १९८७ को मिला, जब तत्कालीन उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री वीर बहादुर सिंह ने नेहरू पार्क की आधारशिला रखी। १६० एकड़ क्षेत्र में स्थापित इस पार्क में ६० एकड़ में मैकफर्सन झील है, जो इसी पार्क के अन्तर्गत आ गयी है।

पार्क को आधुनिक सुविधाओं से लैस किया गया है। आठ एकड़ क्षेत्र में अप्पूघर बनाया गया है, जिसके अंदर सुंदर लान, झूले और बच्चों के मनोरंजन के लिये आकर्षक मिनी ट्रेन तथा मोटरबोट है। पार्क के अन्य क्षेत्रों में दर्शकों को घूमने के लिये कई आकर्षक लान बने हुये हैं। ऊँची–नीची जमीन में प्रकृति की रमणीयता खुद–ब–खुद देखी जा सकती है।

पूरे पार्क क्षेत्र को कई भागों में विभाजित किया गया है। दर्शकों के स्वागत हेतु रिसेप्शन कॉम्पलेक्स, पिकनिक हेतु साइंस पार्क, वनस्पति उद्यान, जन्तु विहार एवं वनीकरण खण्ड प्रमुख हैं। पार्क का संगीतमय झरना यहाँ दर्शकों को लुभाता रहता है। सैलानी यदि घुड़सवारी के शौकीन हों तो घोड़े भी उपलब्ध रहते हैं, जिनसे पूरे पार्क की सैर की जा सकती है।

घूमने के बाद यदि थकान का अनुभव हो तो कैफेटेरिया में बैठकर चाय, काफी का आनंद भी लिया जा सकता है। मोटरबोट से घूमकर सुंदर झील का लुत्फ उठाया जा सकता है। इलाहाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा विकसित किये गये इस पार्क में यद्यपि बहुत सी वस्तुयें कृत्रिम हैं, फिर भी वे प्राकृतिक नजर आती हैं। पार्क का उद्घाटन २६ जनवरी, १९६० को तत्कालीन सिंचाई मंत्री श्री कुँवर रेवती रमण सिंह ने किया था। सम्पूर्ण क्षेत्र में प्रकाश की उपयुक्त व्यवस्था है। पार्क के अंदर कई ऊँचे स्थानों में बैठकर इसके विहंगम दृश्य का भी अवलोकन किया जा सकता है।

पर्यटक आवास गृह

इलाहाबाद नगर के ३५–महात्मा गांधी मार्ग, सिविल लाइन्स पर उ० प्र० पर्यटक आवास गृह अवस्थित है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा वर्ष १९६७–६८ में स्थापित इस पर्यटक आवास गृह का उद्घाटन उ० प्र० के तत्कालीन राज्यपाल डा० बी. गोपाल रेड्डी ने किया था। प्रारम्भ में यहाँ दो शैय्या के १२ कक्ष एवं ६ शैयाओं के एक डॉरमेटरी कक्ष के साथ कुल ३० शैयाओं की आवासीय सुविधा उपलब्ध थी। वर्ष १९७४–७५ में उ० प्र० राज्य पर्यटन विकास निगम लि० की स्थापना किये जाने के उपरान्त मई १९७५ से इसका संचालन निगम के अधीन हो गया।

पर्यटक आवास गृह में ही क्षेत्रीय पर्यटक कार्यालय भी स्थापित है, जहाँ नगर में आने वाले पर्यटकों को पर्यटन सम्बन्धी समस्त सूचनायें उपलब्ध कराने एवं उनके मार्ग दर्शन का कार्य किया जाता है।

पर्यटक आवास गृह में संचालित रेस्टोरेंट में यहाँ पर ठहरने वाले एवं बाहर से आने वाले सभी व्यक्तियों को भारतीय तथा पाश्चात्य व्यंजनों की सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। साथ ही यहाँ पर एक एफ. एल.–७ बार की भी व्यवस्था है। यहाँ का हरा–भरा एवं मनोरम उद्यान आने वाले पर्यटकों को सहज की आकर्षित करता है। परिसर में ही भारत सरकार के पर्यटन विभाग द्वारा स्वीकृत एक यात्री निवास का निर्माण किया जा रहा है।

पर्यटक आवास गृह विगत २५ वर्षों से अधिक समय से इलाहाबाद नगर की सेवा में रत होने के कारण काफी लोकप्रिय हो चुका है। यहाँ प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में पर्यटक ठहरते हैं, जिनमें विदेशी पर्यटकों की संख्या उत्साहवर्धक है। अब तक इसमें जो अति विशिष्ट व्यक्ति ठहर चुके हैं, एवरेस्ट विजेता एवं समुद्र से आकाश अभियान के प्रणेता श्री सर एडमंड हिलेरी, प्रमुख साहित्यकार स्व० सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

"अज्ञेय", स्व. जैनेन्द्र कुमार, डा० शिवमंगल सिंह सुमन, प्रसिद्ध शायर श्री कैफी आजमी, सुश्री सोनल मानसिंह, सुश्री स्वप्न सुन्दरी, पद्म श्री तीजन बाई, श्री रविशंकर एवं भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर प्रमुख हैं।

आवागमन के साधन

प्राचीन सांस्कृतिक राजधानी होने के कारण प्रयाग में आवागमन के साधन बहुत पहले से उपलब्ध थे। प्राचीन काल में हाथी, घोड़े और रथों से आवागमन की परम्परा रही और आधुनिक युग में इंजन पर आधारित साधन विकसित होने से प्रयाग आने–जाने के साधन और सुलभ हो गये।

जलमार्ग

गंगा–यमुना का संगम होने के कारण प्रयाग में जलमार्ग के साधन हैं, किन्तु यह मार्ग सुगम नहीं है। यद्यपि स्टीमर और नावें प्रयोग में लायी जाती हैं, परन्तु बहुत दूर के लिए नहीं। नावों से तो चाहे कितनी भी दूरी की यात्रा की जा सकती है लेकिन इंजन चालित वाहनों से अधिक दूरी संभव नहीं हो पाती, क्योंकि नदियों से नहरें निकलने के बाद जल की कमी आ गयी है; इसके बावजूद कभी–कभी छोटे–छोटे जहाज यमुना नदी में चलते रहते हैं और स्टीमर भी सुलभ हो जाते हैं।

सड़क मार्ग

प्रयाग में सड़क मार्ग पर्याप्त हैं। निरन्तर विकास के चलते नगर व ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों का जाल बिछ गया है। यद्यपि अभी तक सभी जगह सडकें उपलब्ध नहीं है, फिर भी दर्शनीय एवं ऐतिहासिक स्थलों तक निजी या उत्तर प्रदेश परिवहन निगम के वाहनों से सुगमता से पहुँचा जा सकता है। सबसे पहले यहाँ ग्रांड ट्रंक रोड बनी थी, जो शहर के अंदर से होकर जाती थी। प्रयाग नगर में विभिन्न क्षेत्रों के लिये आने–जाने वाली बसों के चार बस स्टैण्ड हैं। जीरो रोड बस डिपो से चित्रकूट, बाँदा, झाँसी, मिर्जापुर, रीवाँ, सतना, भोपाल, जबलपुर, नागपुर, अम्बिकापुर, अमरकंटक, वाराणसी ओर लखनऊ के लिये बसें उपलब्ध रहती हैं। यह अन्तर्राज्यीय बस अड्डा है। जीरो रोड पर बस अड्डा सन् १६३७ में बना। पहले यह स्थान वाई०एम०सी०ए० का खेल मैदान था। बस अड्डा बनने पर २० किलोमीटर आसपास के क्षेत्रों में पेट्रोल गाड़ियाँ चलती थीं। १६६२ में भारत–चीन युद्ध के समय यहाँ मिलिट्री के लिये ड्राइवरों को प्रशिक्षण दिया गया था। सिविल लाइंस बस डिपो सबसे बड़ा है। यहाँ से लखनऊ, मेरठ, आगरा, दिल्ली, कानपुर, अयोध्या, वाराणसी व प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के लिये बसें उपलब्ध रहती हैं। यहीं पर प्रयाग बस डिपो की बसें भी खड़ी होती हैं। लीडर रोड बस डिपो इलाहाबाद जंक्शन रेलवे स्टेशन के सामने है। यहाँ से फतेहपुर, कानपुर दिल्ली, लखनऊ आदि के लिये बसें मिल जाती हैं। जिला कचहरी स्थित बस डिपो से नगर के विभिन्न क्षेत्रों के लिये महानगरीय बस सेवा उपलब्ध है।

रेलमार्ग

प्रयाग में रेलमार्ग का इतिहास आज से लगभग १३५ वर्ष पुराना है। सबसे पहले ३ मार्च, १८५६ को प्रयाग से कानपुर तक रेलगाड़ी चली। इसके बाद अप्रैल १६६४ में पूर्वोत्तर रेलवे की रेलगाड़ी कलकत्ता से यमुना के उस पार तक चलने लगा। १५ अगस्त, १८६५ में यमुना पुल तैयार हो जाने पर इलाहाबाद रेलवे स्टेशन (बड़ी स्टेशन या कचपुरवा स्टेशन) तक रेलगाड़ी चलने लगी। इसके बाद सन् १८६७ में नैनी से जबलपुर के बीच गाड़ी चली। चूँकि यमुना पर बना पुल एकमार्गी था, इसलिये आवागमन कठिन था। जनता की आवश्यकता के मद्देनजर यह पुल दोहरा किया गया और १६ अगस्त १६१५ को पूर्व वाला हिस्सा आगमन के लिये खोल दिया गया। बाद में पश्चिमी हिस्से को नये तरीके से बनाकर २१ अगस्त, १६२६ को चालू कर दिया गया। दूसरी ओर इलाहाबाद–फैजाबाद लाइन १६०५ में बनी और इसी समय गंगा पर कर्जन पुल (फाफामऊ) का उद्घाटन हुआ। सन् १६१२ में प्रयाग से वाराणसी के लिये रेल लाइन चालू हुई। वर्तमान में उत्तर रेलवे का इलाहाबाद जंक्शन, पूर्वोत्तर रेलवे का प्रयाग व प्रयाग घाट स्टेशन और वाराणसी लाइन पर इलाहाबाद सिटी स्टेशन (रामबाग) का दारागंज स्टेशन है। रामबाग स्टेशन से वाराणसी जाने वाली मीटर गेज लाइन अब बड़ी लाइन में परिवर्तित हो गयी है।

यहाँ से भारत के किसी भी कोने की रेल द्वारा यात्रा की जा सकती है। इलाहाबाद जंक्शन के नये भवन का उद्घाटन २२ मार्च, १६५५ को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने किया। वर्तमान में यहाँ १० प्लेटफार्म, शतप्रतिशत कम्प्यूटर आरक्षण की सुविधा, ५ फुट ओवर ब्रिज, तीन यात्री प्रतीक्षालय, रिटायरिंग रूम (जिसमें एक कक्ष वातानुकूलित डीलक्स, एक कक्ष वातानुकूलित, १० कक्ष गैर वातानुकूलित तथा २ डारमेटरी हाल) उपलब्ध हैं। यहाँ एस०टी०डी०/डी० सी०ओ० (सार्वजनिक टेलीफोन सेवा), खानपान एवं बुकस्टाल भी है। स्टेशन में उतरने पर सिविल लाइंस की तरफ या लीडर रोड की तरफ से शहर के किसी भी हिस्से में आसानी से रात–दिन किसी भी समय पहुँचा जा सकता है। इसी प्रकार रामबाग, प्रयाग आदि स्टेशनों में भी प्रायः सभी जनसुविधाएँ उपलब्ध हैं।

वायुमार्ग

सिविल लाइंस से लगभग ६ किलोमीटर दूर नगर के पश्चिम की ओर बमरौली में हवाई अड्डा है। प्रयाग में सर्वप्रथम १६२६ में हवाई डाक आयी। शनैः शनैः इसका विस्तार हुआ और अब यहाँ से दिल्ली के लिये सप्ताह में दो दिन की वायुयान सेवा उपलब्ध है। यहीं पर वायुसेना की मध्य वायुकमान का अड्डा है। इसके अलावा नागर विमानन प्रशिक्षण कालेज भी चल रहा है। अभी यहाँ नागरिक हवाई अड्डा नहीं बन पाया। हवाई अड्डा वायु सेना के अधीन है। नागरिक हवाई अड्डा बनाने के प्यास चल रहे हैं।

❀

चित्रावली

त्रिवेणी संगम के निकट स्थित पवित्र अक्षयवट

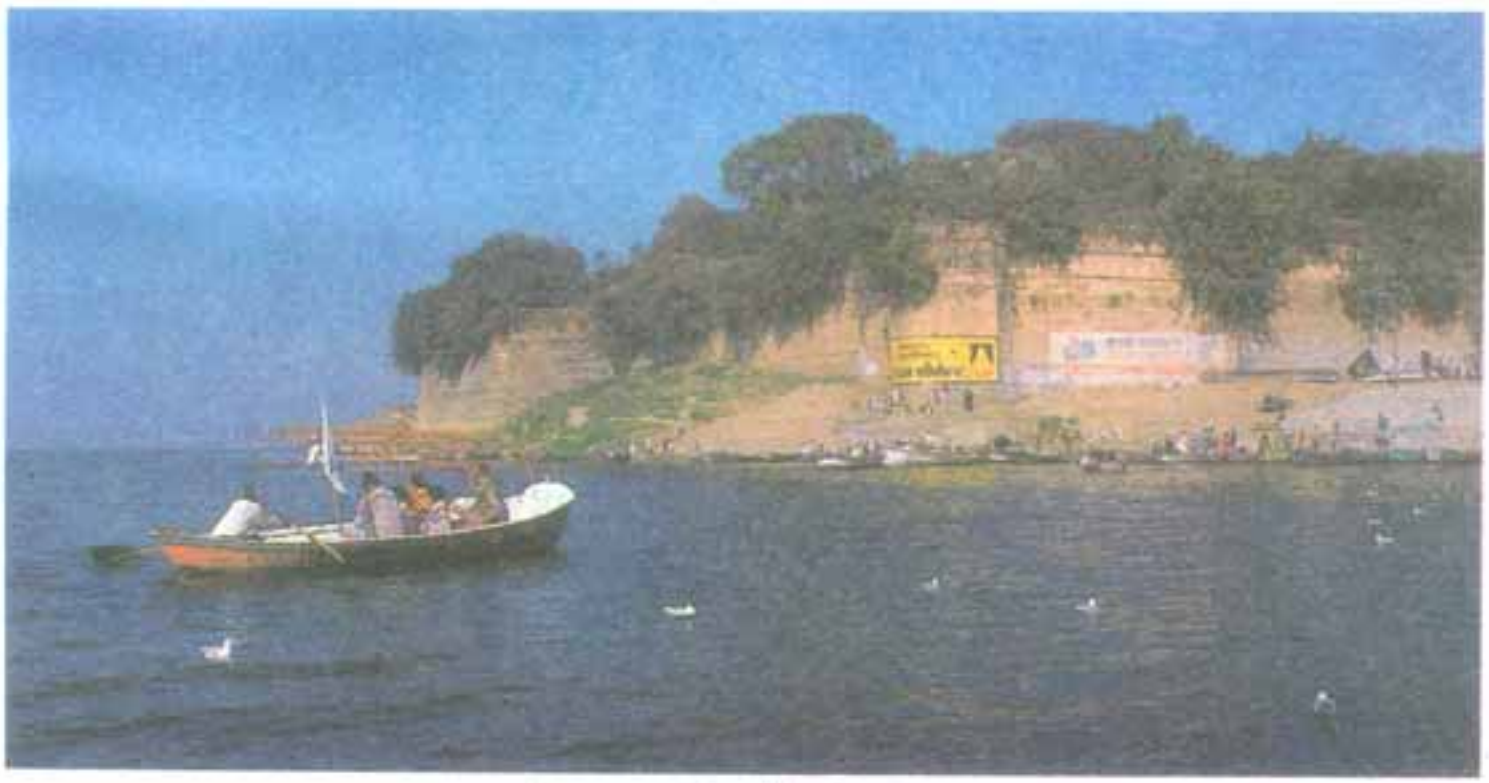

संगम तट पर स्थित ऐतिहासिक किला

त्रिवेणी बाध पर स्थित शंकर विमान मंडपम

भरद्वाज आश्रम

अष्टादश रुद्रमंदिर, अलोपीबाग

झूँसी स्थित समुद्रकूप

क्रियायोग अनुसंधान संस्थान, नयी झूँसी

श्री हनुमत निकेतन, सिविल लाइंस

कंपनीबाग स्थित ब्रह्मविद्या केन्द्र

घूरपुर के पास यमुना के मध्य स्थित सुजावनदेव मंदिर

ऐतिहासिक आनंद भवन

कंपनीबाग स्थित चंद्रशेखर आजाद की प्रतिमा, जहाँ वे शहीद हुए थे

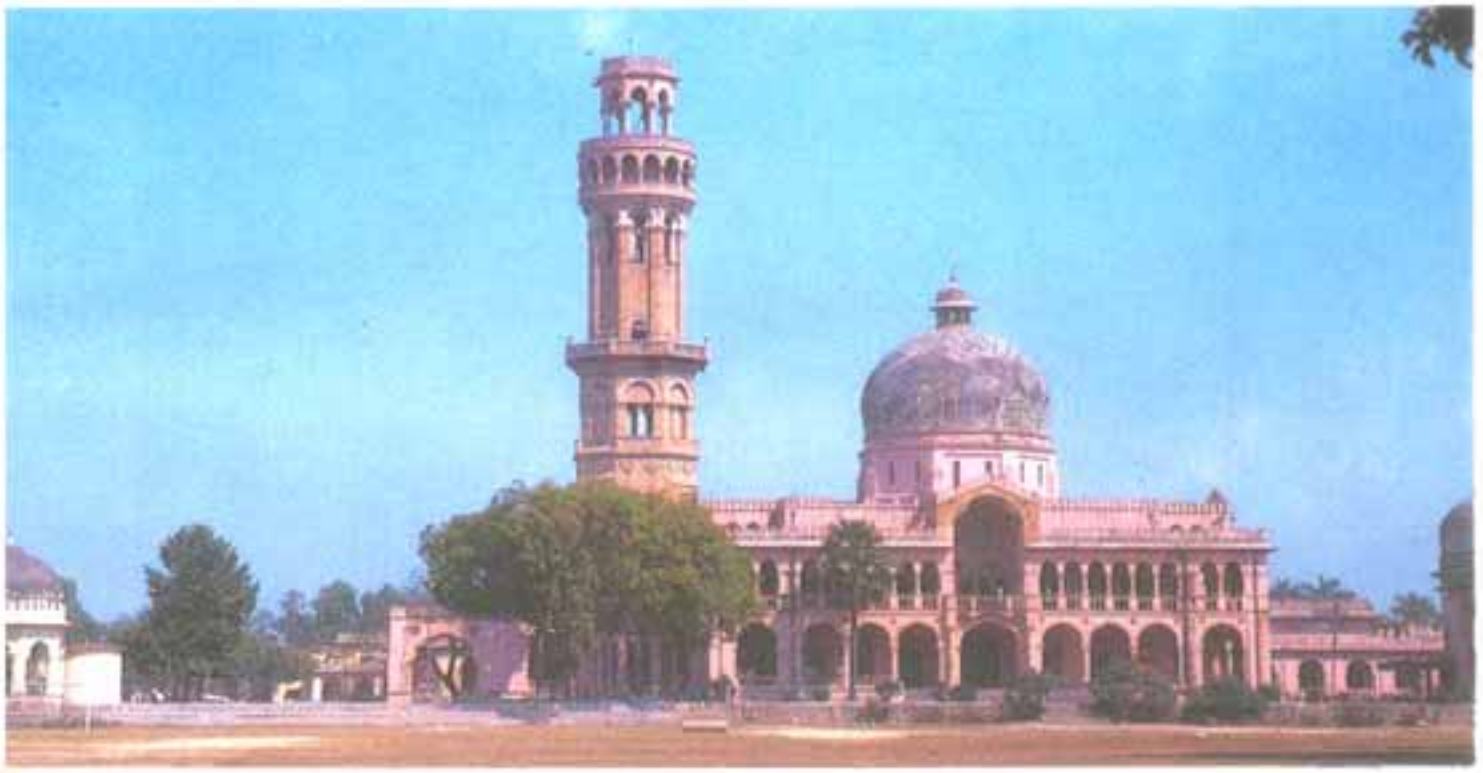

पूरब का आक्सफोर्ड : इलाहाबाद विश्वविद्यालय

न्याय का मंदिर : इलाहाबाद उच्च न्यायालय

कंपनीबाग स्थित राजकीय पुस्तकालय (पब्लिक लाइब्रेरी)

सिविल लाइंस का पत्थर गिरजाघर (आल सेन्ट्स कैथेड्रल)

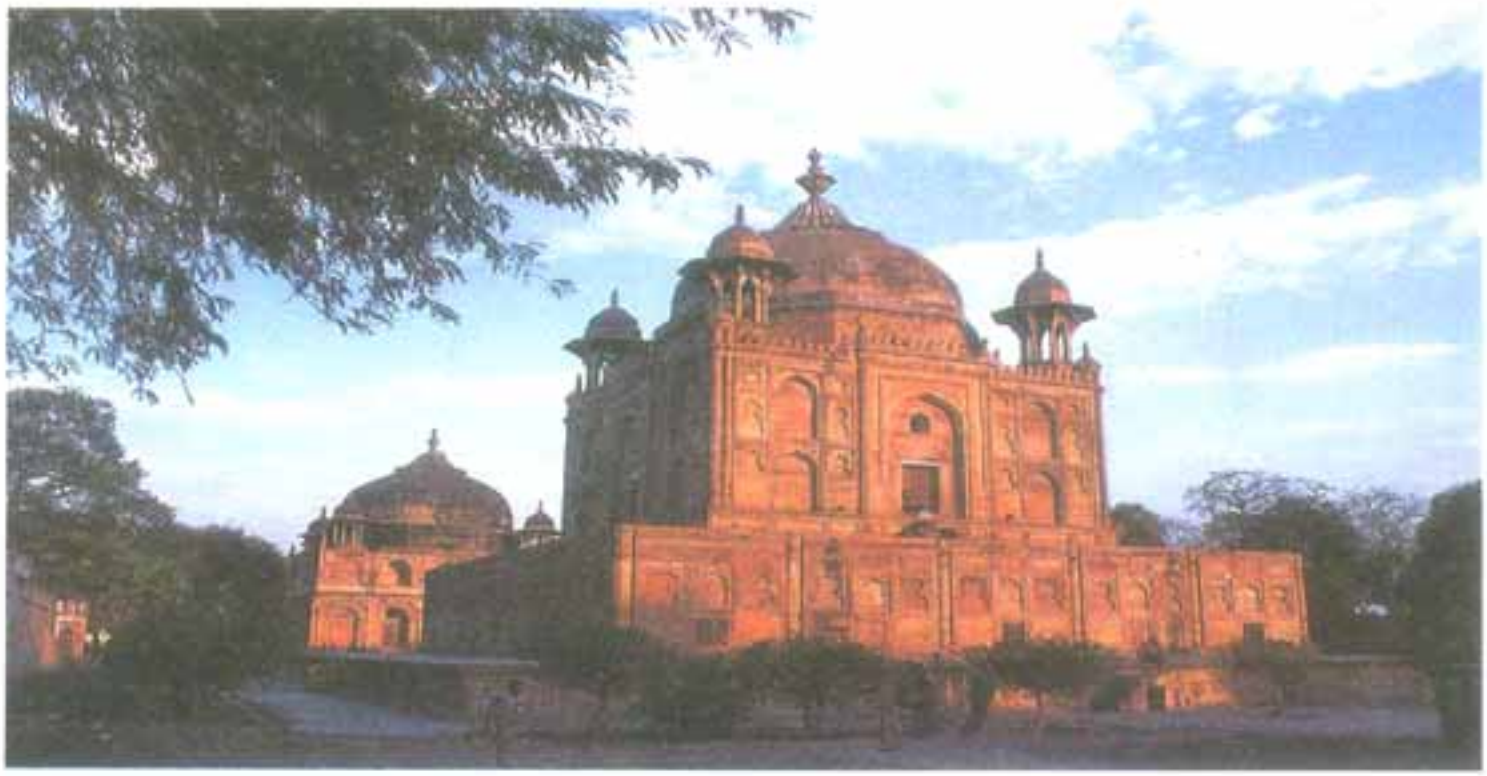

ऐतिहासिक खुसरो बाग स्थित मकबरा

नगर के मध्य स्थित जामामस्जिद

पर्यटकों को आकर्षित करने वाला सरस्वती घाट

फूलों से सजा कंपनीबाग का बैंड स्टैण्ड